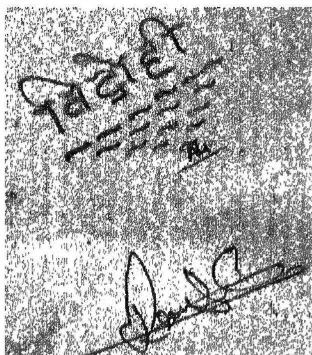


विद्रोही

(एक सामाजिक उपन्यास)

रईस अहमद जाफ़री

उषा प्रकाशन
पोस्ट बक्स नं० १२६२
दिल्ली

प्रकाशक
उषा प्रकाशन
पोस्ट बक्स नं० १२६२
दिल्ली

प्रथम बार
जून १९६०
मूल्य पाँच रुपये पच्चीस नये पैसे

मुद्रक
नूतन प्रेस
चाँदनी चौक दिल्ली

१

वर्षा का मौसम था। रात के बारह बज चुके थे। मूसलाधार वर्षा हो रही थी। अंधेरा छाया हुआ था। हाथ को हाथ भी सुझाई नहीं देता था। बादल की गर्ज से मन दहला जाता था। बिजली कड़क रही थी। लगता था कि अभी और इसी स्थान पर गिरी। रजिया अपने कमरे में दो वर्ष के एक नन्हे बच्चे को कलेजे से लगाए चुपचाप पड़ी थी। वह किसी गहरी चिन्ता में मग्न थी इस समय।

आज उसे पिछला जमाना याद आ रहा था। वह सोच रही थी—आज से तीन वर्ष पूर्व मैं किस आब और स्नेह से इस घर में नव-वधू बनकर आई थी। यहाँ की हर वस्तु पर मेरा राज था, शाकिर मेरा था। मैं उसकी थी। कोई दुःख हो, कैसी ही चिन्ता हो, लाख उलझनें हों, हम दोनों मिलकर बठते और दुःख दूर हो जाता। कहकहे और चहचहे शुरू हो जाते। ज्ञात ही नहीं होता था कि हमें भी कोई परेशानी है। इस बात का भय भी मन में नहीं गुजरता था कि हम भी दुःखी हो सकते हैं। नौकर-चाकर मेरा सम्मान करते थे। ननद मेरा लिहाज करती थी। सास की दृष्टि में मेरी क़दर और मूल्य सीमा से बढ़कर था। और शाकिर तो मेरा बिना वेतन के गुलाम था!

सुख और शांति के यह दिन कितने शीघ्र बीत गये! वर्षभर भी पूरा न होने पाया था कि मैं शाकिर की दृष्टि से उतर गई। उसका मन मुझसे भर गया। वह जहरा को चाहने लगा। वही चावड़ी बाजार की हूर (अप्सरा)। मैं इस समय में कुरूप नहीं हो गई थी। मुझमें कीड़े नहीं पड़ गए थे। मैं अपना

सलीका और सुघड़पन नहीं भूल गई थी। मैं वही थी, परन्तु शाकिर वही नहीं था! उसका मन बदल चुका था। क्यों? ईश्वर जाने!

क्या यह जीवन मुझे इसी प्रकार काटना पड़ेगा? कम्बख्त मौत भी नहीं आती! जो मरना चाहते हैं, वह जीवित रहते हैं; जो जीवन पर प्राण देते हैं, वह मृत्यु के घाट उतर जाते हैं। सच पूछो तो मैं स्वयं भी अभी मरना नहीं चाहती।

मेरे उपरान्त आरिफ़ का क्या होगा? इसे कौन पालेगा? जब मेरे सामने इसकी बात कोई नहीं पूछता, तो मेरे उपरान्त इसकी जो गति न बने, वह कम है।

यही-सोचते सोचते वह सो गई।

रज़िया एक बड़े घराने की लड़की थी। पिता बहुत बड़े जमींदार थे। शाकिर भी एक बड़े जमींदार घराने का व्यक्ति था। सुन्दर, शरीफ़, पढ़ा लिखा। रज़िया के बाप ने उसे छाँटा, परखा और रज़िया का हाथ उसके हाथ में दे दिया।

प्रारम्भ में तो रज़िया शाकिर की प्रेमिका बनी रही। बड़े प्यार और स्नेह से रहते थे। पति-पत्नी, न झगड़ा, न कडुवापन, न शक न शुबा—सुख की और प्यार की एक नदी थी, जो बहती चली जा रही थी और अपने साथ हर प्रकार के दुःख, कडुवेपन और बुराई को बहाए चली जा रही थी।

फिर शाकिर का आना-जाना ज़हरा के यहाँ आरम्भ हो गया और उसके रंग-ढंग बदलने लगे। फिर यह हुआ कि धीरे-धीरे वह रज़िया से बिल्कुल विमुख और बेगाना होकर, ज़हरा का दीवाना हो गया।

यह ग़म घुन की भांति रज़िया को खाए जा रहा था। परन्तु वह चुप थी। अपने मन में छिपा दुःख किसी पर भी, शाकिर पर भी नहीं व्यक्त होने देती थी।

२

शाकिर जब तक रजिया का पुजारी था, सभी उसका सम्मान करते थे। जैसे ही उसकी आँखें बदलीं, सारे घर की आँख फिर गई। वही घर था, रजिया थी, परन्तु पहले वह घर की मालकिन और मुख़तार थी और अब बिना बुलाई महमान !

शाकिर का छोटा भाई मनसूर रजिया की बहुत ख़ातिर किया करता था। ूर मर्दाना सुन्दरता का जीता-जागता चित्र था। चुस्त, चालाक, गठा हुआ स्वस्थ शरीर, सुन्दर और मन मोहने वाला। एक दिन उसके विवाह का क़िस्सा छिड़ा, तो रजिया ने कहा—

"अब तो मनसूर, तुम शादी कर ही डालो !"

"ढूंढ़ो तुम दुलहिन मेरे लिए।"

"मुकर तो न जाओगे ?"

"कभी नहीं !" पुरुषों की वाणी उनके प्राण समान है !

"अच्छी बात। मैं पता चलाऊंगी।"

"परन्तु एक शर्त है।"

"वह क्या ?"

"मेरी पत्नी बिल्कुल·········।"

"इन्द्र के अखाड़े की परी हो ! यही न ?"

"नहीं !"

"आकाश की अप्सरा हो। क्यों ?"

"यह भी नहीं !"

"कोई अभिनेत्री उसका मुकाबला सुन्दरता में न कर सके। यही ?"

"नहीं।"

"ऐ फिर क्या हो वह ?"

"तुम्हारा नमूना हो ! हूँ वह तुम्हारा नमूना।"

"मेरा नमूना ? ज़रा इनकी सुनो ! मुझमें क्या रखा है ?"

"इससे बहस नहीं, वैसी ही बड़ी-बड़ी आंखें हों, जैसी तुम्हारी हैं। वैसा ही प्यारा-प्यारा मुखड़ा हो, जैसा तुम्हारा है। वही बातें, वही अदाएँ, वही सूरतें, वही स्वभाव। बस बिल्कुल तुम्हारा ही प्रतिरूप हो। ऐसी पत्नी यदि ढूंढ़ सकती हो मेरे लिए, तो आज से ही ताक-झाँक शुरू कर दो। और नहीं तो बंदा को तो व्याह नहीं करना है।"

"और यदि न मिली मेरी जैसी तो ?"

"तो क्या ! फिर विवाह कौन करेगा ?"

"तुम !"

"कहीं की न हो।"

"देखेंगे !"

"देख लेना।"

"अच्छा, एक बात बताओ।"

"पूछो।"

"उसे रखोगे किस भाँति ?"

"अपने मन की रानी बनाकर।"

"सच ?"

"बिल्कुल सच !"

"बिल्कुल अपने भाई साहब की भाँति ?"

मनसूर झेंप-सा गया और रज़िया भी कुछ शर्मिंदा हो गई।

३

रज़िया और मनसूर की बेतकल्लुफ़ी बढ़ती जा रही थी। सारे घर में केवल एक मनसूर था जिससे वह हंस-बोल लेती थी। सारे घर में एक रज़िया थी, जिसका वह सबसे अधिक कहना मानता था।

शाम को चार बजे रोज की भाँति मनसूर कॉलिज से आया। कपड़े बदले, रैकट हाथ में लिया और टैनिस के इरादे से बाहर जाने लगा। जाते-जाते उसकी दृष्टि रज़िया पर पड़ी। वह अपने कमरे में बैठी कोई पुस्तक पढ़ रही थी। मनसूर ने कहा—

"क्या पढ़ा जा रहा है ?"

"एक पुस्तक है।"

"बड़ी दिलचस्प मालूम होती है।"

"हूँ।"

"क्या नाम है इसका ?"

"क्यों बताएँ ?"

"हम स्वयं देख लेंगे।'

झपट्टा मारकर पुस्तक मनसूर ने रज़िया से छीन ली। वह मुँह देखती रह गई। मनसूर ने कहा—

"मान ली हार ?"

"नहीं !"

"तो पुस्तक नहीं मिलेगी।"

"कोई जोर है ? नहीं मानते हार !"

"कोई जोर है ? नहीं देते पुस्तक !"

"यह चुहलें अपनी पत्नी से करना। लाओ मेरी पुस्तक !"

'तुम ही बन जाओ न मेरी पत्नी थोड़ी देर के लिए !"

"बड़े बदतमीज हो तुम !"

"बदतमीज सही ! हो राजी ?"

"बहुत बढ़ रहे हो तुम मनसूर !"

"कुछ भी हो, आज तो अपने दिल की कथा सुनाकर ही रहूँगा !"

"कैसी कथा ?"

"यह कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।"

"कुछ पागल हो गये हो तुम ?"

"जो समझो !"

"चलो हटो ! ऐसी बातें न किया करो मुझसे !"

"फिर किससे करूँ यह बातें ? तुम नहीं सुनोगी तो सुनाऊँगा किसे ? —अब कहाँ किसमत आजमाने जाएं तू ही जब खंजर-आजमा न हुआ !"

"यह बातें करते तुम्हें लाज नहीं आती मनसूर ?"

"लाज क्यों आए ? मैं कोई अपराध तो नहीं कर रहा हूँ। तुम्हारा अपवाद तो नहीं कर रहा हूँ। तुमसे कोई नाजायज माँग तो नहीं कर रहा हूँ। मुझे प्रेम है। कहो, तो संसार के सामने कह दूं—

'हां, हां, मुहब्बत आपसे की और जरूर की !'

प्रेम पर किसका वश है ? मैं तुमसे प्रेम नहीं करना चाहता था, परन्तु मैं विवश हो गया और मुझे प्रेम करना पड़ा। तुम चाहो, तो मुझे ठुकरा सकती हो। इसी प्रकार जैसे—भाई सहाब ने तुम्हें ठुकराया है। परन्तु फिर भी मेरा प्रेम कम नहीं होगा ! बिल्कुल उसी प्रकार जैसे तुम अब तक उनसे

प्रेम किए जा रही हो। जैसे तुम विवश हो अपने मन से वैसे ही मुझे भी विवश समझ लो !"

रजिया ने इन बातों का कोई उत्तर नहीं दिया। वह रोने लगी। मनसूर ने उसे रोते देखा, तो कहा—

"एँ ! तुम रोने लगीं ? मत रोओ ! यदि तुम्हें मेरे शब्दों से दुःख पहुँचा है, तो मैं क्षमा चाहता हूँ। यदि तुम चाहती हो कि मैं तुम्हारे प्रेम का एक शब्द भी जबान पर न लाऊँ, तो इसकी कोशिश भी कर देखूंगा। लेकिन तुम चाहती हो कि मैं तुम्हारे प्रेम से हाथ हटा लूँ, तो मैं कभी भी इसका प्रण नहीं कर सकता। तुम्हारा प्रेम मेरी रग-रग में, नस-नस में बसा हुआ है। तुम्हारी मूर्ति मेरी आँखों में समाई रहती है। तुम्हारी कल्पनात्मक तस्वीर मेरे मन व मस्तिष्क पर छाई है। मैं अपने मन से अपने मस्तिष्क से, अपनी आत्मा से विद्रोह नहीं कर सकता !"

रजिया अब भी रो रही थी। मनसूर ने रैकट एक ओर रख दिया। निकट की कुर्सी पर बैठ गया। बोला—

"मैं तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ ?"

"कोई आवश्यकता है विश्वास दिलाने की ?"

"है !"

"बिल्कुल नहीं है।"

"क्यों ?"

"तुम्हें मुझसे प्रेम करने का हक नहीं है।"

"इसलिए कि तुम मेरे भाई की पत्नी हो ?"

"हाँ, क्या यह साधारण कारण है ?"

"बिल्कुल साधारण ! मैं तुमसे पूछता हूँ, जो तुमसे प्रेम नहीं करता, तुम उस पर प्राण क्यों छिड़कती हो ? जो तुम्हारी बात तक नहीं पूछता, तुम क्यों उसके नाम की माला जपती हो ?"

"तुम्हें यह पूछने का भी कोई अधिकार नहीं है !"

"तो मैं समझ लूं कि तुम मेरा प्रेम ठुकरा रही हो ?"

"यह प्रेम नहीं है—काम-याचना है, और वास्तव में मैं इसे ठुकराती हूँ !"

"काम है यह ?"

"हाँ काम-याचना—केवल काम !"

"यह निर्णय कैसे किया तुमने ?"

"यों कि यदि वास्तव में तुम्हें मुझसे प्यार होता, तो तुम मेरे प्रेम में मर जाते, परन्तु एक शब्द भी जबान पर न लाते। अपनी प्रसन्नता के लिए मेरी बदनामी न चाहते। अपने ऐश के लिए मुझे राह से भटकाने की चेष्टा न करते !"

"मैं तुम्हें गुमराह करना चाहता हूं ?"

"हाँ !"

"वह कैसे ?"

"तुम जानते हो कि मैं जवान हूँ। वक्ष में मन और मन में आरज़ुओं का तूफ़ान रखती हूँ। मेरा पति मुझसे विमुख हो चुका है। स्त्री प्रेम खो देने के उपरान्त डाँवाडोल हो जाती है। वह बड़ी आसानी से गुमराह की जा सकती है। ऐसे समय में तुम अपनी सुन्दरता पर गर्व करते हुए, मेरे मन के तारों को छेड़ते हुए, मुझे मेरे प्रेम की असफलता का ताना देते हुए, और अपने प्रेम का ढंढोरा पीटते हुए, मेरे सामने आते हो। बताओ, इसका अर्थ इसके सिवाय और क्या है, कि मैं चोरी-छिपे, या सामाजिक स्तर पर, शाकिर को छोड़ दूँ और तुम्हारी हो रहूँ ? अपनी दुनिया भी बर्बाद कर लूँ और अपनी आखिरत भी !"

"आखिरत ? यह क्या वस्तु है ?"

"है एक वस्तु, जिसे मैं जानती हूँ। कोई आवश्यकता नहीं, कि तुम भी इसे जानो !"

"अब तो तुम वाअज़ (धर्म कथा) भी अच्छी कहने लगीं !"

"मजाक में मत टालो। मैं तुम्हें बताए देती हूँ कि इस प्रकार की बातें फिर मुझसे न करना !"

"वरना ?"

"वरना यह कि मैं घरभर में तुम्हें बदनाम कर दूंगी ।"

"इसकी परवाह किसे है ? मैं तो स्वयं इस सम्बन्ध में भाई साहब से बात-चीत करने वाला हूँ ।"

"क्या बातचीत करोगे तुम ?"

"यही कि मैं तुम्हें चाहता हूँ । वह नहीं चाहते,···इसलिए वह तलाक दे दें; मैं शादी कर लूँ !"

"तुम्हें आज क्या हो गया है, मनसूर ?"

"कुछ नहीं !"

"फिर यह बहकी-बहकी बातें क्यों ?"

"बहकी-बहकी या खरी-खरी ?"

"तुम लाज, लोक-लाज, मानवता···हर वस्तु को तज चुके हो ?"

"यही सही !"

"जब तुम अपने भाई से यह बातें करोगे—तो तुम्हारी जबान चलेगी ?"

"फ़र-फ़र !"

"तुम यह समझते हो कि इस बात में तुम्हें मेरा समर्थन हासिल है ।"

"मैं समझता हूँ कि तुम्हें मेरा समर्थन करना चाहिए ।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि मैं तुम्हें प्रसन्न रख सकता हूँ और भाई साहब ने तुम्हारा जीवन अजीरन बना दिया है ।"

"तुम्हें मेरे जीवन की इतनी चिन्ता क्यों है ?"

"प्रेम जो है ।"

"परन्तु मैं तुमसे प्रेम नहीं करती ।"

"घृणा करती हो ?"

"हाँ ।"

"तो और अच्छी बात है । प्रेम में जब तक कटुता शामिल न हो, उसका लुत्फ़ आधा रह जाता है ।"

"फिर यदि मैं तुम्हारे भाई साहब से प्रेम करती हूँ, तो क्यों आपत्ति करते हो तुम ?"

"इसलिए कि···"

"हाँ-हाँ, कहो किस लिए ?"

"इसलिए कि तुम मुझसे घृणा नहीं करती हो।"

"क्या कहा ?"

"तुम मुझसे घृणा नहीं करती हो।"

"करती हूँ !"

"झूठ !"

"झूठे तुम हो।"

"और तुम भी !"

"तुम्हारा दिमाग़ चल गया है। चलो हटो, जाओ यहाँ से !"

"मैं तो नहीं जाऊँगा यहाँ से।"

"कुछ जबरदस्ती है ?"

"यही सही।"

"क्यों नहीं जाओगे ?"

"प्रेम का इकरार करवाकर ही जाऊँगा !"

"हो चुका इकरार···चलो अपनी राह लो।"

"धन्यवाद इस इकरार का। अब मैं जाता हूँ। तुम्हारे इस इकरार की चर्चा अपने भाई साहब से भी करूँगा।"

यह कहकर मनसूर ने रैकट उठाया और बाहर चला गया।

४

दूसरे दिन सुबह नाश्ता आदि से फ़ारिग़ होकर शाकिर बाहर जाने के इरादे से अचकन पहन रहा था कि मनसूर पहुँचा। शाकिर ने अचकन के बटन लगाते-लगाते बड़े स्नेह-भाव से पूछा—

"कुछ काम है ?"

"जी हाँ !"

"कहो !"

"मैं शादी करना चाहता हूँ।"

"(इस बेबाकी पर आश्चर्य-चकित होकर) "अवश्य करो !"

"परन्तु बिना आपके सहयोग के यह सम्भव नहीं।"

"(और हैरान होकर) मेरा सहयोग ? तुम समझते हो, मैं कोई रुकावट डालूँगा तुम्हारी शादी में ? मूर्ख कहीं के !"

"नहीं, यह बात तो नहीं है।"

"फिर क्या बात है ?"

"जब तक आप रजिया को तलाक़ न दे दें, मेरी शादी होगी कैसे ?"

(मुख लाल हो गया, आँखों से अंगारे बरसने लगे) "क्या कहा तू ने ?"

"आप रजिया को तलाक़ दे दीजिए !"

"क्यों ?"

"आप उससे प्रेम नहीं करते। आपके लिए वह बेकार है। मैं उससे प्रेम करता हूँ, मेरे लिए वह काम की है।"

"नालायक़, बदमाश, आवारा···शैतान ! दूर हो जा मेरी आँखों से !"

"जी नहीं, मकान और सम्पत्ति में मेरा भी भाग है।"

"तू मुझसे लड़ने आया है ?"

"फ़ैसला करने !"

"रज़िया को तलाक़ दिलवाने ?"

"जी हाँ।"

"तू चला जा ! खैरियत इसीमें है कि दूर हो जा मेरी आँखों के सामने से !"

"क्या यह घर मेरे बाप का नहीं है ? जितना आपका भाग है, उतना ही मेरा है। आप ही क्यों नहीं चले जाते यहाँ से ?"

"मैं तुझे मार डालूँगा ! तुझे कत्ल कर दूँगा !!"

"इतना कमज़ोर तो मैं नहीं हूँ कि आप मुझे मार डालें और मैं मर जाऊं। आप मुझे क़त्ल कर दें और मैं क़त्ल हो जाऊँ। मैं अपना बचाव कर सकता हूँ और करूंगा !"

"मैं छोड़े देता हूँ इस घर को ! आज से यहाँ एक कदम भी नहीं रखूँगा !"

"परन्तु जाने से पहले मेरा और रज़िया का फैसला करते जाइये !"

"मनसूर, मैं तेरा रक्त पी जाऊँगा !"

"मैं नहीं पीने दूँगा। इतनी शक्ति है मुझमें।"

यह गरमा-गर्म बातें सुनकर अम्माजान कमरे में तशरीफ़ ले आईं। उन्होंने पूछा—

"क्यों लड़ रहे हो, तुम दोनों ?"

"देख लीजिए लच्छन अपने चहेते के ! सुनिए, क्या फरमा रहे हैं साहब-ज़ादे !"

"तौबा, वही जली-कटी बातें ! कुछ मैं भी तो सुनूँ !"

"आज्ञा हुई है कि रज़िया को तलाक़ दे दो।"

(बहुत अधिक आश्चर्य-चकित होकर) "क्या ?"

"जी हाँ !"

"क्यों मनसूर ?"

"ठीक है अम्मां !"

"क्या कह रहा है तू ?"

"मैं रजिया से विवाह करना चाहता हूँ। भाई साहब से कहता हूँ कि वह तलाक दे दें, लेकिन वह ख़फ़ा हो रहे हैं।"

(क्रोधवश होकर) "यह कहते हुए तेरी जबान न कट गई ?"

"क्यों कट जाती जबान मेरी ?"

"बड़े भाई से तलाक़ दिलवाकर भाभी से शादी रचाएगा ? क्यों ?"

"तो इसमें हर्ज ही क्या है ?"

"कुछ हर्ज नहीं है ?"

"बिलकुल नहीं''''' सीधी-सी बात है। भाई साहब रजिया को नहीं चाहते। मैं चाहता हूँ उसे। फिर वह क्यों ख्वाहम-ख्वाह पति बने रहें। मेरा जीवन भी खराब करें और उसका जीवन भी बर्बाद करें।"

"नालायक़, तू समझता है, यदि शाकिर तलाक दे दे तो रजिया तुझसे विवाह कर लेगी ? वह ऐसी शरीफ़ लड़की है, कि तुझ पर थूकने की भी नहीं।"

"जी नहीं, यह केवल आपका विचार है। वह भी मुझसे प्रेम करती है।"

(हैरान होकर) "रजिया तुझसे प्रेम करती है ?"

"जी हाँ !"

"क्यों दोष लगाता है एक शरीफ लड़की पर ?"

"दोष ? यह भी खूब कही। बुलवाइये उन्हें, चलिए यहीं फैसला हुआ जाता है।"

यह बातचीत हो रही थी कि सामने से रजिया गुज़री। शाकिर ने आवाज़ दी।

"रजिया, यहाँ आओ !"

वह आई, उसने देखा कि फौजदारी अदालत जमी है। शाकिर के चेहरे

पर सुर्खी चढ़ी है। मनसूर चुप-चुप है और बड़ी बी कपड़ों से बाहर हुई जा रही हैं। वह आकर खड़ी हो गई। शाकिर ने बड़ी रोबीली आवाज़ में पूछा—

"तुम मनसूर से शादी करना चाहती हो ? तुम्हें उससे प्रेम है ?"

"कौन कहता है ?"

"मैं !" मनसूर ने कहा,

"बिल्कुल झूठ !"

"डर गईं इन लोगों से ? कह दो साफ़-साफ़, तुम मुझसे प्रेम करती हो; इनसे तलाक लेना चाहती हो ! मुझसे शादी करना चाहती हो।"

"तुम्हारे कहने से कह दूँ ? मुझे तुमसे कतई प्रेम नहीं है। मैं कदापि तलाक नहीं लेना चाहती।"

"यह तुम्हारी कमजोरी है, और मैं जानता हूँ कि हर स्त्री कमज़ोर होती है।"

अब शाकिर से सहन न हो सका। वह मनसूर पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ा। अम्माजान बीच में आ गईं। उन्होंने बिफरे हुए स्वर में कहा—

"मेरे लड़के पर तो पिले पड़ते हो ? ज़रा अपनी बेगम साहिबा की भी तो खबर लो। वह ठहरा लड़का, यह ठहरीं एक सांसारिक स्त्री ! इन्होंने डोरे डाले, वह आ गया इनके फंदे में !"

"अम्मां, तुम भी ऐसी ही बातें कहोगी ?" रजिया ने बड़ी हसरत से कहा।

"बेटा, मैं तो खरी-खरी कहती हूँ। जो जैसा करेगा, वैसा भरेगा।"

"मैंने डोरे डाले ?"

"और क्या वह गया था तुम्हारे पास संदेशा देने ? जब देखो, तब आओ मनसूर शतरंज खेलें। चलो मनसूर, चौसर की एक बाजी हो जाए ! क्यों मनसूर वह पुस्तक लाए हमारी ? मनसूर यह तो बताओ, वह फ़िल्म कैसी है ? वह अभिनेत्री कैसी है ? हम भी देखेंगे वह फिल्म ! मेरी आँखें नहीं जो मैं देखती नहीं, कि मेरे कान नहीं जो मैं सुनती न हूँ ? सब कुछ देखती हूँ

बीबी अपनी आंखों से ! सब कुछ सुनती हूँ बातें अपने कानों से ! मेरे चुप रहने से यह अर्थ न निकालो कि मैं कुछ समझती नहीं !"

रज़िया की बात से शाकिर का मूड ठीक हो गया था, परन्तु माँ से यह सब बातें सुनकर वह फिर गुस्से से भर गया।

"यदि तुम तलाक लेना चाहती हो, मैं अवश्य तुम्हें तलाक दे दूँगा, परन्तु याद रखो, मनसूर से तुम्हारी शादी कदापि नहीं हो सकती !"

"कैसी बातें कर रहे हैं आप ? मैं क्यों तलाक चाहूँगी ? मैं क्यों किसीसे शादी करने लगी ? आप भी ऐसी बातें करने लगे ?"

"देखो, रज़िया, कमजोरी मत दिखाओ ! कहदो साफ़ यही अवसर है !"

"मुझे जो कुछ कहना था, साफ़-साफ़ कह चुकी। न समझो तो तुम पर खुदा की फटकार !"

"ज़बान सम्भाल लड़की ! फटकार खुदा की तुझ पर ! तेरे होतों-सोतों पर ! चली है मेरे लड़के पर फटकार भेजने !"

रज़िया ने कोई उत्तर नहीं दिया। रोने लगी। शाकिर गुस्से में बाहर चला गया।

५

बहुत दिनों से रज़िया अपने घर नहीं गई थी। जब से वह शाकिर की नजर से उतरी थी, उसके सब हौसले गिर गए थे। पहले वह खुश-खुश अपने घर पहुँचती थी। सखियों-सहेलियों से मिलती थी। हँसी-कहकहों के संसार में खो जाती थी, इसलिए कि उसका सुहाग बना हुआ था। परन्तु अब उसके बलवले सर्द पड़ चुके थे। माँ-बाप के बार-बार तकाजे और कहने के बावजूद, वह मायके जाने का नाम नहीं लेती थी। वह नहीं चाहती थी कि उसकी उदासी का भेद लोगों को पता चले। इसीलिए वह ससुराल में ही जीवन के दिन काट रही थी।

परन्तु अब ससुराल में नयी स्थिति उत्पन्न हो गई थी। शाकिर का ठंडा बर्ताव तो वह सहन कर सकती थी, परन्तु मनसूर के इस खुले आम प्रेम, और प्रेम की घोषणा, पागलों की भाँति तलाक़ की माँग और इसी तरह बेपरवाही से शादी करने की माँग को वह किसी प्रकार भी सहन नहीं कर सकती थी। वह भी इस हालत में कि सास ने सारा दोष उसीके सिर थोप दिया था। सास की दृष्टि में मनसूर तो मासूम था, निर्दोष था, और दोषी वही थी। जैसे वही मनसूर को बरगला रही थी—उसका अग़वा कर रही थी। इस जुल्म को वह किस प्रकार सहन करे?

अब ससुराल में वह घबराती थी। घर उसे काटने को दौड़ता था। हर वस्तु उसपर हँसती हुई, उसका मजाक़ उड़ाती हुई, उस पर व्यंग्य करती हुई दीख पड़ती थी। वह तो घर की नौकरानियों और मामाओं का सामना करने से भी घबराती थी। वह घर के बच्चों और लड़कों तक से बात करने में

झिझकती थी। वह सास को अपना मुख ही नहीं दिखाती थी। वह पति के सामने जाती हुई हिचकचाती थी। क्या मुँह लेकर जाए ? किस मुँह से बात करे ? यह सब लोग वही तो हैं जो उसे जुलैखा समझ रहे हैं और मनसूर को यूसुफ़।

वह कभी-कभी सोचती, कहीं से ज़हर मिल जाए तो खा लूँ। इस बदनामी से तो छुटकारा मिले। शाकिर आयु पर्यन्त बात न करता, मुँह न देखता, ध्यान तक न देता, यह सब गवारा था, परन्तु यह ताना किस कान से सुनूं कि मैं मनसूर से प्रेम करती हूँ, उसे चाहती हूँ। और मनसूर की ढिठाई तो देखो कि मेरे मुँह पर कहता है, मैं शाकिर से घृणा करती हूँ और उसे चाहती हूँ। शाकिर से तलाक लेना चाहती हूँ और उससे विवाह करना चाहती हूँ। या अल्लाह ! धरती ही फट जाती कि मैं इसमें समा जाऊँ। आकाश भी नहीं टूट पड़ता कि मुझे ढाँप ले।

यह प्रभाव रज़िया पर इतना चढ़ा कि वह बिन बुलाए ही ससुराल से मायके चली गई। उसे आशा थी कि वहाँ उसे मानसिक दुःख और दिमागी कोफ्त से छुटकारा मिल जाएगा। वहाँ उसे कोई ताने नहीं देगा। वहाँ न मनसूर होगा, न उसकी वह बेशर्मी के कर्म ! मायके पहुँचकर वास्तव में ही उसने सकून सा अनुभव किया। ससुराल में वह जिस उलझन में गिरफ्तार थी यहाँ कहीं उसका पता तक नहीं था।

एक रोज़ घर में ग़लग़ला मचा, "हाशिम आ गया ! हाशिम आ गया !!

हाशिम उसका मौसेरा भाई था। बाल्यकाल में दोनों एक साथ खेले थे। बड़े स्नेह-भाव और बेतकल्लुफी से रहते थे। बचपन युवावस्था में परिणत होने लगा, परन्तु इन दोनों के परस्पर व्यवहार में कोई परिवर्तन न हुआ। वही बेतकल्लुफ़ी, वही हंसी-ठट्ठा।

फिर वह आगे विद्या प्राप्त करने के लिए विलायत चला गया। और लोग दो-तीन वर्षों में आ जाते हैं, परतु वह छः वर्षों में भी नहीं आया। बाप ने तार दिए, माँ ने पत्र लिखे, मौसी ने विनती की, परन्तु हाशिम सबको भूल

चुका था। हर पत्र में दूसरे जहाज़ से आने का प्रण करता था परन्तु नहीं आता था। न जाने क्या बात थी।

आज पूरे छः वर्षों के पश्चात् हाशिम आया था। जब वह गया था तो रज़िया चौदह वर्षों की अल्हड़ लड़की थी। अब वह लौटा तो बीस वर्षों की एक युवा स्त्री थी। दोनों में बहुत परिवर्तन आ गया था। हाशिम में भी और रज़िया में भी। परन्तु जब वह मिले, तो इस प्रकार, मानो छः वर्ष पहले का युग लौट आया है। वही बेतकल्लुफ़ी, वही हँसी, वही मज़ाक !

ससुराल में रज़िया को जो मानसिक कष्ट पहुँचा था, मायके में वह हाशिम के आने से बिल्कुल दूर हो गया। उससे मिलकर वह अपने बाल्यकाल में लौट सी जाती थी। इस बात को बिल्कुल भूल जाती थी कि अभी कुछ दिन पूर्व ही वह किन दुःखों में फँसी हुई थी।

हाशिम एक सुन्दर युवक था। अंग सब सुघड़, सूरत मन मोह लेने वाली, बातें मीठी, मुख पर रौब भी और नर्मी भी।

हाशिम और रज़िया घंटों बैठे बातें किया करते। इन दोनों को बातों के सिवाय और काम भी क्या था ? हाशिम विलायत के किस्से मज़े ले-लेकर सुनाता कुछ कहीं से, कुछ कहीं से !

रज़िया ध्यान-मग्न हो उसकी बातें सुनती। कुरेद-कुरेदकर उससे प्रश्न करती। बार-बार वहाँ की रंगीनियों की चर्चा छेड़ती। एक बार कहीं बातों में हाशिम ने कह दिया था कि मैंने एक लड़की मिस शैरफ़ से प्रेम किया था, परन्तु वह बेवफ़ा निकली। उसने मुझे खूब लूटा, फिर विवाह से इन्कार कर दिया। हाशिम जब उसकी चर्चा करता, उसे दो-चार गालियाँ अवश्य देता। बहुत रुलया गया था वह ! रज़िया हंस हंसकर मिस शैरफ़ के किस्से सुनती। वकीलों की भाँति जिरह करती। नए-नए ढंग से उसकी चर्चा छेड़ती। हाशिम यदि इन बातों से कतराता, तो वह छेड़ती—

"दुख होता होगा तुम्हें इस ज़िक्र से ! छोड़ो, कोई और बातें करो।"

हाशिम तिलमिला उठता। बिगड़कर कहता—

"रज़िया ! तुम्हें उससे इतना लगाव क्यों है ? क्या इसलिए कि वह एक

स्त्री है, इसलिये तुम उसका समर्थन करना चाहती हो ? उसका पार्ट लेना चाहती हो ?"

इस नोक-झोंक के बाद वह दोनों फिर पहले की भाँति घुल-मिलकर बातें करने लगते। गप-गोष्ठी वह वस्तु है, जिसकी कोई चरम सीमा नहीं है। हफ्तों तक बातें करते रहिए, परन्तु जमी रहेगी। यही स्थिति इन दोनों की थी। उनकी बातें समाप्त ही नहीं होती थीं।

६

अपने उद्यान में रज़िया टहल रही थी। शाम को वह प्रायः वहीं चहल कदमी किया करती थी। हाशिम आ गया। वह भी वहीं टहलने लगा। दोनों टहलने जाते थे। कभी-कभी किसी वृक्ष के पास वह रुक जाते थे। बातों का सिलसिला जारी रहता।

रज़िया ने कहा—

"हाशिम, तुमने सारे संसार की सैर की है। न जाने कितनी पुस्तकें चाट चुके हो। और अब भी जब देखो, कुछ न कुछ पढ़ा ही करते हो। एक बात पूँछू, बताओगे?"

"अवश्य बताऊँगा, पूछो!"

"प्रेम की व्याख्या क्या है? कहते हैं, दिल को दिल से राहत होती है। परन्तु मैंने तो इसके उलटा ही पाया है। सुनती हूँ, प्रेम प्रभावहीन नहीं रहता। परन्तु मैंने तो इसका प्रभाव कभी नहीं देखा।

"यह तुम मुझ पर चोट कर रही हो।"

'क्या अर्थ?"

यही कि तुम मुझसे स्नेह भाव की बातें करती हो, और मैं इनकी कदर नहीं करता। है न यही बात?"

"खूब समझे! होश में हो? मैं पूछ क्या रही थी और तुम कहने क्या लगे?"

'रज़िया, अब टालो नहीं! मैं समझता हूँ तुम मुझसे प्रेम करती हो। मैं भी तुमसे प्रेम करता हूँ। मैंने योरुप की रंगीनियाँ देखीं। मैंने फ्रांस की वासना

में डूबी ज़िन्दगी देखी है। मैंने इटली की सुन्दर नारियों को देखा है। मैंने अमरीका की सुन्दरियों का नज़ारा देखा है। मैंने स्पैन की काले नयनों वाली प्रेमिकाओं को देखा है।

"तूने ऐ इकबाल यौरुप में उसे ढूँढा अबस
बात जो हिन्दोस्ताँ के माह-सीमाओं में थी!"

तुम हर स्थान पर मेरी आँखों में बसी रही हो। तुम्हें मैं कहीं भूल न सका। जब से भारत आया हूँ, प्रेम का पागलपन फिर मस्तिष्क में समा गया है। मैं तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकता। तुम्हें पाकर रहूँगा!"

"हाशिम! अकल के नाखुन लो। एक साँस में कितनी बातें कह गये हो तुम! मैं एक व्यक्ति की पत्नी हूँ। उससे मुझे प्रेम है। उसकी बेवफाई और रूखे व्यवहार के बावजूद मैं उसे चाहती हूँ। उसका ध्यान मुझे आया और तुम्हारी विद्या और तजरुबे की सहायता से मैंने इस पहेली को हल करना चाहा, और तुम लगे आएँ वाएँ शाएँ करने! कुछ पागल हुए हो?—ऐसी बातें न किया करो, मुझे इनसे दहशत होती है!"

"रज़िया! तुम वह वफा का प्रण भूल गई जो हमारी मूक जबान ने, हमारी मासूम आँखों ने, हमारे बेलोस सम्बन्धों ने परस्पर किया था? वह दिन तुम्हें याद नहीं आते, जो हमने, तुमने, खेलकर काटे थे? वह लड़ाइयाँ और उनके हंगामे, वह मिलाप और उसके तराने, उनमें से तुम्हें कुछ भी याद नहीं आता? सब भूल गईं तुम? कितनी कठोर कितनी स्नेह-हीन हो तुम!"

"फिर वही बातें? जो कुछ कह रहे हो, सब ठीक है। परन्तु अब क्या हो सकता है? मेरी एक दूसरी दुनिया आबाद हो चुकी है। उसे वीरान किस प्रकार कर दूँ?"

"चाहो तो कर सकती हो। इस वीरानी की नींव पर प्रेम और प्रसन्नता का बुर्ज बना सकती हो!"

"वह किस प्रकार?"

"शाकिर से तलाक ले लो और मुझसे विवाह कर लो!"

(गुस्से से) "क्या कहा?"

5502

"शाकिर से तलाक ले लो और मुझसे शादी कर लो ! और क्या ?"

"तुम्हें शर्म नहीं आती ऐसी बातें करते हुए ?"

"शर्म काहे की ? मैं तुम्हें यह कब कहता हूँ कि मेरे साथ कहीं भाग चलो। मैं तुमसे यह माँग कब करता हूं कि मेरे साथ प्राइवेट रूप में अन अधिकृत सम्बन्ध स्थापित कर लो। मेरी तुमसे यह फर्माइस कब है, कि तुम व्यवहार के विरुद्ध, शरह के विरुद्ध, शराफत के विरुद्ध कोई हरकत करो ! मैंने तो बड़ी असूली और सीधी ही बात कही है ! एक व्यक्ति है जो संयोग से तुम्हारा पति है, परन्तु तुम्हें कदापि नहीं चाहता। एक और व्यक्ति है जो तुम्हें बहुत चाहता है और अभाग्य से तुम्हारा पति न बन सका। फिर क्या यह मूर्खता नहीं है कि तुम उससे तो प्रेम करती रहो, जो तुम्हें जरा भी नहीं चाहता और उसे ठुकरा दो, जो तुम्हें पूजता है ?"

"तुम लाख भाषण दो हाशिम, परन्तु जो तुम चाहते हो, वह नहीं हो सकता !"

"यही तो मैं पूछता हूं कि क्यों ?"

"मैं शाकिर से बेवफाई नहीं कर सकती ?"

"और वह बेशक वफा को उल्टी छुरी से काटता रहे ?"

"वह जाने और उनका काम !"

"भारतीय नारी की यही तो कमजोरी है। यौरुप को देखो, कितनी प्रगति शील स्त्रियाँ हैं और किस सुख से जीवन व्यतीत कर रही हैं ! अरे भाई, विवाह तो पसंद और अधिकार की वस्तु है। निभती है तो शौक से और नहीं निभती तो हटाओ इस बखेड़े को। कैसा पति, कहाँ की पत्नी ! "

"तो किसी यौरोपियन स्त्री से क्यों न कर लिया विवाह "?

"मूर्खता की।"

"अब भुगतो इसे !"

"तो मैं तुमसे निराश हो जाऊँ ?"

"मैं तो जो कहना था, कह चुकी !"

"रज़िया, यह तुम्हारे दिल की आवाज़ नहीं है। यह समाज के डर, परिवार के डर और बदनामी के डर से तुम कह रही हो !"

"यहाँ मैं हूँ और तुम हो; न समाज है, न परिवार है, न बदनामी है। यहाँ मुझे झूठ बोलने की क्या आवश्यकता थी ?"

"बहरहाल मैं अपनी कोशिश जारी रखूँगा !"

"क्या अर्थ ?"

"अर्थ यह कि जब तक मैं जीवित हूँ, तुम्हें पाने की कोशिश करता रहूँगा।"

"अच्छी ज़बरदस्ती है यह !"

"ज़बरदस्ती ही सही !"

"क्या करोगे तुम ?"

"जो कुछ कर सकता हूँ।"

"वास्तव में तुम्हें मुझसे प्रेम है ?"

"बे हद !"

"फिर तुम वह बात क्यों करना चाहते हो, जो मेरे मानसिक दुःख का कारण है ?"

"यह बात तो मैं नहीं मानता। मुझे विश्वास है, कि तुम मुझे चाहती हो !"

"कैसे विश्वास है ?"

"दिल को दिल से राहत होती है।"

"फिर शाकिर भी मुझे चाहता है।"

"ज़हरा का घर बसाकर ?"

"यही सही !"

"अच्छा, एक बात पर समझौता कर लो !"

"वह क्या ?"

"तुम निष्पक्ष रहो, मैं सब कुछ भुगत लूँगा !"

"जिस बात की मैं विरोधी हूँ, उसमें निष्पक्षता का क्या प्रश्न ?"

यह बातें ही रही थीं कि रज़िया की छोटी बहन सुग़रा आ गई। उसके आते ही बातचीत का रुख बदल गया।

७

शाकिर बाहर से अभी वापस आया था। वह मर्दाना में बैठा चाय पी रहा था कि हाशिम पहुँचा। उसने शाकिर से हाथ मिलाया और बेतकल्लुफ़ी से कहा—

"मैं अपना परिचय स्वंय ही दे दूँ। मेरा नाम हाशिम है और रज़िया मेरी मौसेरी है। मैं कई वर्षों तक विलायत में रहा, और अब डिग्री लेकर आया हूँ। आप शाकिर साहब ही हैं न ?"

"जी हाँ मेरा नाम शाकिर है। बड़ी खुशी हुई आपसे मिलकर। तशरीफ रखिए, चाय हाज़िर है।"

"जी नहीं चाय नहीं पीऊँगा। आपसे एक बड़े ज़रूरी मामले पर बात चीत करने आया हूँ।"

"फर्माइये, इरशाद !"

"मेरी आपकी यह बात-चीत पूरी सफ़ाई और सचाई के साथ होगी !"

"हाँ, हाँ, शौक से कहिए।"

"मैं आपके घर पर भिखारी बनकर आया हूँ।"

"यह कैसी बातें कर रहे हैं आप ?"

"आप वायदा कीजिए, कि मुझे निराश नहीं लोटाएंगे।"

"मुझसे आपकी जो सेवा हो सकेगी, करूँगा।"

"मैं चाहता हूँ······।"

"फर्माइये, फर्माइये।"

"आप हमारे रास्ते से हट जाएँ !"

"क्या मतलब ? मैं आपके रास्ते में किस प्रकार बाधक हूँ ?"

"बाधक हैं आप !"

"किस प्रकार ? कहिए तो कुछ !"

"आप रज़िया को तलाक दे दीजिए। मैं उससे विवाह करना चाहता हूँ। हम दोनों बाल्यकाल से एक दूसरे से प्रेम करते हैं।"

"आप बहुत कमीने मनुष्य हैं ! कृपया यहाँ से तशरीफ़ ले जाएँ।"

"मैं अभी चला जाऊंगा, आप केवल हाँ कह दीजिए।"

"नौकर को पुकारता हूँ। उसके साथ जाने से बहतर यही है कि आप स्वयं चले जाएँ।"

"आप नौकर को बुलाएँ, या स्वयं अखाड़े में आकर मुझसे कुश्ती करें। मैं इस चैलंज को क़बूल करने से घबराता नहीं हूँ। परन्तु आपको रज़िया से तो हाथ हटाना ही होगा।'

"आप मुझे आज्ञा दे रहे हैं ?"

"यही सही !"

"मैं आपकी आज्ञा मानने से इन्कार करता हूँ !"

"फिर परिणामों के जिम्मेवार आप होंगे।"

"कर लीजिए, जो आपका जी चाहे।"

(जेब से पिस्तौल निकालकर) "मैं फैसला करना चाहता हूँ। आपको मुहलत देता हूँ। जाइये आप भी पिस्तौल ले आइये। हम दोनों साथ-साथ एक दूसरे पर वार करें। जो मर जाए वह दूसरी दुनिया में, जो जीवित रहे वह इस दुनिया में रज़िया का मालिक बने।"

अब शाकिर अधिक सबर न कर सका। "वह अभी आया" कहकर गया। अलमारी से पिस्तौल उसने निकाला और उसे लेकर बाहर चला। अम्मांजान ने यह मनज़र देखा, तो दहल उठीं। बिजली की सी तेज़ी से सामने आईं।

"यह क्या बेटा ?"

"मुझे बाहर जाने दो !"

"इस प्रकार क्यों ? पिस्तौल की क्या जरूरत है ?"

"हाशिम को मारूँगा !"

"हाशिम कौन ?"

"रज़िया का नया प्रेमी !"

"क्या कह रहे हो तुम ?"

"सच कह रहा हूँ। वह आया है। बाहर खड़ा है। कह रहा है तुम रज़िया को तलाक दो। मैं उससे शादी कर लूँगा।"

"बेटा ! अपना माल खोटा तो परखने वालों का क्या दोष ? साहबजादी ही जब नए प्रेमी पैदा कर रही हैं, तो किसी और को क्या उलहाना ? तुम बैठो, मैं हाशिम से बातें करती हूँ।"

"कोई आवश्यकता नहीं। वह मेरे पास आया है। उसने मुझसे प्रश्न किया है। मैं उसे उत्तर दूँगा।"

इतने में पिस्तौल चलने की आवाज़ बाहर के कमरे में आई। शाकिर अपना दामन छुड़ा कर तेजी से बाहर के कमरे में पहुँचा। हाशिम खड़ा हुआ था।

"पिस्तौल तुमने किस पर चलाया ?"

"दरवाज़े पर।"

"क्यों ?"

"तुमने इतनी देर आने में लगाई। मैं तुम्हें इतना कायर नहीं समझता था ! मैं प्रतीक्षा न कर सका। इसलिये मैंने चेतावनी के रूप में फ़ायर कर दिया। याद रखो, आगे तुम्हें मुहलत न मिलेगी।"

"मैं मुहलत नहीं चाहता ! यह देखो, मेरे हाथ में पिस्तौल है। मैं मुकाबला करूंगा। संभालो अपना पिस्तौल, करो हमला !"

"अब नहीं फिर कभी।"

"यह क्यों ?"

"एक ही गोली थी मेरे पिस्तौल में। वह ख़त्म हो गई।"

"कोई बात नहीं। जब चाहो आओ। यह दरवाजा हर समय खुला है तुम्हारे लिए!"

"धन्यवाद।"

शाकिर फिर अन्दर पहुँचा।

इतनी देर में अम्माँजान ने पता नहीं, कितनों की तलाबत कर डाली थी। उन्होंने जो शाकिर को ठीकठाक वापस आते देखा, तो खुश हो गईं। पूछा—

"क्या हुआ बेटा?"

"मुकाबला फिर किसी दिन होगा।"

"क्यों?"

"कुछ ऐसी ही बात है।"

"छोड़ो न रजिया को। ऐसी बेराह लड़की को पत्नी बनाने में तुम्हें शर्म नहीं आती?"

"यह पिस्तौल पहले रजिया पर चलेगा, फिर मनसूर पर, फिर हाशिम पर, फिर मुझ पर!"

"बेटा, होश में आओ। अपनी माँ पर तरस खाओ।"

"इसके सिवाए और कोई रास्ता नहीं इस घर में मेरे लिए! मेरे घर में मेरा छोटा भाई उससे शादी करना चाहता है। उसके घर में हाशिम उसका प्रेमी पैदा हुआ है। वह भी उसका पति बनना चाहता है। वह भी मुझसे यही कहता है कि मैं रजिया को तलाक दे दूँ। मेरा घर न हुआ, उसके प्रेमियों का मोर्चा हो गया। मैं जरूर उसे मारूँगा। उसके आशिकों का सफाया करूँगा, फिर अपना खातमा भी कर लूँगा।"

"अच्छा, पिस्तौल मुझे दे दो।"

"तुम लेकर क्या करोगी?"

"रख दूँगी एहतियात से, फिर तुम ले लेना।"

"लो रख लो। हाँ, सुबह आदमी भेजकर रजिया को बुला लो।"

"बुलवा लूँ उसे?"

"हाँ !"

"क्यों बुलवाते हो उसे ? लानत भेजो उस पर ! जहरा ही से शादी कर लो।"

"यह नहीं हो सकता। वह यहाँ आएगी। यहीं उसकी कबर बनेगी। उसकी कबर पर मनसूर, हाशिम और मेरी कबरें बनेंगी। एक ही दिन में, एक ही समय में, एक ही स्थान पर।"

"मैं तो नहीं बुलवाती !"

"यदि तुमने न बुलवाया तो तुम मेरा मुँह कभी न देखोगी। इस घर में मैं आग लगा दूँगा।"

"अच्छा, बुलवा लूंगी, परन्तु तुम स्वयं पर काबू रखो !"

शाकिर ने कोई उत्तर न दिया। बाहर चला गया।

८

घर से निकलकर शाकिर सीधा जहरा के कमरे पर पहुँचा। वह उस समय उदास और परेशान था। जहरा नें रोज की अपेक्षा इस रंग में जो उसे देखा, तो पूछा—

"क्या बात है, चुपचुप क्यों हो ?"

"कुछ नहीं।"

"किसीसे लड़ाई हुई है ?"

"नहीं, तो !"

"तुम्हें हमारे सिर की कसम, जो न बताओ तो हमारा शव देखो !"

"कुछ घरेलू चिन्ताएँ हैं।"

"बेगम साहबा से चल गई ?"

"छोड़ो इन बातों को······हाँ, तुमने आग़ा 'हशर' का नाटक 'आँख का नशा' देखा ?"

"देखा।"

"कैसा है वह ?"

(मुस्करा कर) "हम लोगों की खूब पोल खोली है। वेश्या-जाति का ऐसा बुरा रुख पेश किया है कि खुदा की पनाह !"

"फिर ग़लत है कुछ ?"

"सच सही, परन्तु हमें तवायफ़ (वेश्या) बनाता कौन है ? तुम जैसे भद्र-पुरुष !"

"हम लोगों ने क्या तवायफ़ों की ट्रेनिंग के लिए कोई कालेज खोल रखा है ?"

"कालेज ? तुम में का हर व्यक्ति स्वयं में ही एक कालेज है, जिसकी दी हुई डिग्री स्त्री को तवायफ़ बना देती है।"

"हमारी समझ में नहीं आतीं यह बातें।"

"क्यों आने लगीं। दुखती रग जो हुई।"

"तुम्हारा विचार है कि तवायफ़ें वास्तव में बड़ी मासूम होती हैं ?"

"वास्तव में ! तवायफ क्यों कहते हो; स्त्री कहो न ? हर स्त्री मासूम स्वभाव की होती है, परन्तु यह शरीफ़ भद्र मनुष्य उसे लालच देता है, सब्ज़ बाग़ दिखाता है, उसकी मजबूरियों से अनधिकृत फायदा उठाता है। उसे मजबूर करके अपनी वासना का निशाना बनाता है। फिर जब उसका जी भर जाता है तो धता बता देता है और किसी अन्य नयी खिली कली की तलाश में लग जाता है।"

"आज तो बड़ी विचित्र बातें कर रही हो तुम ?"

"जो चाहो कह लो, परन्तु हैं यह सच्ची बातें।"

"ज़हरा, मैं यह तो मानता हूँ कि तवायफ़ों का एक गिरोह ऐसा भी है जिसे परिस्थितियों ने तवायफ़ बना दिया है, परन्तु तुम खानदानी और पेशावर तवायफ़ों के सम्बन्ध में क्या कहोगी ? क्या वह माँ के पेट से तवायफ़ नहीं पैदा होतीं ? क्या वह इसे अपना जन्माधिकार नहीं समझतीं कि आदमी के बेटों को बुलाएं, बतलाएं और अपने फंदे में शिकार करे ?"

"मैं इस बात को नहीं मानती। आप लोग तवायफ़ को एक घनौनी वस्तु समझते हैं और वह है भी ऐसी ही, परन्तु रातों को छिप-छिपकर उसके कोठे पर पहुँचते हैं। आप उसे मक्कार, बेवफ़ा, और मतलबी समझते हैं। और वह होती भी ऐसी ही है, परन्तु जब तक आप उसके दर्शन न कर लें आपका खाना ही हजम नहीं होता। आप उसे शरीर बेचने वाली, बेशर्म और न जाने क्या-क्या समझते हैं, और मैं मानती हूँ कि यह दोष ठीक है—फिर भी आप सब लोग अपनी वफ़ादार, सती सावित्री के समान, पतिव्रता पत्नियों को छोड़कर,

उनके अरमानों और याचनाओं का वध करके, उन्हें झिड़ककर, उनकी वफ़ादारियों से मुँह मोड़कर, हमारे विलास महल को आबाद करते हैं।

"तो इससे क्या हुआ ?"

"इससे कुछ हुआ ही नहीं ? इससे यह हुआ कि आपने अपनी सामयिक वासना की पूर्ति के लिए हमसे वह वस्तु खरीदी, जिसे हम बेचकर और आप खरीदकर, नफ़े में नहीं रहते, बल्कि कुछ घाटा ही उठाते हैं।"

शाकिर चुप बैठा रहा। जहरा ने कुछ क्षण रुककर कहा—

"आप हमें बेहया कहते हैं। मैं कहती हूँ, हमें बेहया कहने वाले स्वयं बेहया हैं।"

"गाली और कोसने की बात नहीं, भई !"

"यह गाली नहीं, सचाई है। मैं एक बात पूछती हूँ।"

"अवश्य पूछो।"

"बुरा न मानियेगा !"

"बुरा क्यों मानेंगे। पूछो।"

"यदि आपको यह ज्ञात हो कि आपकी पत्नी किसी दूसरे से सम्बन्ध रखती है, किसी अन्य व्यक्ति से बातचीत रखती है, किसी अजनबी को चाहती है। तो आपकी क्या हालत होगी ? ······बताइये···सच कहिएगा, मर जाने और मार डालने को जी नहीं कहेगा आपका···?"

शाकिर चुप बैठा रहा।

"परन्तु वही स्वभिमानी और इज़्ज़त आबरू वाला पति जब हमारे कोठे की सीढ़ियों पर पहला पग रखता है तो उसे यह मालूम होता है कि वह ऐसी वस्तु खरीदने जा रहा है, जो बिकने के पश्चात् भी किसी एक की नहीं है···"

शाकिर के पास एक चुप थी।

"वह वस्तु सबकी साझी है। हर ग्राहक उसके दाम लगाता है। उन्हें अदा भी करता है। अधिक से अधिक उसकी खातिर और मन बहलावा भी करता है। उसके नखरे उठाता है; उसके सितम सहता है। फिर भी उसे अपना नहीं कह सकता। उसे पा नहीं सकता। उसे किसीकी साझेदारी के

बिना अपने इस्तेमाल में, अपनी पत्नी की भाँति ला नहीं सकता। इस सीमा तक कि वह हमारे कोठे पर आकर मनुष्य रहता है और घर में जाते ही हलाकू बन जाता है। हमारे यहाँ अपने शत्रुओं और प्रतिद्वन्द्वियों से वह गर्मजोशी से हाथ मिलाता है···· परन्तु जहाँ पक्षी पंख नहीं मार सकता, जिसका मुख देखने की हिम्मत सूर्य को भी नहीं होती, जिसकी स्वच्छता के फ़रिश्ते गवाह हैं···उसके पास जब जाता है, तो त्यौरियाँ चढ़ी होती हैं और मुख-मंडल पर गुस्से के चिन्ह पैदा होते हैं···।"

"तुम प्रमाणित क्या करना चाहती हो ?"

"यह आप अब तक नहीं समझे ?"

"बिल्कुल नहीं।"

"मैं यह कहना चाहती हूँ कि पत्नी के साथ बुरा व्यवहार करके, और तवायफ़ के 'सबकी साझी' बने रहने पर भी उसके पाँव चूम करके···आप स्त्री को तवायफ़ बनाते हैं। उसका हौसला बढ़ाते हैं।"

"तुम्हारा अर्थ यह है, कि तमाशबीन बालाखानों पर पिस्तौल और डंडा लेकर बढ़ा करें, और जिस प्रतिद्वन्द्वी को देखें, उसे वहीं ढेर कर दें। जिस तवायफ़ को बेवफ़ा पाएँ, उसका सिर तोड़ दें ?"

"यदि इतनी हिम्मत होती, तो संसार में तवायफ़ नाम की कोई वस्तु ही न होती!"

"इसका हिम्मत से क्या सम्बन्ध है ? अरे भई, एक व्यक्ति बालाखाने पर आया, अपना मतलब पूरा किया, मूल्य दिया और चला गया। उसे इन बखेड़ों में पड़ने की क्या आवश्यकता है ? कौन आया, कौन गया, कौन रहा······हमें इस किस्से से क्या कि गाय आई और गधा गया ? मुसाफ़िरों की भाँति आए, बैठे, चले गए हैं।"

"इसीको मैं हवस (वासना) कहती हूँ!"

"तो हम हवस-परस्त (वासनावादी) हैं, क्यों ?"

"मैं किसीका नाम तो नहीं लेती। यह कपड़े जिसको फब जाएं···"

यह कहकर जहरा जोर से हँसी, परन्तु शाकिर गम्भीर बना बैठा रहा।

उसने पूछा—

"मेरे सम्बन्ध में तुम्हारी क्या राय है ?"

"क्या मतलब ?"

"मैं वासन-वादी हूँ कि सुन्दरता का पुजारी ?"

"मैं नहीं जानती।"

"तुम्हें बताना पड़ेगा !"

"और यदि न बताऊँ ?"

"तो मैं यहाँ आना-जाना बन्द कर दूँगा।"

"आप गम्भीर भाव से पूछ रहे हैं तो सुनिए······वासनावादी !"

"(उछलकर) तुम मुझे वासनावादी समझती हो ?"

"जी हाँ।"

"फिर एक वासनावादी से यह मेल-जोल, यह बातचीत क्यों ?"

"हमारा पेशा यही है। हम ईश्वर समान कहाँ से ढूंढकर लाएँ ?"

"मुझे यदि मालूम होता कि तुम मेरे सम्बंध में यह राय रखती हो, तो कदापि मैं तुमसे मेल-जोल न बढ़ाता !"

"शाकिर साहब ! खफ़ा होने की बात नहीं। आपने मेल-जोल मेरे कहने से नहीं बढ़ाया। आप आज चाहें तो इसे समाप्त कर सकते हैं। यह कुछ निकाह तो है नहीं कि तलाक़ देने में बदनामी का भय हो। परिवार वालों से झगड़े का डर हो। मुहर के दावे का अंदेशा हो। यह तो कच्चा धागा है, जब तक चाहे, ढील दीजिए। जब चाहे, जरा-सा झटका देकर तोड़ दीजिए। शेष रहा मेरी राय का मामला, सो वह राय केकल आपके बारे में ही नहीं है, सब के बारे में है। ख्वाह आप हों, ख्वाह सेठ कुन्दनलाल हों, चाहे राजा निवाजश अली हों, चाहे सेठ अकबर अली······मैं सबको वासनावादी समझती हूँ।"

"सबको एक ही लाठी से हाँकना कहाँ की दानाई है ?"

"आप क्या कहना चाहते हैं, कि आप वासना के पुजारी नहीं हैं ?"

"कदापि नहीं !"

"आप मुझसे प्रेम करते हैं ?"

"बहुत अधिक ।"

"आप मुझसे निकाह क्यों नहीं कर लेते ?"

"करोगी निकाह तुम ?"

"हाँ, परन्तु मेरी भी कुछ शर्तें हैं ?"

"वह भी कह डालो !

"मेरा मुहर एक लाख का होगा !"

"एक लाख ?"

"जी हाँ, एक लाख !"

"यह बहुत है ।"

"यह आपत्ति आपने अपने विवाह के समय भी की थी ? क्या आपकी पत्नी का मुहर एक लाख नहीं है ? आप स्वयं ही कह चुके हैं, अब मुकरना नहीं ।"

"है, परन्तु यदि यह मूर्खता की, तो दूसरी बार भी करूँ ?"

"जी, यह मूर्खता नहीं चालाकी है !"

"क्या कहा चालाकी ?"

"जी हाँ, चालाकी, होश्यारी और खुदगर्जी !"

"वह किस प्रकार ?"

"पारिवारिक विवाह के समय आप जानते थे कि मुहर की मांग नहीं होगी; न आप तलाक देंगे, और मुझसे निकाह के समय दोनों बातों का भय है ।"

"मान लिया सच है तुम्हारा विचार तो फिर ?"

"वही हवस परस्ती" "वासनावाद !"

"मुझे समझाओ तो अपना अर्थ ?"

"अर्थ यह है कि आप साठ-सत्तर रुपया पर या हजार दो हजार रुपया मुहर पर निकाह करलें और इस प्रकार मुझे व्यावहारिक रूप में अपनी पत्नी

बना लें, और जब मुझसे जी भर जाए तो वही सलूक मेरे साथ करने लगें, जो अब रजिया के साथ हो रहा है। मैं यदि फरयाद करूँ तो तलाक का परवाना भेजकर अपना गला छुड़ा लें, और फिर किसी और को ढूँढ़ लें। शाकिर साहब, आप लोगों ने मानव-मनोविज्ञान का हाल पुस्तकों में पढ़ा हैं, हमने अपनी आँखों से देखा है, बरता है परखा है। आप हमसे उड़कर नहीं जा सकते !"

"खूब !"

"खूब या बुरा से बहस नहीं है। ईमान से कहिए, गलत कह रही हूँ मैं ?

"नहीं भाई, हम तो तुम्हारी वकालत के कायल हो गए !"

"यही कारण है कि वेश्याएँ अपने दायरे से बाहर नहीं निकलतीं। यही कारण है कि वह मजबूर होकर रण्डी बन जाती हैं। यही कारण है कि वह मर्दों के खेल को बताशे की तरह तोड़ा करती हैं।"

इस बीच में जहरा की अम्मीजान धीरे-धीरे आती हुई दीख पड़ीं। सिर का दुपट्टा, जो बातों की गर्मी में सिर से ढलक गया था, वह उसने ठीक कर लिया, और शाकिर ने सिग्रेट सुलगाना शुरू कर दिया।

बड़ी बी के आते ही वाद-विवाद की यह सभा समाप्त हो गई।

शाकिर ने कहा—

"अब मैं जाता हूं !"

"जाइये।" जहरा ने उत्तर दिया।

"बड़ी बदतमीज छोकरी है। बड़ी आई मेरे लड़के को भेजने वाली। बैठो, बेटा, पान खाओ। तुम्हें देखने को तो आँखें तरसती रहती हैं।" बड़ी बी गरजीं।

"इस समय तो क्षमा कीजिए, एक आवश्यक काम है। फिर हाजिर हूँगा।"

"फिर कब ? कल आओ न ?"

"बहुत अच्छा।"

"और बेटा, वह हमारी कश्मीरी शाल ?"

"वह भी कल लेता आऊँगा।"

"जीते रहो। खुदा दिल की मुराद पूरी करे।"

शाकिर ने घर की राह ली। जहरा अपने कमरे में चली गई और बड़ी बी गाव तकिए के सहारे बैठकर अपनी गुड़गड़ी पीने लगीं।

९

शाकिर घर पहुँचा, जैसा उदास गया था, उससे कुछ अधिक उदास वापस आया। आते ही बिस्तर पर लेटा और सो गया।

सुबह वह नाश्ता कर रहा था कि मनसूर आ गया। शाकिर ने उसकी ओर देखा, परन्तु बोला कुछ नहीं। मनसूर कुछ देर तक चुप बैठा रहा, फिर उसने कहा—

"आपने कुछ फैसला किया ?"

"कैसा फैसला ?"

"भूल गए···वही रजिया के सम्बन्ध में !"

'मत बको, निकल जाओ यहाँ से !"

' मैं अभी चला जाऊँगा यहाँ से···परन्तु मुझे आपका फैसला मालूम होना चाहिए।"

"क्या तुम चाहते हो कि मैं आत्म-हत्या कर लूँ ?"

"आत्म-हत्या यदि करनी होगी—तो मैं करूँगा। आप क्यों यह दुःख उठाएँ ?''

"मनसूर तुम मेरे भाई हो, परन्तु तुम भी मेरी शत्रुता के लिए तैयार बैठे हो।"

"कदापि नहीं···जो आपकी ओर टेढ़ी आँख से देखे, उसकी आँख निकाल लूँ।"

'परन्तु स्वयं चाहे, मुझे जिब्ह ही कर डालो।"

यह बात नहीं।"

"यही तो है···तुमने कभी सोचा तुम्हारी इन बातों से मेरी क्या हालत होती है ? मेरा रक्त खौलने लगता है। जी चाहता है, तुम्हें कत्ल कर डालूं केवल अम्मीजान का विचार मुझे रोकता है।"

'फिर आपने भावुकता की बातें शुरू कर दीं। आप मुझे क़त्ल करना चाहते हैं, तो अपना यह शौक भी पूरा कर लीजिए···परन्तु याद रखिए, जब तक मैं जीवित हूँ, अपनी इस माँग को नहीं छोड़ सकता···या प्राण ही अपने शरीर से बाहर आ जायेंगे, या शरीर अपनी जान तक पहुँच जाएगा !'

'फिर वही पागलपन ?"

'जो चाहें मुझे कह लीजिए···मैं पागल सही, दीवाना सही, परन्तु 'दीवाना नकारे खवेश हुश्यार'—(दीवाना अपने काम के लिए हुश्यार है।) वाला मामला है। मैं दिल से मजबूर हूँ। आपसे वह वस्तु माँगता हूँ, जिसे आपका दिल पसन्द नहीं करता, परन्तु मेरा दिल जिसे हासिल करने के लिए हर कुर्बानी कर सकता है।

"यदि आपको उससे प्रेम होता, तो मैं अपने भावों को कुचल देता। यदि न कुचल पाता तो आत्म-हत्या कर लेता, या कहीं छिप जाता। परन्तु मैं जानता हूँ कि आप रजिया को बिलकुल नहीं चाहते। इसलिए मैं चाहता हूँ कि अपने दिल से उतरी हुई वस्तु मुझे बख़्श दीजिए। जिस प्रकार वह सुगंधित हार जो रातभर गले में सजा रहता है, सुबह होते ही फेंक दिया जाता है। मैं वही बासी, मसला हुआ, सूखा और मुर्झाया हुआ, आपसे माँग रहा हूँ। यदि आप उसे देने से झिझकें, तो मैं कैसे यह मान लूँ कि आप मुझसे प्रेम करते हैं।"

"तुम्हें गलत-फहमी है। तुम मुझसे वह हार माँग रहे हो जो कभी नहीं मुर्झा सकता। जिसे मेरा प्रेम सदैव तरो ताज़ा रखेगा।"

"सबूत ?"

"तुम मेरे बाप हो, जो इस प्रकार बातें करते हो ? दूर हो यहाँ से !"

"जब आप निरुत्तर होते हैं, तो गुस्सा करने लगते हैं।"

"यही सही।"

"तो मैं समझ लूँ कि आप हम दोनों का जीवन बर्बाद करने पर तुले हुए हैं ?"

"मैं दोनों का खातमा कर दूँगा ।"

"रज़िया का भी ?"

"हाँ ।"

क्या अब प्रेमियों का यह कर्म हो गया है कि वह प्रेमिकाओं का खातमा कर डालें ? मेरा हाथ तो रज़िया पर कदापि नहीं उठ सकता । और आप उसे क़त्ल भी कर डालें, तब भी आपका प्रेम सदैव के लिए जीवित रहेगा ?"

"वह बेवफा है, वेहया है । मेरी बदनामी का कारण है । मुझे अब उस पर भरोसा नहीं रहा । मैं जरूर उसका वध कर दूँगा !

"आपने कैसे जाना यह ?"

"वह एक अन्य व्यक्ति से भी प्रेम करती है ।"

"कौन है वह ?"

"है कोई ।"

इस बीच में शाकिर का एक पुराना मित्र मसऊद आ गया । शाकिर "अख्खाह !' कहकर उसकी ओर बढ़ा । वह शाकिर को देखकर कुछ ठिठका, फिर उसे घूरा, फिर लपक कर बड़े प्रेम से हाथ मिलाया और कहा—

'क्या बात है ? आज तुम्हारा चेहरा खिलखिला नहीं रहा है, रो रहा है । मैं दो-तीन मास से व्यापार के सम्बन्ध में अनुपस्थित था । इस बीच में क्या दुर्घटना हुई ?"

"कुछ नहीं, आओ बैठो, बातें करेंगे अभी !"

मसऊद और शाकिर पास-पास बैठ गये । मनसूर अन्दर चला गया और इन मित्रों में बातें आरम्भ हो गईं ।

शाकिर ने आदि से अन्त तक सारा दुखड़ा मसऊद को आँसू भरी आखों के साथ सुना दिया ।

मसऊद ने कहा "मनसूर को तुम सम्भालो । हाशिम मेरा बचपन का यार है । मैं उससे मिलता हूँ ।"

१०

शाम को शाकिर रोज की तरह जहरा के यहाँ पहुँचा । आज भी वह कुछ ढीला-सा था । परन्तु कल से कम । उसे देखते ही जहरा पान बनाने बैठ गई । उसने बीड़ा बनाकर शाकिर को दिया और पूछा—

"कैसा मिजाज है हुजूर का ?"

"तुम्हें क्या ?···अच्छा हूँ ।"

"कुछ गुस्सा उतरा सरकार का ?"

"पागल हो गई हो, गुस्सा कैसा ?"

"मेरी बातें आपको बुरी तो बहुत मालूम हुई होंगी ।"

"(मुस्कराकर) "कुछ-कुछ ।"

"फिर क्या दंड निश्चित किया आपने हमारे लिए—

—कत्ल कर डालो हमें या जुर्म—बख्श दो
लो खड़े हैं हाथ बाँधे हम तुम्हारे सामने ।"

"बड़ी सख्त सजा ।"

"फिर देर क्या है ?"

"तैयार हो तुम सजा भुगतने के लिए ?

"सिर आँखों पर ।"

"मुझसे शादी कर लो !"

"यह सजा नहीं है !"

"फिर ?"

"प्रतिशोध !"

"क्या कहा, प्रतिशोध ?"

"जी हाँ, प्रतिशोध !"

"मैं तुमसे प्रतिशोध लूँगा ? काहे का ? यह भी तो सोचो !"

"मेरी बातें उस दिन आपको बुरी लगीं। उन्हीं का बदला लेने की सोची होगी आपने !"

"तौबा, तौबा, यह तुम मुझसे इतनी बदगुमान क्यों हो, जहरा ?"

"दूध का जला छाछ को भी फूँक-फूँक कर पीता है।"

"मुझे तुमसे यह आशा न थी !"

"फिर बिगड़ गए आप ?'

"बात ही ऐसी करती हो।'

"क्या बात की मैंने ?"

"इतना कुछ कह गईं और कुछ किया ही नहीं ?"

"तो ग़लत कहा मैंने ?"

"बिल्कुल ग़लत !"

"सच कहते हैं आप !"

"एक-एक शब्द सच !"

"क्या यह सच नहीं है कि आप हमें नीच समझते हैं। बुरा और जलील समझते हैं। कमीना और बेवफ़ा समझते हैं। परन्तु दिल के हाथों विवश होकर, या साफ़ शब्दों में, वासना की माँग से विवश होकर आप हमारे यहाँ आते हैं। दिल बहलाते हैं। वासना की आग ठंडी करते हैं और चले जाते हैं।"

"मेरा और तुम्हारा जहाँ तक सम्बन्ध है, यह ग़लत है। मैं तुमसे प्रेम करता हूँ, इसलिए आता हूँ। तुममें शराफ़त पाता हूँ, इसलिए प्रेम करता हूँ। तुममें सभ्यता और वकार देखता हूँ, इसलिए खिंचता हूँ। सच कहना, क्या ग़लत कह रहा हूँ ?"

"केवल यही बात नहीं है।"

"फिर क्या है !"

"देखिए न, यदि यही बात होती, तो सच बताइयेगा, क्या आपकी पत्नी में शराफ़त नहीं है, सभ्यता और सुघड़पन नहीं है, सच्ची मुहब्बत का सागर क्या उसकी छाती में लहरें नहीं मार रहा है, यह प्रेम की वर्षा उस पर क्यों नहीं होती, जिसने मुझे भिगो दिया है ! यह चाहत की बाढ़ उस पर क्यों नहीं उमड़ती, जिसने मुझे डुबो रखा है !

"मेरे सम्बन्ध में आप सौगंध से यह नहीं कह सकते कि मैं पवित्र हूँ, परन्तु अपनी पत्नी के सम्बन्ध में आप कह सकते हैं। फिर यह क्या बात है कि वह तो आपके गुस्से की भागी है और मैं आपके प्रेम की पात्र हूँ !"

"ज़हरा यह बात नहीं है।"

"फिर क्या बात है जनाब ?"

"मेरी पत्नी इतनी पवित्र नहीं, जितनी तुम समझ रही हो उसे !"

"अर्थात् !"

"उसका चाल-चलन मेरी नजरों में मशकूक है।"

"क्या मतलब !"

"वह दूसरों को चाहती है।"

"वास्तव में ?"

"सच कहता हूँ मैं !"

"वह एक को नहीं, कई को चाहती है ?"

"हाँ !"

"फिर तो मेरी नजर में उसकी इज्जत और बढ़ गई।"

"बहुत खूब ! क्यों।"

"बड़े व्यक्तित्व की है वह स्त्री !"

"यह कैसे ?"

"उसने आपसे बदला ले लिया, और जो स्त्री मर्द की ज्यादतियों का बदला ने ले, मेरी नजर में वह देवी है।"

"तो कर लो मुझसे शादी ! तुम भी लेती रहना बदले मुझसे !"

"जितना अच्छा बदला मैं यहाँ रहकर ले सकती हूँ, आपके घर जाकर नहीं ले सकती !"

"तो मैं समझ लूँ, तुम इन्कार करती हो। तुम मुझसे शादी नहीं करोगी।"

"करूँगी, परन्तु एक शर्त है !"

"बिना सुने ही मन्जूर।"

"जी नहीं, सुनकर मन्जूर करनी पड़ेगी वह।"

"अच्छा, तो कह डालो।"

"शाहद के सम्बन्ध में आपकी क्या राय है।"

"तुम्हारा भाई है वह।"

"वह है कैसा ?"

"बहुत नेक, बहुत होनहार, बहुत लायक, बहुत अच्छा, बी० ए० की परीक्षा में प्रथम आया है।'

"यह सब बातें मानते हैं आप ?"

"हाँ-हाँ, कौन काफ़िर इन्कार कर सकता है इससे।"

"फिर उसकी शादी······"

'हाँ-हाँ, मेरे जिम्मा रहा। किसी अच्छे परिवार में उसकी शादी करवा दूँगा मैं।"

"जी इसकी सनद नहीं।"

"फिर ?"

"अपनी बहन सुरैया से कराइए उसकी शादी।"

"सुरैया से शाहद की शा ''

"फिर चौंके आप ? कौन सा ग़ज़ब टूट पड़ेगा इस शादी से ?"

"यह बहकी-बहकी बातें क्यों कर रही हो ?"

"यह बहकी-बहकी बातें हैं ?"

"फिर क्या ?"

"यह नहीं हो सकता ?"

"नहीं ।"

"क्यों ?"

"यह असम्भव है ।"

"किस लिए ?"

"इस सम्बन्ध में बातचीत मत करो, ज़हरा ।"

"इतनी बुरी लगी आपको यह बात ?"

"यही समझ लो ।"

"फिर आप मुझसे शादी क्यों करना चाहते हैं ? मैं इस योग्य हूँ कि आपकी पत्नी बन सकूँ, परन्तु मेरा भाई इस योग्य नहीं है कि आपकी बहन का पति बन सके ? जब कि उसकी योग्यता और लियाकत को आप मानते हैं । उसकी शराफत और अच्छाई के भी आप कायल हैं । फिर यह बात कभी नहीं है कि उसे आप शरीफ न समझते हों । अभी आप कह चुके हैं कि उसकी शादी किसी शरीफ़ और अच्छे परिवार में करवा देंगे । अर्थात् वह इस योग्य तो है कि किसी शरीफ़ और अच्छे परिवार में उसका ब्याह आप करवा दें, परन्तु इस योग्य नहीं है कि आपके से शरीफ़ और अच्छे परिवार में दुल्हा बनकर जा सके । क्यों है न यही बात ?"

"यही सही !"

"मैं भी खूब दुखती हुई रग आप लोगों की पकड़ती हूँ ।"

"मैं मानता हूँ ।"

"इसीलिए तो मैं कहती हूँ कि आप फरेबी हैं, झूठे हैं, धोखेबाज हैं ।"

"यह सब तुमने कैसे समझ लिया ?"

"आप शाहद की शादी किसी शरीफ़ और अच्छे परिवार में करवाने का वायदा जो कर रहे थे ।"

"इस वायदा पर तो मैं अब भी स्थिर हूँ ।"

"तो क्या आपका परिवार शरीफ़ नहीं है या अच्छा नहीं है ?"

"क्यों नहीं है ?"

"फिर चिराग तले अंधेरा क्यों? इसे छोड़कर दूसरे स्थान पर आप ज़हमत क्यों करेंगे ?"

"तुम्हें आम खाने से मतलब है, या वृक्ष गिनने से ?"

"दोनों से ।"

"तो हो चुकी शादी !"

"यह तो मैं पहले से ही जानती थी ।"

"यह कि मैं झूठा हूँ, फरेबी हूँ, धोखेबाज हूँ ?"

"हाँ, यही !"

"आखिर, किस प्रकार ?"

"शाहद की शादी आप किस प्रकार करवाते ? या तो किसी शरीफ़ घराने को यह धोखा देते कि शाहद बड़ा शरीफ़ और खानदानी लड़का है और शादी कर देते। फिर बाद में भेद खुल जाता तो आप दामन झटककर अलग हो जाते। या किसी अच्छे परन्तु परिस्थितियों से विवश और गरीब परिवार की मजबूरियों से अनाधिकृत फ़ायदा उठाते और उन्हें सब्ज बाग़ दिखाकर शाहद को दामाद बना लेने पर राज़ी कर लेते, परन्तु स्वयं साफ बच जाते। अपने घर में इस कमीने का साया तक न पड़ने देते।

"तुम बहुत कड़वी बातें करती हो, ज़हरा ।"

"सच कड़वा ही होता है।"

"अच्छा छोड़ो इन बातों को, बताओ, क्या फैसला किया तुमने ?"

"अभी तक आपको मेरा फैसला मालूम नहीं हुआ ?"

"तुमने फैसला किया कब ?"

"कर लिया'''।

आज से आप ग़रीब खाना (मेरे घर) तशरीफ़ मत लाया करें।"

"शादी तो शादी, अब घर आना भी मना हो गया ?"

"जी हाँ ।"

"आख़िर इसका कारण ?"

"इतने तजरुबे हासिल कर चुकी हूं। अब मुझे नए तजरुबे हासिल करने की आवश्यकता नहीं रही।"

"अच्छा शादी न सही, परन्तु हमारे-तुम्हारे सम्बन्ध क्यों टूटें?"

"जो सम्बन्ध कच्चे धागे से कमज़ोर हों, उनका टूटना ही अच्छा है।"

"तो यह समझ लूँ कि यह तुम्हारा अन्तिम निर्णय है?"

"बिल्कुल आखिरी, कतई।"

"तो मैं जाऊँ?"

"शौक से, हमेशा के लिए।"

शाकिर उठ रहा था कि ज़हरा की माँ आ गई। उसने ज़हरा के तेवर और शाकिर का मुख देखकर भाँप लिया कि रंग बिगड़ा हुआ है।

शाकिर से कहने लगी—

"बैठो बेटा। अभी आए और अभी चले?"

ज़हरा ने बिगड़कर कहा—

"माँ, तुम हमारे मामले में मत बोला करो।"

"वाह री छोकरी, मेरे गले क्यों पड़ रही है?"

"तुम शाकिर साहब को क्यों रोक रही हो।"

बड़ी बी ने कड़कड़ाकर कहा—

"यह मेरा घर है।"

"तो मैं इस घर को छोड़ दूँगी। तुम अपने पास बुलाया करना, इन्हें खूब जी भर करके।"

"क्या बक रही है शफ़तल?"

इसी वाद-विवाद के बीच शाकिर उठ कर चला गया। बड़ी बी ने देखा, शिकार हाथ से निकल गया है। अब उलझना बेकार है। वह भी ढीली पड़ गई और चुपचाप अपने कमरे की ओर चली गई।

११

अलीपुर से बी० ए० की डिग्री लेकर अभी इन्हीं दिनों सुरैया वापस आई थी, और यहाँ आते ही उसने एम० ए० क्लास में दाखला ले लिया। अलीपुर गर्ल्ज़ कालेज के सैक्रेट्री खाँ बहादुर गुलाम इलाही ने एक सिफ़ारिशी ख़त भी यहाँ के कालेज के प्रिंसिपल को लिख दिया था। इसलिए सुरैया को दाख़ला में बहुत सुविधा मिली। अलीपुर में उसका स्वास्थ्य ख़राब रहने लगा था।

सुरैया की आयु सत्तरह-अठारह की होगी। बड़ी नर्म, नाज़ुक, शोख़ और चंचल, बड़ी हाज़िर जवाब और विनोदपूर्ण बात-चीत करने वाली, जिस सभा में बैठ गई, उसमें रौनक आ गई। जिस टोली में पहुँच गई, उसमें जीवन की लहर दौड़ गई। सुरैया इतनी सुन्दर नहीं थी जितनी चुलबुली थी। नाक-नक्शा साधारण लड़कियों का सा, रंग भी कुछ साँवला, परन्तु उसमें जादू इस सीमा तक था कि लोग स्वयं ही खिंचते थे। जो, नज़र उस पर उठ जाती थी, वह वापसी का रास्ता भूल जाती थी। जमकर रह जाती थी।

उसकी निगाहों में, बातों में, अदाओं में जादू था। वह सर से पाँव तक जादू थी। कालेज के प्रोफ़ैसर हों, या विद्यार्थी, उसकी सखियाँ हों, या अध्यापिकाएँ, कुछ ही दिनों में सब उसके असीर (बंदी) हो गए।

हम हुए, तुम हुए, कि 'मीर' हुए।
एक ही ज़ुल्फ़ के असीर हुए

कालेज के इतिहास में यह प्रथम अवसर था कि सुरैया ने इतनी जल्दी सब में प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। इसके सहपाठियों में एक शाहद था। परन्तु दो-चार मुलाक़ातों में ही वह उसके जादू से प्रभावित हो गया।

सुरैया नई थी, शहर पुराना था। शाहद को कालेज की लड़कियाँ मौलाना साहब कहा करती थीं। वह मर्दाना सुन्दरता का नमूना था, परन्तु बेपरवाह, बे न्याज और कतई कोरा। इसके कोरेपन की यह चर्म सीमा थी कि कालेज की लड़कियों में से अति सुन्दर भी उसे अपना बंदी न बना सकी थीं। वह कालेज की रंगरेलियों की भीड़ में एक अकेला था। न कभी उसने किसी लड़की को सम्बोधन किया, न उसने किसीसे पींग बढ़ाए, न इश्क और प्रेम की रिहर्सल की। उसे अपने काम से काम था। मनसूर और साजदा की विशेष ध्यान था शाहद की ओर, परन्तु उससे निराश होने पर उन्होंने उसका मजाक उड़ाना शुरू कर दिया। 'मौलाना साहब" की उपाधि भी उन्हीं की दी हुई थी।

परन्तु अब दुनिया ही बदल रही थी। बंजर धरती पर फूल-पौधे खिल रहे थे। चटयल मैदान में बाग लगाया जा रहा था। काँटा हरे भरे पुष्प की भाँति खिल रहा था। शाहद और सुरैया की मुलाकात शीघ्र ही बेतकल्लुफ़ी में, स्नेह और लगाव में बदल गई। पत्थर की चट्टान पर प्रेम की खेती लहलहाने लगी।

एक दिन मनोरमा और साजदा में इसी बात पर वाद-विवाद छिड़ गया।

साजदा ने मोनरमा से कहा—

"सुनती हो ?"

"क्या ?"

"इतनी अनजान तो न बनो—

"सुना है, किसी और को चाहता है—

वह दुश्मन हमारा, वह प्यारा तुम्हारा !"

"केवल मेरा ही ? तुम्हारा प्यारा भी तो था वह ?"

"परन्तु अब तो न हमारा है, न तुम्हारा।"

"क्या जादू कर दिया इस सुरैया की बच्ची ने ? यह जादू नहीं तो और क्या है ? गूँगा बोलने लगा। पहले शाहद गूँगा था, अब सुरैया के सामने

बुलबुल की भाँति चहकता है। पहले वह बहरा था, अब प्रेम का संगीत उसके कानों में गूँजा करता है। पहले वह अंधा था, अब उसका दावा है कि वह सौंदर्य परख सकता है !"

"हाँ, और क्या !"

"मान ली हार तुमने ?"

"और तुमने ?"

"कदापि नहीं।"

"क्या करोगी तुम !"

"उस छोकरी का गर्व तोड़कर रहूंगी।"

"देखूँगी।"

"देख लेना !"

इतने में सुरैया और शाहद आते हुए दीख पड़े। सुरैया आगे-आगे थी और शाहद पीछे-पीछे। दोनों के हाथों में पाठ्य-पुस्तकें थीं। यह दोनों आए और क्लास में अपने-अपने स्थान पर बैठ गए। प्रोफैसर महमूद का लैक्चर शुरू हो चुका था।

प्रोफैसर साहब शाहद से सम्बोधित थे और शाहद की आँखें सुरैया का का मुआइना कर रही थीं। यह देखकर सबने एक कहकहा लगाया। शाहद चौंका। सुरैया ने अपनी नजरें पुस्तक में गाड़ दीं। प्रोफैसर साहब मुस्कराने लगे।

१२

मसऊद और शाकिर बाल्यकाल के साथी थे। बड़े गहरे मित्र थे। यह दोनों प्राथमिक पाठशाला से लेकर कालेज की विद्या तक एक साथ पढ़े थे। फिर शाकिर ने घर और जायदाद का कार्य पिता की मृत्यु के कारण सम्भाल लिया और मसऊद विलायत चला गया। वहाँ मसऊद और हाशिम की मित्रता हुई और बराबर बढ़ती रही।

मसऊद को कुछ मालूम नहीं था कि हाशिम और शाकिर में किस प्रकार के मतभेद हैं? किस प्रकार की शत्रुता है? क्यों चली हुई है? वह बिल्कुल अनजान था, परन्तु शाकिर ने उसे सब पढ़ा दिया था, इस कारण से आज वह तैयार होकर आया था। उसने फैसला कर लिया था कि वह हाशिम से लड़ेगा।

हाशिम बड़े तपाक से मिला। उसका हाथ पकड़कर अपने ड्राइंग रूम में लाया।

फिर पूछा—

"अच्छे तो हो?

"हां, ईश्वर की कृपा है!"

"बहुत दिनों में दर्शन हुए!"

"तुम इस योग्य कब हो कि शरीफ़ लोग तुमसे मिलें-जुलें!"

"क्यों जनाब यह क्या फर्माया आपने!" इसका अर्थ!"

"अर्थ यह कि तुम बड़े ज़लील हो!"

"आख़िर क्यों?"

"तुम्हें प्रेम के लिए रजिया के सिवा और कोई नहीं मिलता था।"

हाशिम ने एक ज़ोर का कहकहा लगाया।

"फिर समझा उस्ताद! आप शाकिर के संदेशवाहक बनकर आए हैं!"

"यही सही, फिर?"

"तुमने शाकिर की सब सुन ली…अब कुछ मेरी भी तो सुनो?"

"हाशिम, तुमसे मुझे कुछ घृणा सी होने लगी है।"

"अरे बन्दे खुदा के, पहले पूरी बात तो सुन ले, फिर यह फतवे बेशक देते रहना।"

"कह डालो तुम भी, क्या कहते हो?"

"देखो भई, मैं जो कुछ कहता हूँ, गौर से सुनना।"

'बिल्कुल एक जज की भाँति सुनूँगा। ग़ौर से कहो।"

"रज़िया मेरी मौसेरी बहन है। बाल्यकाल से यौवन प्रारम्भ तक का हमारा साथ बीता। यह दौर हमारी पवित्र, बेलौस, और मासूम मुहब्बत का था। फिर मैं विलायत चला गया। रज़िया शाकिर के पल्ले बाँध दी गई। मैं वापिस आया। मेरा दबा हुआ प्रेम-भाव फिर उभर आया। मैं इसे हर मूल्य पर उभरने से रोकता, यदि मैं यह देख लेता कि रज़िया सुख से है। उसकी घरेलू जिन्दगी विश्वस्नीय है। पति-पत्नी के सम्बन्ध अच्छे हैं‥ सुन रहे हो?"

"हाँ, कहते जाओ।"

"…परन्तु मैंने देखा क्या? मैंने देखा, शाकिर उसकी बात तक नहीं पूछता। उसकी सूरत भी नहीं देखता। उससे किसी प्रकार का वास्ता नहीं रखता। वह कुढ़ रही है। दुःख और तकलीफ़ का जीवन व्यतीत कर रही है। और वह? और वह जहरा के साथ ऐश कर रहा है…"

"ज़हरा कौन?"

"है एक तवायफ़!"

"बाला नशीन? (कोठे पर बैठने वाली?)

"हाँ, परन्तु कम खर्च नहीं!"

मसऊद मुस्कराया।

हाशिम ने बात जारी रखी।

"तो जो व्यक्ति अपनी पत्नी से प्रेम न करता हो। शरीफ़ों की भाँति उससे निबाह न करता हो। उसके दुःख-सुख का साझी न हो। और अपने मन बहलावे के लिए दूसरे अड्डे बना रखे हों जिसने, क्या उसे अधिकार है कि अपनी पत्नी बनाए रखने की ज़िद पर वह अड़ा रहे ? मैं तुमसे पूछता हूँ, ईमान से बताना कि चरित्र, न्याय, शरह···इन सबका क्या फतवा है ?"

"और समाज ?"

"समाज की मैं कोई कीमत नहीं समझता।"

"क्यों ?"

"हमारी सब कमज़ोरियों और जातीय बीमारियों का कारण यही समाज है।"

"वह कैसे ?"

"हमारा मज़हब कहता है कि विधवा स्त्री व्याह कर सकती है, परन्तु समाज का हुक्म है, हरगिज नहीं। मज़हब का फतवा है, कि यदि पति-पत्नी में न बने तो तलाक द्वारा वह एक दूसरे से अलग हो सकते हैं, परन्तु समाज पति को आज्ञा देता है कि वह वेश्यागमन जी भरकर करे। अन्य नये विवाह कर ले। परन्तु जिस पत्नी से उसका मन मेल नहीं खाता, उसे तलाक न दे, जीवित ही मृतक समान बनाए रखे। मज़हब का हुक्म है कि जात-पात, रंग, वंश, देश की कोई हैसियत नहीं। हर मुसलमान भाई-भाई है, परन्तु इसी मज़हब को मानने वाला यह समाज कभी नहीं सहन कर सकता कि ऊँच-नीच का यह भेद दूर हो जाए। रंग और जाति का यह अन्तर समाप्त हो जाए।

यह समाज इन वस्तुओं का परवान चढ़ाना चाहता है। मज़हब हमें यह सिखाता है कि चादर देखकर पाँव फैलाओ, परन्तु समाज की आज्ञा यह है कि कंगाल हो जाओ, लेकिन अपनी वंशीय परम्पराओं पर बहादुरी से अमल करते रहो। और फिर जब कंगाल हो जाओ, तो यही समाज एक पैसा की सहायता भी नहीं करता।

हमारा मज़हब हर वस्तु में सादगी वाँछनीय समझता है, प्रदर्शन से रोकता है, फ़ज़ूल खर्ची का विरोधी है···परन्तु समाज के यहाँ यह ऐसे पाप हैं जिन्हें क्षमा नहीं किया जा सकता। विवाह करो, सूद पर रुपया उधार लेकर। मरने के पश्चात फ़ातिहा करो, घर के बर्तन तक गिरवीं रखकर। वेतन हो तुम्हारा पचास रुपया प्रति मास, परन्तु मुहर बाँधो सवा लाख का। आय हो तुम्हारी सौ रुपया मासिक परन्तु बच्चे के अक़ीक़ा पर, बच्ची की बिसमल्लाह पर, पत्नी के रोग से नहा-धो उठने पर आँख बन्द करके खर्च करते रहो, खर्च करते रहो, और दिवालिया हो जाओ।

हमारे इस्लाम ने स्त्री-पुरुष के अधिकार निश्चित कर दिये हैं। सीमाओं के अन्दर स्त्री को भी पूरी आज़ादी दी है। निकाह और तलाक के सम्बन्ध में उसकी राय निर्णय करने वाली है, परन्तु तुम्हारा समाज स्त्री के अधिकारों को पाँव तले रौंदता है। उसे बिल्कुल शरह के विरुद्ध पर्दा करने पर विवश करता है। निकाह और तलाक के सम्बन्ध में उनकी राय तक पूछना अपना अपमान समझा जाता है।

सम्पत्ति में इस्लाम स्त्री को अधिकार देता है परन्तु इसी समाज ने वह अधिकार छीन लिया है। ऐसे समाज को मैं घृणा का पात्र समझता हूँ। मुझे इसकी ज़रा भर भी परवाह नहीं है!"

"बड़ी दिलचस्प तकरीर कर डाली तुमने?"

"टालो नहीं, बताओ मैं ग़लत कह रहा हूँ?"

"एक-एक शब्द सच!"

"फिर मुझे क्यों नसीहत करते हो? शाकिर को क्यों नहीं समझाते कि वह रज़िया को तलाक दे दे, ताकि वह सुख का जीवन व्यतीत कर सके।"

"अच्छा, एक बात बताओ!"

"पूछो।"

"स्वयं रज़िया की क्या राय है?"

"अर्थात्?"

"वह तलाक हासिल करना चाहती है?"

"नहीं।"

"फिर तुम मुद्दई सुस्त, गवाह चुस्त की नाईं क्यों बने हुए हो ?"

"वह समाज से डरती है।"

"इसलिए तलाक से दूर रहना चाहती है ?"

"हाँ !"

"वह तुमसे प्रेम करती है ?"

"करती है।"

"प्रमाण ?"

"मैं जो उससे प्रेम करता हूँ।"

"मैं भावात्मक प्रमाण नहीं चाहता। घटनाओं से बहस करता हूँ।"

"फिर कैसा सबूत चाहते हो ?"

"उसने तुमसे प्रेम का प्रण किया ?"

"नहीं।"

"उसने शाकिर से घृणा की बात कही ?"

"नहीं।"

"उसने अपने इस जीवन में कोई तबदीली की इच्छा की ?"

"नहीं।"

"उसने तुम्हारे साथ कोई विशेष और अलग प्रकार का व्यवहार या बर्ताव किया ?"

"यह भी नहीं।"

"फिर तुम्हें यह समझने का कोई अधिकार नहीं है कि वह तुमसे प्रेम करती है।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि वह तुमसे प्रेम नहीं करती !"

"वह अवश्य ही मुझसे प्रेम करती है !"

"परन्तु इस बात को मानते हुए शर्माती है।"

"समाज से डरती है। बदनामी से भय करती है। बदनामी का डर उसे संभलकर चलने को कहता है।"

"यह कोई बात नहीं हुई।"

"फिर ?"

"देखो, एक बात मैं बताता हूँ।"

"कहो।"

"तुम रज़िया से साफ़ साफ़ बात-चीत करो।"

"इससे क्या होगा ?"

"यदि वह तुमसे प्रेम की प्रतिज्ञा कर ले, शाकिर के प्रति घृणा व्यक्त करे, तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ, कि मेरी सेवाएँ हाज़िर हैं। मैं शाकिर को विवश करके रहूँगा और रज़िया को तलाक दिलाऊँगा।"

"यह सब कुछ होना मुश्किल है।"

"क्यों ?"

"वह बड़ी गम्भीर और सबर वाली है।

"तो इससे क्या होता है ?"

"वह मर जाएगी, परन्तु अपने और अपने परिवार के नाम पर कलंक का टीका नहीं लगाएगी। कोई ऐसी बात नहीं करेगी, जो रिवाज के विरुद्ध हो, पारिवारिक परम्पराओं के विरुद्ध हो, जिससे बदनामी होती हो।"

"एक बार कोशिश तो कर देखो।"

"कर चुका कोशिश !"

"क्या हुआ उसका परिणाम ?"

"वही जो तुमसे कह चुका हूँ।"

"अर्थात् उसने तुमसे प्रेम-भावना व्यक्त नहीं की ?"

"साफ़ इन्कार कर दिया।"

"वह तलाक लेने पर भी राजी नहीं हुई ?"

"बिल्कुल नहीं।"

"तो रज़िया का विचार छोड़ दो।"

"छोड़ दूँ रज़िया का विचार ?"

"हाँ, बिल्कुल।"

"उसे घुट-घुटकर मर जाने दूँ ?"

"जब वह स्वयं चाहती है, तो तुम उसे कैसे रोक सकोगे ?"

"यदि शाकिर उससे हाथ हटा ले, तो वह सम्भल सकती है। उसका जीवन बचाया जा सकता है।"

"यह ठीक है, परन्तु तुम स्त्री के स्वभाव से अपरिचित हो।"

"और आप तो बड़े परिचित हैं !"

"मैं तुमसे अधिक तजरुबा रखता हूँ। तुम विलायत में रहकर भी निरे बुद्धू रहे, और मैंने योरुप के स्त्री रूप में डूबकर, पूर्व के स्त्री रूप में समावेश करके, भारत के स्त्री रूप का एक्सरे करके स्त्री का स्वभाव पहचान लिया है।"

"तो किस परिणाम पर पहुँचे तुम ?"

"बता दूँ ?"

"अवश्य बताओ !"

"खफ़ा तो नहीं होगे ?"

"कदापि नहीं।"

"रज़िया शाकिर से प्रेम करती है !"

"शाकिर से ?"

"हाँ, केवल शाकिर से !"

"तुम मूर्ख हो। गलत समझ रहे हो उसे।"

"मुर्ख तुम हो। गलत समझते हो।"

"क्यों, ? कैसे ?"

"स्त्री के स्वभाव की ऊंचाइयों-नीचाइयों को आसानी से नहीं समझा जा सकता।"

"और साफ कहो।"

"स्त्री के लिए यह बिलकुल आवश्यक नहीं है कि वह उसीसे प्रेम करे,

जो उससे प्रेम करता हो। वह उससे भी प्रेम करती है जो उसे घृणा करता हो, बल्कि कभी-कभी उसका अपमान भी कर देता है। अरे मियां, ऐसे व्यक्ति से वह खुली पागलपन की सीमा तक बल्कि प्राण न्यौछावर कर देने की सीमा तक प्रेम कर डालती है। मैं यह बात आदि सत्य के रूप में नहीं कह रहा हूँ। मेरा अर्थ केवल यह है कि ऐसा होता भी है, ऐसा हो भी सकता है।"

स्त्री जिस प्रकार प्रेम का उत्तर प्रेम से देती है, उसी प्रकार बेतालुकी, बेजारी और सम्बन्ध-विच्छेद का उत्तर भी कभी-कभी प्रेम से देती है। उसका प्रेम हर हालत में अटल होता है। उसे कोई डांवाडोल नहीं कर सकता। कोई शक्ति उसके पक्के विश्वास को नहीं हिला सकती। कोई रुकावट उसके रास्ते की दीवार नहीं बन सकती। वह पर्वत की नाईं अटल होती है। पुरे की हवा के झौंके उसे अपने स्थान से नहीं हिला सकते ?"

"तो तुम्हारी राय यह है !"

"हां, भाई मेरी राय तो यही है।"

"मैं समझ लूं, रजिया शाकिर से प्रेम करती है।"

"पगले कहीं के ! यह तो तुम्हें बहुत पहले समझ लेना चाहिए था ! वह यदि शाकिर से प्रेम न करती होती, तो कब की तुम्हारी हो चुकी होती ! तुम शाकिर से अधिक सुन्दर हो, शाकिर से अधिक धनी हो, शाकिर से अधिक उससे प्रेम करते हो। फिर भी वह तुम्हारी ओर प्रेम-भावना नहीं रखती...... और शाकिर से अलग होने की बात तक नहीं सुनना चाहती !"

"मैं तुम्हारी राय मे सहमत नहीं हूँ।"

"न सही, परन्तु तुम मुझे गलत साबित नहीं कर सकते बहस में।"

"तुमसे बहस में कौन जीत सका है ?'

"तुम जैसा बातूनी भी नहीं ?"

"नहीं, बिल्कुल नहीं !"

"इतने में सूचना आई कि खाना तैयार है। हाशिम ने मसऊद का हाथ पकड़ा और उसे खाने के कमरे में ले गया।

१२ क

दूसरे दिन मसऊद शाकिर के यहां पहुँचा और आते ही बरस पड़ा।

उसने कहा—

"बड़ी बे-सिर-पैर की बातें करते हो तुम ?"

"क्या हुआ ?"

"तुमने चित्र का एक रुख दिखाकर मुझे खूब मूर्ख बनाया।"

"ओहो—!"

"क्या मतलब ?"

"मैं समझ गया।"

"क्या समझे तुम ?"

"तस्वीर का दूसरा रुख आपने देख लिया ?"

"हाँ, है कोई उत्तर तुम्हारे पास......जो कुछ हाशिम कहता है ?"

"क्या बकता है वह ?"

मसऊद ने जो कुछ हासिम से सुना था, सब बयान किया ! फिर पूछा।

"कहो, अब क्या कहते हो ?"

शाकिर ने कहा—

"हाशिम ने जो दोष मुझ पर लगाए हैं, मैं उनकी वास्तविकता से इन्कार नहीं करता। उसने मेरे चरित्र के जो धब्बे तुम्हें दिखाए हैं, उनकी सफाई भी नहीं देना चाहता। उसने मेरे और रजिया के सम्बन्धों का जो चित्र बनाया, वह भी कुछ अधिक गलत नहीं है, बल्कि एक सीमा तक ठीक है। परन्तु फिर

भी यह एक वास्तविकता है, कि मैं रजिया को तलाक नहीं दे सकता। न जाने क्यों मेरा दिल इस पर राजी नहीं होता।"

"समाज के डर से ?"

शाकिर बोला—

'नहीं, यह बात नहीं है। मैं समाज की अधिक परवाह नहीं करता। मैं स्वयं इस दुरंगे और दुहरे जीवन से तंग आ चुका हूँ। मैं चाहता हूं कि साधारण एक रंग का जीवन व्यतीत करूं। मेरे मन पर जहरा का राज है परन्तु जब मैं अपने मन को तोलता हूँ तो इसे हर कुर्बानी के लिए अपने प्रति तैयार पाता हूँ, परन्तु इसके लिए नहीं......

...मैं वास्तव में, अब रजिया में, अपने लिए वह खिंचाव नहीं पाता, जो पहले उसमें था। परन्तु उसे छोड़ दूं और उसे छोड़कर अपना स्वर्ग बसाऊं, यह सोचकर मेरे दिल में कुछ हलचल-सी मच जाती है। मैं विचित्र खेंचा तानी में घिरा हुआ हूँ।"

यह कहते-कहते शाकिर की आंखों में आँसू आ गये।

मसऊद ने कहा—

"शाकिर, समझ से काम लो। एक बहुत ही आवश्यक मामला बातचीत का विषय है, जिस पर एक से अधिक जिन्दगियों का आधार है। यह बात केवल इस प्रकार सुलझ नहीं सकती कि तुम आँसू बहाते रहो, इस शब्दावली को अपनी ढाल बनाकर अपना बचाव करने की कोशिश करते रहो।

......सवाल यह है कि यदि तुम्हें रजिया से प्रेम है तो तुम्हारा उसके प्रति यह व्यवहार बेजारी और घृणा का क्यों है ? यदि प्रेम इसी प्रकार किया जा सकता है, जिस प्रकार तुम करते हो, तो संसार की कौन मूर्ख स्त्री होगी, जो प्रेम का प्रत्युत्तर प्रेम से देना पसंद करेगी ? वास्तवविकता यह है कि मर्द की यही खुदमुखतारी स्त्री को बेराह करती है। उससे चकले और कोठे खाने आबाद कराती है। उसकी नजर में वफा और लाज असमत और इज्जत का कोई मूल्य नहीं रहने देती......

......कितना विचित्र प्रेम है तुम्हारा, कि तुम प्रेम तो करते हो रजिया

से, और उसकी बात तक नहीं पूछते ! फिर बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती। न केवल यह कि तुम रज़िया के प्रेम का उत्तर प्रेम से नहीं देते, तुम उसकी ओर स्नेह का हाथ नहीं बढ़ाते, तुम उसकी आशाओं और अरमानों का विचार नहीं करते, बल्कि एक अन्य स्त्री को चाहते हो......

···और वह स्त्री भी कौन, जो एक वेश्या है। तुम उसकी खातिर दुनिया से बेगाने हो गये। तुमने उसे चाहा। उसकी गली की धूल बन गए। तुमने उससे प्रेम किया और शेष सभी को भुला दिया......

......तुमने उसके लिए रज़िया को वह दुख पहुँचाए, इस प्रकार उसका दिल तोड़ा कि यदि वह किसी अन्य पुरुष से प्रेम करने लगती, तो कदापि दोषी न समझी जाती .....

.....और फिर भी तुम यह प्रमाणित करना चाहते हो कि तुम रज़िया से प्रेम करते हो ?"

"तुम गलत समझे !" शाकिर बोला।

"अच्छा तो तुम रज़िया से घृणा करते हो, और ज़हरा से प्रेम करते हो ?"

"यह भी नहीं !"

"अच्छा तो तुम ज़हरा से प्रेम करते हो और रज़िया से घृणा नहीं करते ?"

"हां !"

'इसलिए उसे छोड़ना नहीं चाहते ?"

"यही बात है !"

"अर्थात् दूसरे शब्दों में तुम्हारे विचार में, रज़िया का, या साफ़-साफ़ पत्नी का रुतबा घर के सामान की भाँति है। चाहो तो इससे अपना घर सजा लो, चाहो तो इसे फेंक दो, निकाल दो। स्वयं उसकी राय, उसके भावों, उसके विचारों का तुम्हें कोई ख्याल नहीं है ? यह कितनी मूर्खता की बातें कर रहे हो तुम ?"

"अर्थात् ?"

"अर्थात् यह कि जहरा से भी पींग बढ़ाते रहो और रजिया को भी वश में रखो कि तुम्हारी पत्नी बनी रहे ?"

शाकिर चुपचाप सुनता रहा।

कुछ देर के पश्चात् मसऊद ने कहा—

"क्या तुम रजिया को भी इसकी आज्ञा दोगे ?"

"काहे की आज्ञा ?"

"कि वह तुम्हें भी चाहती रहे और हाशिम से भी प्रेम करती रहे ?"

"इसकी आज्ञा कौन मर्द दे सकता है ?"

"क्या प्रेम में भी मर्दाना ठाठ चलता है ?"

"क्यों नहीं ? चलता है !"

"तुम्हें अधिकार है कि तुम एक समय में दो निशानों को अपना शिकार बनाओ...परन्तु जहरा या रजिया को यह अधिकार नहीं है ?"

"कदापि नहीं !"

"तुम इस समय जहरा अथवा रजिया से बात नहीं कर रहे हो, इसलिए रौब डालने की कोशिश न करो, जो मैं कह रहा हूँ, उसका उत्तर दो।"

"मैं इसकी आज्ञा नहीं दे सकता !"

"क्यों ?"

"इस कल्पना से ही मेरा रक्त खौलने लगता है।"

"यह कोई दलील नहीं है। यह रोग है चिकित्सा करवाओ।"

"मसऊद, तुम मेरा मजाक न उड़ाओ।"

"मैं मजाक नहीं करता, तुम्हें इस जंजाल से निकालना चाहता हूँ, जिसमें तुम फँस गये हो। तुमने वह राह अपनाई है, जो बर्बादी की है। तुम अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठे हो।"

"तुम मुझे पागल समझ रहे हो ?"

"और क्या ? आखिर किस असूल, किस दर्शन, किस दृष्टिकोण के आधार पर तुम इसका अधिकार रखते हो कि रजिया का दिल कुढ़ाओ, और उससे प्रेम का दावा भी करो ? रजिया के लिए एक प्रतिद्वंद्वी का प्रबंध भी

करो और इस प्रतिद्वंद्वी से प्रेम और प्यार का नाटक भी खेलते रहो। कौन तुम्हारे इस दोतरफे प्रेम पर भरोसा कर सकता है ? न रज़िया इतनी मूर्ख है, न ज़हरा इतनी भोली है।

हम मोतक़िदे दावा-ए-बातिल नहीं होते
पहलू में किसी शख्स के दो दिल नहीं होते।
(हम गलत दावे को मानने के लिए तैयार नहीं !)

१३

समय गुज़रता जा रहा था परन्तु शाकिर और मसऊद का कड़वा वार्तालाप बराबर चल रहा था।

बीच में चायपान के लिए कुछ देर के लिये बात-चीत रुक गई, परन्तु अभी चाय समाप्त नहीं हुई थी, कि यह दोनों वाद-विवाद करने वाले फिर गुथ गए।

शाकिर ने मसऊद को सम्बोधित करते हुए कहा—

"क्या शरह की रू से मैं एक से अधिक पत्नियां नहीं कर सकता ?"

"देखो शाकिर, शरह को बीच में मत लाओ।"

"क्यों, क्या मैं मुसलमान नहीं हूं ?"

"इससे क्या होता है ? तुम केवल मुसलमान ही नहीं, बल्कि ख्वाजा मुईउलदीन चिश्ती और हज़रत जुनीद बग़दादी, और हज़रत बायजीद बहतामी की मिसल से ही सही, परन्तु शरह से मत खेलो।"

"यह खेल है ?"

"बिल्कुल, वह भी अनाड़ी का खेल ?"

"कैसे ?"

"शरह ने आपको रंडीबाजी की आज्ञा दी है ?"

"नहीं।"

"फिर जहरा से अनधिकृत सम्बन्ध क्यों हैं आपके ?"

"........."

"शरह ने तुम्हें पत्नी से अच्छा व्यवहार रखने की तालीम दी है ?"

"हां"

"फिर रजिया की इस बुरी स्थिति का कारण क्यों हैं, आप ?"

"........."

"शरह की यह आज्ञा है कि यदि तुम्हें यह डर हो, कि तुम पति-पत्नी भली प्रकार से निवाह न कर सको, तो अच्छे ढंग से अलग हो जाओ, परन्तु पत्नी को दबाकर न रखो ?"

"हां, है यह आज्ञा ?"

"फिर रजिया लगभग इस स्थिति में क्यों है ?"

"........."

"शरह निमाज़ की ताकीद करती है ?"

"करती है।"

"परन्तु तुम्हारे प्रोग्राम से निमाज़ खारिज क्यों है ?"

"........."

"शरह का फरमान है, कि सायल (घर पर आने वाले) को मत झिड़को ?"

"हां, है।"

"फिर अभी उस फकीर को तुम शेर की नाई क्यों घूर हे थे।"

"........."

"शरह का इरशाद है कि मुसलमान भाई-भाई हैं ?"

"हां।"

"परन्तु इस मुहल्ला का जो कुबड़िया अभी आया था, वह गुलामों की भांति हज़ूर-हज़ूर क्यों कह रहा था ? उसकी हिम्मत क्यों नहीं पड़ी, कि वह तुम्हारे साथ-साथ कुर्सी पर बैठता।"

"........."

"शरह ने गुलामों के लिए हुक्म दिया है, कि जो स्वयं खाओ, वही उन्हें खिलाओ। जो स्वयं पहनो, वही उन्हें पहनाओ ?"

"हां, जानता हूँ।"

"परन्तु नौकरों के साथ भी तुम्हारे यहां बराबर का सलूक नहीं है। क्या तुम स्वयं जो खाते हो, वही उन्हें मिलता है ? तुम स्वयं जो पहनते हो, वही वह पहनते हैं ? उनके साथ पूर्ण भ्रातृ-भाव और पूरी बराबरी का सलूक क्यों नहीं है ?"

शाकिर चुपका बैठा रहा। मसऊद भी कुछ देर चुप रहा।

फिर उसने कहा

"इसीलिए मैं कहता हूं कि शरह को तुम लोगों ने खिलौना बना लिया है। जब तक जी चाहा, इससे खेला; जब जी भर गया, इसे चकनाचूर कर दिया। तुम शरह की किसी आज्ञा का अमल नहीं करोगे, बल्कि छाँट-छाँट कर इसकी अज्ञाओं और हिदायतों का विरोध करते रहोगे···परन्तु पत्नियों की तादाद के सम्बन्ध में तुम पूरे शरह के पाबन्द बन जाओगे।"

"हम यदि अन्य शरह की अज्ञाओं का पालन नहीं करते, तो गलती करते हैं, परन्तु यदि किसी एक आज्ञा का पालन करते हैं, तो तुम रोकने वाले कौन ?"

"इसलिये कि शरह को आड़ बनाकर तुम अपनी काम-वासना की माँग को पूरा करना चाहते हो।"

"फिर वही गालम-गलोच ?"

"देखो शाकिर, तुम यदि गलत राह पर चल रहे हो, और इससे हटना नहीं चाहते, तो तुम्हें अधिकार है। परन्तु तुम्हें कदापि यह अधिकार नहीं है, कि तुम अपनी काम-वासना का माध्यम शरह को बनाओ।"

"फिर वही बेतुकी बातें ?"

"जानते हो, शरह ने दूसरी शादी की इजाजत दी है ?"

"हाँ, मानता हूं।"

"जानते हो, दूसरी शादी की शर्तें क्या हैं ?"

"जानता हूं, बराबरी और न्याय।"

"कर सकते हो तुम ?"

"क्यों नहीं ?"

"जब शादी से पहले न कर पाए, तो बाद में क्या कर सकोगे तुम ?"

इतनी न बढ़ा पाकी-ए-दामां की हिकायत
दामन को ज़रा देख, ज़रा बन्दे कबा देख ।

"दूसरी शादी की यदि आज्ञा है भी, तो विशेष परिस्थितियों में । जब वास्तव में वह किसी बिशेष जरूरत की बिना पर वाँछनीय हो जाए । वह ऐश-परस्ती का आज्ञा-पत्र नहीं । समझे, शाकिर मियां ?"

"खूब समझा हूँ, आपको और आपके फतवों को भी !"

"लीजिए ख़फ़ा हो गए, जनाब शाकिर साहब ।"

"तुम बातें ही ऐसी करते हो ?"

"मैं फिर तुमसे प्रार्थना करता हूं कि अपने व्यवहार पर एक बार और सोचो, क्या यह ठीक है ?"

"सोच चुका ।"

"एक राह अपना लो ।"

"अपना ली ।"

"या ज़हरा को अपने दिल की मलिका बनाओ, या रज़िया को ।

"मैं तो दोनों को बनाऊंगा ।

"यह नहीं हो सकता !"

"होकर रहेगा ।"

"यह असम्भव है ।"

"मैं असम्भव को सम्भव कर दूंगा ।"

"रज़िया तुम से प्रेम नहीं करती ।"

"कोई बात नहीं !"

"तो उसीसे वफ़ा का अहद निबाहो । ज़हरा का विचार छोड़ ही दो । तुम्हारे भले की कहता हूँ ।"

"पुरुष अपने फैसले से हटा नहीं करते, और मैं तो उन पुरुषों में से हूं जो अपनी मन-मानी वस्तु हर मूल्य पर हासिल करके रहते हैं ।"

"तो मैं तुमसे निराश हो जाऊं ?"

"मैंने तुम्हें आस ही कब बंधाई थी ?"

"अड़े रहोगे अपनी ज़िद पर ?"

"ज़िद पर नहीं, फैसला पर ।"

मसऊद थोड़ी देर और बैठा रहा, फिर वह उठा। उसने कहा, "अब चलता हूँ, शाकिर !"

"कुछ बिगड़े हुए-से हो ?"

"नहीं जी।"

"सच कहना।"

"झूठ बोलने का क्या कारण हो सकता है ?"

"यों ही······"

"(मुस्करा कर) चोट करने का कोई अवसर कभी छोड़ते हो तुम ?"

"कल भी आना। तुम से मशवरा करना है कुछ।"

"न बाबा, क्षमा करो। भर पाया।"

"अरे अरे······"

"हाँ भई, मैं कहाँ और मशवरा कहाँ ?
'मन खराब कुजा, व सलाहकार कुजा ?

"मैं अपना दिल चीरकर तुम्हें किस प्रकार दिखाऊँ ?"

"ऐसी ग़लती न कर बैठना कहीं ?"

"क्यों ?"

"तुम जानो फिर······"

"क्या बात है, कुछ तो कहो ?"

"फिर वही मामला होगा,
बहुत शोर सुनते थे पहलू में दिल का।
जो चीरा तो इक कतरा ए—खून न निकला।"

"कैसे कैसे वार करते हो तुम, मसऊद !"

"परन्तु तुम भी किस-किस तरह बचा ले जाते हो······अपने प्रति क़ायल हूँ, उस्ताद तुम्हारा !"

"तुम मेरे स्थान पर होते, तो वही करते, जो मैं कर रहा हूँ।"

"कदापि नहीं।"

"फिर क्या करते तुम ?"

"तुमसे भी दो पग आगे जाता।"

"अर्थात् ?"

"मैं शरही इजाज़त से पूरा-पूरा फ़ायदा उठाता !"

"किस प्रकार ?"

"रज़िया को भी अपने पास रखता, ज़हरा को भी अपने पहलू में बिठाता। फिर दो और 'ज़हरा-जबीं' (ज़हरा का नाम सुन कर चिढ़ना नहीं) और अप्सरा की न्याईं स्त्रियों से विवाह कर लेता !"

"फिर वही शरारत ?"

"यह शरारत हुई ? अरे भाई, जब शरह पर अमल करने आए, तो पूरे रूप से करो !"

"तो गोया आप राजा इन्द्र बन जाते। घर क्या, परिस्तान होता।"

वास्तव में ! परन्तु तुम्हारी भांति मूर्ख न होता, तुम तो घर को श्मशान बनाने पर तुले हुए हो।"

"न जाने कैसी बातें कर रहे हो, मैं बिलकुल नहीं समझा।"

"शीघ्र समझ लोगे।"

"तो मान भी लूँगा।"

"फिर मानना बेकार होगा।"

"यह किस लिए ?"

"जहन्नुम में दाखिल होने के बाद जन्नत के द्वार बन्द हो जाते हैं।"

"परन्तु जहन्नुम में मैं जाने क्यों लगा ?"

"अच्छा, जन्नत सही······परन्तु जन्नते शहदाद !"

"ला हौल विला कुव्वत······बड़े बदतमीज़ हो तुम !"

"ज़रा कल्पना तो करो। तुम घर में बैठे हो। रज़िया भी मौजूद है

और ज़हरा भी। एक बात रज़िया को पसन्द है, वही ज़हरा को नापसन्द है। दोनों को अपने-अपने स्थान पर ज़िद है। अब हज़ूर की पोज़ीशन क्या होगी ? यदि ज़हरा का कहा मानते हैं, तो रज़िया रूठती है, और रज़िया का दिल रखते हैं, तो ज़हरा नाराज़ हुई जाती है।"

"परन्तु ऐसा होने ही क्यों लगा ?"

"देख लेना !"

"अजी अभी से इसकी क्या चिन्ता ? जब होगा, तो कोई तदबीर भी समझ में आ जायगी।

*हर चि आयद बरसरे अवलादे आदम, बिगुज़रद !

"(मुस्करा कर) यह दर्शन भी ठीक है।"

"ठीक ? अजी जीवन दर्शन है यह !"

"कायल हो गया मैं तुम्हारे दर्शन का।"

"धन्यवाद।"

"अच्छा तो अब, मैं चला।"

मसऊद चला गया। शाकिर कमरे में टहलने लगा। फिर उसने अचकन पहनी और बाहर चला गया।

---

*जो दुख भी आदम की सन्तान के सिर पर आया—बीत गया।

१४

कोई बारह बजे के लगभग कालेज में सूचना पहुंची कि रायबहादुर बदरी प्रसाद की दिल की हरकत रुक जाने के कारण मृत्यु हो गई। वह ट्रस्टी थे और बहुत प्रसिद्ध थे। इस समाचार के आते ही कालेज में छुट्टी हो गई। उसी समय यूनियन-हाल में एक शोक-सभा हुई, जिसमें रायबहादुर की सेवाओं और उनकी कालेज की सरपरस्ती को सराहा गया। सभा के उपरांत लोग बिखर गये। सुरैया और शाहद साथ-साथ साइकल पर कालेज से निकले। जाते-जाते दोनों रानी बाग के पास पहुंचे।

शाहद ने कहा,—

"सुरैया, चलो बाग की सैर करें। कुछ बातें भी करनी हैं तुमसे।"

दोनों ने अपनी-अपनी साइकल का रुख बाग की ओर कर दिया। पहले तो दोनों वहां की सैर करते रहे। फिर एक एकाकी निकुंज में जाकर बैठ गए। शाहद वृक्ष के तने से पीठ लगा कर बैठ गया। सुरैया इस प्रकार घुटनों के बल बैठी, जैसे मस्जिद में मुल्ला जी के सामने बच्चा अपना कायदा बगदादी ले कर बैठता है।

उसने अपनी मिकनातीसी आँखों को जरा हिलाया। मुस्कराई। ग्रीवा को जरा से झटका देकर······सिर को एक ओर थोड़ा-सा झुका लिया। फ़िर खास अदा के साथ यों बोली—

"हाँ भई, अब छिड़े बातों का सिलसिला।"

सुरैया को इस सज-धज में, इस रंग में देखकर शाहद का दिल बल्लियों

उछलने लगा। उसका जी चाह रहा था कि सुरैया को उठाकर आंखों में रख ले। उसने कहा—

"बातों के लिए यह कब आवश्यक है, कि वह जबान से ही हों ?"

"ओहो, आप वह बातें करना चाहते हैं, जो मूक दृष्टि से की जाती है ?,

यह कहकर वह कहकहा मारकर हंसी।

शाहद ने कहा,

"भई समझीं तो ठीक !"

"दाद दीजिए मेरी योग्यता की !"

"तुम्हारी योग्यता का तो सारा कालेज कायल है।"

"अब आप आंखों का काम जुबान से भी लेने लगे, यह प्रतिज्ञा-भंग है।"

"जो काम जुबान करती है, वह आंखें नहीं कर सकतीं। जो काम आंखों से हो जाता है, वह जुबान से नहीं बन पड़ता। आ गया ख्याल में, जनाबा सुरैया बेगम साहबा !"

"हां, शाहद, यह तो बताओ ?"

"क्या ?"

"कुछ नहीं, हटाओ, फिर देखा जायेगा।"

"कह भी डालो। क्यों रह जाए अरमान ?"

"जाओ नहीं कहते। कोई जबरदस्ती है किसीकी ?"

"नहीं सरकार, ज़बरदस्ती नहीं। अर्ज, प्रार्थना, इल्तजा, भला ज़बरदस्ती और आपसे ? यह ताब, यह मजाल, यह ताकत नहीं मुझे !"

"अब आए राह पर !"

"तो इरशाद फरमाइये न ?"

"क्या ?"

"जो कुछ फरमाने का इरशाद था ?"

"मैं यह कह रही थी कि राशन में शक्कर कम मिलती है। इसका कोई इलाज है ?"

यह कहकर वह मुस्करा दी।

"क्यों नहीं है इलाज······?"

"तो बताओ, न ?"

"शकर का प्रयोग कम कर दो !"

दोनों खूब हंसे। कुछ देर चुप्पी छाई रही। फिर सुरैया ने कहा—

"एक खुशखबरी सुनाऊं ?"

"हाँ, हाँ, शौक से !"

"मेरी शादी होने वाली है।"

यह कहकर सुरैया तो मुस्कराने लगी, परन्तु शाहद का मुख पीला पड़ गया। उसका यह रंग देखकर सुरैया संजीदा हो गई।

उसने कहा—

"क्या बात है शाहद ?"

"सच कह रही हो सुरैया ?"

"हाँ, हाँ !"

"तुम्हें खुशी है इससे ? तुम राजी हो इस शादी से ?"

"बिल्कुल नहीं ! शादी तो तुमसे होगी मेरी ! मैं तो घर वालों की हमाकत पर व्यंग्य कर रही थी !"

"कहाँ से बात आई है ? होगा कोई बड़ा घराना ?"

"हाँ घराना तो बड़ा है। लच्छनपुर के रईसे-आज़म दामादी लेने पर तैयार हैं। पूरी बातें तो मैंने सुन नहीं पाईं। कुछ भाईजान और अम्मीजान में कानाफूसी हो रही थी···इससे यही अंदाज़ लगाया मैंने।"

"फिर क्या होगा अब ?"

"चिन्ता काहे की ?"

"और जो कर दी उन लोगों ने तुम्हारी शादी रईसे-आज़म से, तो ?"

"शाहद, तुमने मुझे समझा क्या है। मैं कोई खिलौना हूं कि घर वाले जिसे चाहें मुझे बख्श दें ? मैं राह देख रही हूँ कि यह लोग मुझसे राय लेते हैं या नहीं ? यदि इन्होंने राय ली तो साफ़-साफ़ कह दूँगी कि शाहद

के सिवाय किसी से मेरी शादी नहीं हो सकती और यदि न ली उन्होंने राय, तो देख लेना, तमाशा क्या होता है !"

"क्या [illegible]"

"अभी [illegible] बतायेंगे !"

"जो चाहो करो, परन्तु अपने प्रण पर स्थिर रहना !"

"कौनसा प्रण ?"

"वफ़ा का प्रण !"

"शाहद, स्त्री के वक्ष में एक ही दिल होता है। वह एक ही बार प्रेम करता है और एक ही का हो रहता है। मैं जानती हूँ, तुम रईसे-आजम नहीं हो ; आई-सी-एस नहीं हो, तुम व्यापारी या बिज़नेस मैन नहीं हो। परन्तु मेरा यह दिल तुम्हारा हो चुका। तुम मेरी आत्मा के मालिक बन चुके। तुम्हारे सिवाए अब मैं किसी की नहीं हो सकती।"

"सुरैया, तुम्हारी इन बातों ने मुझे नया जीवन प्रदान कर दिया। शादी का शब्द सुनकर तो मेरे पांव तले से धरती निकल गई थी, परन्तु तुम्हारे हौंसले ने मुझे जीवित कर लिया। मरने से बचा लिया। परन्तु एक बात तो बताओ !"

"क्या बात ?"

"यदि तुम पर जोर ज़बरदस्ती की जाए ? तुम ठहरीं लड़की, फिर ?"

"हाँ, मैं लड़की हूँ, परन्तु अपने पहलू में एक पक्का दिल रखती हूँ। मुझे कोई नहीं झुका सकता, कोई नहीं दबा सकता। मैं परिस्थितियों के सामने जो अड़ी हूँ, तो इसका कारण यही आत्म-विश्वास है। वरना मैं आसानी से तुम्हारे साथ फरार भी हो सकती थी।"

"विचित्र वस्तु हो, सुरैया, खुदा की कसम, तुम भी।"

"क्यों ?"

"इस प्रकार की कोई स्त्री आज तक मेरी नज़र से नहीं गुज़री।"

"अहा, यह नई बात मालूम हुई जनाब की !"

"क्या ?"

"आप खैर से स्त्री परखने वाले भी हैं। कितनी स्त्रियों से पाला पड़ चुका है आज तक आपका ? मैं तो हज़रत को बड़ा भोला भाला समझती थी, परन्तु निकले रंगे सियार। सच है, पुरुषों का कोई विश्वास नहीं !"

'सुरैया, तुम पागल भी हो। दोष लगाने पर आयीं, तो भारतीय विधान की हर धारा लगा दी मुझ पर ! मैं करूँ प्रशंसा, और तुम उसमें दोष निकाल लो, क्यों ?"

"प्रशंसा करते-करते ही पकड़ लिये गये तुम !"

"क्या बात पकड़ी तुमने मेरी ?"

"तुमने मेरी सी कोई स्त्री नहीं देखी, ऐं ?"

"ठीक है।"

"परन्तु बहुत सी स्त्रियाँ देख चुके हो, जो कदापि मेरी तरह न थीं, परन्तु थीं स्त्रियाँ। क्यों शाहद सच है या झूठ ?"

"बिल्कुल झूठ।"

"पुरुष की एक कमजोरी यह भी है कि वह दोष स्वीकार नहीं करता—' बहस करता रहता है।"

यह कहकर वह मुस्कराई। शाहद भी मुस्करा दिया। समझा, अब इस मुस्कान ने बात आई-गई कर दी होगी, परन्तु सुरैया तो पंजे झाड़कर उसके पीछे पड़ी थी। उसने कहा—

"इसकी सनद नहीं, बताईये, आपको किन-किन स्त्रियों से वास्ता पड़ा है ?"

"किसीसे भी नहीं।"

"जाइये, हम नहीं बोलते आपसे।"

यह कहकर सुरैया शाहद की ओर से मुँह मोड़कर बैठ गई, और सामने जो फूलों के गमले रखे थे, उन्हें देखने लगी।

शाहद ने उसे बुलाने की कोशिश की, वह रूठी रही। कहने लगी,

"बस देख लिया आपको।"

"क्या देखा तुमने ? मुझे भी तो बताओ, मैं भी तो सुनूँ।"

"आप बड़े वह हैं !"

"फिर एक नई पहेली ! साफ़ कहो न······"

'तजरुबाकार······घाघ पुरुष !"

अपने इस वाक्य पर सुरैया ने कहकहा लगाया, और शाहद भी हंसने लगा। फिर दोनों में घुल-मिलकर बातें होने लगीं।

१५

शाकिर ने अब ज़हरा के यहाँ आना-जाना बन्द कर दिया था। जहाँ उसकी पूछ ताछ न हो, वहां वह क्यों जाए ? बार-बार उसका जी चाहता था कि जहरा के रूठे हुये कूचे का फेरा लगाए, परन्तु उसकी नसीहतों का मंदिर अभी आबाद था, बिल्कुल वीरान नहीं हुआ था।

ज़हरा ने भी चुप साध ली थी। पहले यदि किसी कारण से एक दिन भी शाकिर न आता, तो आदमी पर आदमी और संदेश पर संदेश चले आते थे। अब के पन्द्रह दिन हो गये थे, परन्तु जहरा ने भी खबर न ली। झूठों भी न पूछा।

वह परेशान-सा अपने कमरे में बैठा। बैठे-बैठे उठकर टहलने लगा। इतने में मसऊद आता दीख पड़ा। शाकिर ने बढ़ कर स्वागत किया, हाथ मिलाया, और अपने कमरे में ले आया।

मसऊद ने कहा—

"अच्छे हो भाई ?"

"तुम्हें क्या ?"

तुमको आशुफ़्ता-नसीबों की खबर से क्या काम ?

तुम संवारा करो बैठे हुए गैंसू अपने !

"ज़हरा से नहीं, तुम्हारा सम्बोधन अपने एक मित्र से है, शाकिर साहब ! यह कहकर मसऊद ने शाकिर का जायज़ा जो लिया, तो मालूम हुआ कि हालत अच्छी नहीं है। वही शाकिर जो हँस-हँस कर मसऊद के वार सह रहा था, जो बहादुरी से मसऊद की गुस्ताखियों को सहन कर रहा था, आज बहुत ही निढाल, ग़मग़ीन और उदास दिखाई दे रहा था।

आंखों में आखें डालकर मसऊद ने कहा—

"शाकिर, क्या बात है ?"

"कुछ भी तो नहीं···"

"कुछ तो······जहरा से अनबन हो गई ?"

"यही समझ लो ।"

"किस बात पर, कुछ कहो तो सही !"

"कहूं क्या ? रूठी हुई है। बेगम साहब पहले भी रूठा करती थीं; परन्तु स्वयं ही मन जाया करती थीं, परन्तु अब के तो रंग ही दूसरा है ।"

"क्या रंग है ?"

"बस समझ लो,

"बारहा देखी हैं उनकी रंजशें"

"लेकिन अब से सर गरानी और है ।"

'साफ-साफ कहो शाकिर !"

शाकिर ने आदि से अन्त तक सब कहानी कह सुनाई ।

मसऊद ने कहा, "बड़ी दार्शनिक स्त्री है ।"

"सीना से अधिक !"

"परन्तु शाकिर, जहरा मेरे दिल में भी घर कर रही है।"

"(मुस्करा कर) तो बन जाओ मेरे प्रतिद्वंद्वी—ताकि मैं भी ग़ालिब की जबान से कह सकूं ।"

जिक्र इस परी-वश का, और फिर बयां अपना
बन गया रकीब आखिर, या जो राजदां अपना

"नहीं, यह बात नहीं है, परन्तु तुमसे जो बातें मैंने जहरा की सुनी हैं, इनसे अन्दाजा होता है कि कोई साधारण स्त्री नहीं है ।"

"तुम्हारा विचार दुरुस्त है विचित्र स्वभाव की स्त्री है । बड़े बड़ों को भी खातिर मे नहीं लाती । बातें ऐसी जची तुली करती है कि कोई उत्तर बन न पड़े ।"

"प्रेम तो कुरबानी का दूसरा नाम है···कर डालो कुर्बानी !"

"क्या मतलब ?"

"जो वह कहती है, मान लो !"

"पागल हुए हो ? एक लाख मुहर पर ऐसी तीखी और सख्त स्वभाव वाली स्त्री से शादी कर लूं ? उसके भाई से अपनी बहन को ब्याह दूं ?"

"तो बुराई क्या है इसमें ?"

"यह लीजिए, कुछ बुराई ही नहीं है ?"

"मेरे विचार में तो नहीं ?"

"कैसे नहीं है ? मुहर मैं एक लाख का नहीं, दस लाख का बाँध लूं परन्तु सुरैया की शादी शाहद से नहीं कर सकता मैं।"

"क्यों ?"

"दुनियाँ क्या कहेगी मुझे ? अम्मीजान को किस प्रकार समझाऊंगा मैं ? मैं जाति-भेद का अधिक कायल नहीं हूँ, परन्तु वेश्या-परिवार के लोगों से अपनी बहन का दामन नहीं बाँध सकता !"

"फिर क्या करोगे ?"

"यही तो सोच रहा हूँ।"

"अच्छा, एक काम करो।"

"वह क्या ?"

"सुरैया की मर्जी मालूम कर लो !"

"अरे भाई, मर्जी तो मैं जब मालूम करूं यदि मैं इस रिश्ते को पसन्द करूं। फिर उसका रिश्ता तो नवाबजादा रसीद महमूद से तय पा चुका है।"

"अच्छा यह बात है ?"

"और क्या है ?"

"तो हटाओ, जहरा के ख्याल को।"

"यह भी मुश्किल है ?"

"तो जाओ, उसके घर हाथ बांधकर माँग लो क्षमा।"

"उसकी नाराजगी देखकर यह हिम्मत भी नहीं पड़ती। उससे यह

बात भी दूर नहीं कि मिलने से ही इन्कार कर दे। यह मेरा बड़ा असह अपमान होगा।"

"तो थोड़ा ज़हर ही खा लो।"

"यही इरादा है"

"तुम कायर हो, ऐसा नहीं कर सकोगे !"

"देख लेना।"

"अच्छी बात, देख लेंगे हम भी। यार जिन्दा, सुहबत बाकी !"

शाकिर कुछ उत्तर देने ही वाला था कि मौलवी मतीन उलज़मा साहब कमरे में अस्सलाम अलैकुम का नारा लगाते हुए दाखिल हुए। उन्हें देखते ही दोनों चुप हो गए। यह अंजुमन्ने-तनज़ीम-उल-मुसलमीन के पदाधिकारी थे। शाकिर से इनका पुराना सम्बन्ध था। बड़े स्नेह-पूर्ण और शरीफ आदमी थे यह।

मौलवी साहब के आते ही बात-चीत का रंग बदल गया। मौसम से शुरू हुआ और विश्व राजनीति पर पहुँच गया।

१६

मसऊद की बात-चीत से हाशिम इतना प्रभावित हुआ कि उसने विश्वास कर लिया, रज़िया मेरी नहीं हो सकती। वह मुझे नहीं चाहती। मैं उसे नहीं पा सकता।

अब उसका वह जोश, वह गर्मी समाप्त हो चुकी थी! प्रेम का बलबला ठंडा पड़ गया था। पहले सा दमख़म नहीं रहा था। अब वह बुझा-बुझा सा रहता था।

शाम ही से बुझा-सा रहता है—?
दिल हुआ है चिराग़ मुफ़लिस का!

घर में भी वह बहुत कम आता था और रजिया से मिलना-जुलना तो उसने जैसे एकाएक ही छोड़ दिया था। दूसरे-तीसरे दिन कहीं सामना हो गया। दोनों की बातें हुयीं भी तो दिखावे की।

एक दिन रज़िया ने देखा हाशिम का सामान बँध रहा है। मालूम हुआ, कहीं बाहर जाने की तैयारियाँ हैं। उसने मालूम करना चाहा, कि वह कहाँ जा रहा है? क्यों जा रहा है? कितने दिनों के लिए जा रहा है? परन्तु उसकी हिम्मत नहीं पड़ी। सामने दो पग पर हाशिम का कमरा था। वह वहाँ जाना चाहती थी, परन्तु उसके पाँव नहीं उठ रहे थे।

इतने में हाशिम निराशा और उदासी का पुतला बना हुआ कमरे से बाहर निकला। रजिया की आँखों में आँसू भर आए। उसने कहा—

"हाशिम!"

"फ़र्माइये!"

"कहाँ जा रहे हो ?"

"जहन्नुम में ! चलोगी मेरे साथ ?"

रज़िया शायद कुछ कहती, परन्तु हाशिम उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही बाहर चला गया।

हाशिम की जायदाद का काम एक मुन्शी जी के सुपुर्द था। वह उसे स्टेशन तक पहुँचाने गये। वापस आए, तो रज़िया के प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा—

"दार्जिलिंग गए हैं। दस हज़ार रुपया साथ ले गए हैं और ताकीद कर गये हैं, जितना रुपया मंगाऊँ, तार से भेजना। हूँ······साहबज़ादे को यह ठाठ सूझे हैं और यहाँ जायदाद का काम चौपट हो रहा है।"

यह कहकर मुन्शी जी रजिस्टरों में गुम हो गए और रज़िया अपने कमरे की ओर चली गई।

वह सोच रही थी, निराशा ने हाशिम के होश भुला दिए हैं। अब वह स्वयं को तबाह बर्बाद-करने पर तुल गया है, वरना वह यह दस हज़ार रुपया क्यों ले गया।

रज़िया फिर मुन्शी जी के पास आई।

कहने लगी—

"कुछ बता गए हैं, कब आयेंगे ?"

"मैंने पूछा, तो कहने लगे, तुम्हें क्या ? खूब मजे करना मेरे पीछे !"

रज़िया सुनती रही। मुन्शी जी फिर बोले—

"लो, और सुनो ! मज़े करूँगा। सात पीढ़ियाँ बीत गयीं इस घर में, परन्तु साहबज़ादे मुझे अब तक समझे ही नहीं। हाँ भई, न मां न बाप, न भाई न बहन, एक अकेले आदमी। अब वह मज़े नहीं करेंगे तो हम करेंगे इस बुढ़ापे में ?"

यह कहकर मुन्शी जी फिर रजिस्टरों में ध्यान-मग्न हो गये।

रज़िया की आँखों में आँसू भरे हुए थे, जैसे लबालब सुरा से भरा जाम !

वह फिर अपने कमरे में वापस आ गई। एक आरामकुर्सी पड़ी थी, उसी पर लेट गई। बाल्यकाल के इतिहास का एक-एक पन्ना उसके सामने साकार और जीवित रूप में उभरने लगा। उसकी आँखों में फिर आँसू झलकने लगे। आरामकुर्सी से वह मेज पर आ बैठी। सामने कलम-दवात और पैड रखे थे। वह हाशिम को एक पत्र लिखने लगी।

उसने लिखा—

हाशिम !

तुम रूठकर चले गए ! तुम उससे रूठे, जिससे भाग्य भी रूठा हुआ है ! इस घर में एक तुम थे, जिससे टूटे हुए दिल को कुछ सुख मिलता था। तुम्हारे जाते ही फिर वही ग़म और निराशा की घटायें छाने लगीं, जिन्होंने मेरे जीवन के सूर्य को ढांप रखा था।

तुम पुरुष हो। किस मजे से दस हज़ार रुपये जेब में डाले, और ग़म ग़लत करने पहाड़ की सैर को चले गये। मैं स्त्री हूँ, भारत की स्त्री। मेरी जिम्मेदारियां तुमसे बढ़ी हुई हैं। मैं कहीं नहीं जा सकती, कहीं भी अपना ग़म ग़लत नहीं कर सकती।

मैं तुम्हारी न बन सकी। शाकिर मेरा न बन सका। हम दोनों का दुख साझा है। इससे बढ़कर मित्रता की नींव क्या हो सकती थी ?

तू हाय गुल पुकार, पुकारूँ मैं हाय दिल !

लेकिन तुमने मेरी मित्रता ठुकरा दी और भंवर में हिचकोले खाती को अकेली छोड़ गये। तुमसे यह आशा न थी, परन्तु आशा की चर्चा ही क्या !

जब तवक्कोह ही उठ गई ग़ालिब,
क्या किसीका गिला करे कोई ?

मेरा जी चाहता है, तुमसे प्रार्थना करूँ कि तुम लौट आओ। मुझे तुम से प्यार है। वही प्यार जो एक मित्र को दूसरे मित्र से होता है। अब इस संसार में हम ही एक-दूसरे के अच्छे मित्र बन सकते हैं। इससे अधिक

कुछ नहीं। शादी, ब्याह, पति-पत्नी, यह सब रिश्ते हैं। रिश्तों के लिए यह आवश्यक नहीं, कि वह प्रेम पर आधारित हों। प्रेम पर आधारित न भी हों तो भी वह नहीं टूटते। अलबत्ता प्रेम को तोड़ डालते हैं। चकनाचूर कर देते हैं। परन्तु मित्रता इन सबसे ऊँची है। हम तुम शादी-ब्याह के सम्बन्ध में पिरोए न जा सके, परन्तु हमारी मित्रता फिर भी क़ायम रह सकती थी। परन्तु तुमने मुझसे कमज़ोरी की यह लाठी भी छीन ली!

हम तुम बचपन के साथी थे। बे-तकल्लुफ़ी के आँचल में पले, बढ़े। इस बेतकल्लुफ़ी ने हमारी बेलौस मुहब्बत को और भी जीवन प्रदान किया। हाशिम, प्रेम वही है, जो बेलौस हो। वास्तविक प्रेम यही है। प्रेम का सारांश यही है! इस सीमा से आगे मैं कभी नहीं जा सकती!

सुरैया बड़ी प्यारी लड़की है। मैंने चाहा था कि वह तुम्हारी जीवन साथी बन जाय, परन्तु तुम शाकिर से भी जाकर लड़ आए। पागल कहीं के! तुम आ जाओ, मैं तुम्हें वह हीरा दूँगी, जिसकी चमक से तुम्हारा मन-मन्दिर जगमगाने लगेगा। जिसकी चमक से दिल की अंधेरी बस्ती रोशन हो जायेगी। जिसे पाकर तुम वह सब कुछ पा लोगे, जिसकी आशा एक मर्द कर सकता है।"

रज़िया ने पत्र लिखा। इसे एक बार फिर पढ़ा। लिफ़ाफे में बन्द किया। सीधी मुन्शी जी के पास गई।

"आपको पता मालूम है उनका?"

"हाँ लिखा तो गये हैं, कोई होटल है।"

"यह पत्र अभी उन्हें भेज दीजिये।"

मुन्शीजी ने एक उड़ती सी नज़र से लिफ़ाफे को देखा। हाशिम का नाम रज़िया ने स्वयं अपने हाथ से लिखा था। शेष पता मुन्शीजी ने लिखा और टिकट लगाकर डाकखाने में डाल आए!

१७

हाशिम ने रज़िया के पत्र का कोई उत्तर नहीं दिया। वह रज़िया की याद को, अपने प्रेम-भाव को भूल जाना चाहता था। वह चाहता था कि दुनिया की हर वस्तु को भूल जाए। उसने रजिया का पत्र पढ़ा। मुस्कराया। उसके पुर्जे पुर्जे किए, और फैंक दिए वह पुर्जे हवा में! यह पुर्जे नहीं, हाशिम के दिल के टुकड़े थे!

ग्रांड होटल में वह रह रहा था। शीघ्र ही वह दार्जिलिंग की सोसाइटी में घुल-मिल गया। यौरोपियन, एंगलो-इन्डियन, बंगाली, विदेशी हर सोसाइटी में उसकी पहुंच थी। हर स्थान पर वह हाथों-हाथ लिया जाता था। अंग्रेजों की भांति बोलता था। उसका अध्ययन बहुत गहरा था, इसलिए जिस सोसाइटी में पहुंच जाता, उसके प्राण बन जाता।

परन्तु शीघ्र ही इन सभाओं से उसका मन उकता गया। रज़िया की याद ने यहाँ भी पीछा न छोड़ा। वह उसके प्रेम से विद्रोह कर रहा था, परन्तु सफल नहीं हो पाता था। उसने ग्रांड होटल में रहना छोड़ दिया। आबादी से कुछ दूरी पर एक और होटल था उसमें उठ आया। यहां अधिकतर वह यात्री ठहरते थे, जो तमाशबीन किस्म के होते थे। अय्याशी जिनका चरित्र होता था, जो पानी की तरह रुपया बहाते थे।

एक दिन वह होटल से ज़रा बाहर निकला था। इरादा था कि ज़रा दो पग टहल आए। पास से एक व्यक्ति गुज़रा। उसने हाशिम को सम्बोधित किए बिना पूछा—

"दिल बहलाओगे, बाबूजी ?"

हाशिम का दिल एक काल से नहीं बहल रहा था। वह इसे वास्तव में ही बहलाना चाहता था। वह रुक गया।

उसने कहा—

"हाँ, जानते हो कोई नुस्खा ?"

"बड़ा अच्छा नुस्खा है बाबूजी !"

"क्या है वह ?"

"एक छोकरी है सरकार, बड़ी सुन्दर, बड़ी मधुर, बड़ी चंचल !"

"कहाँ है वह ?"

"चलिए मेरे साथ।

हाशिम उसके साथ हो लिया। दोनों चलते रहे। एक मकान के पास पहुंचे। उस व्यक्ति ने द्वार खटखटाया। एक बुढ़िया बाहर निकली। उसने प्रेम भरी गोद की नाईं दरवाजा खोल दिया। दोनों अन्दर गये। सामने एक कमरा था। सजा हुआ, बारौनक ! एक सोलह-सत्तरह वर्ष की लड़की बैठी हुई थी। कटीली, सजीली गदराया हुआ शरीर, साँवला, पीले-पन में मिला हुआ रंग, नखसिख दिल मोह लेने वाला, मुख पर फबन, कमर में लोच, बातों में जादू, बड़ी-बड़ी आँखें, बड़े-बड़े बाल। वह एक दिल मोह लेने वाली अदा के साथ अपनी घायल करने वाली आँखों से हलाहल बरसाती आगे बढ़ी।

"आइये !"

यह कहकर उसने हाशिम का हाथ पकड़कर एक रूपहले मसनद पर गावतकिया के पास बिठा दिया, और स्वयं भी एक दिल निवाज़ अदा के साथ उसके पहलू में बैठ गई।

हाशिम ने निश्चित फीस उस व्यक्ति के हवाले की। वह रकम लेकर बाहर निकला। उसने दरवाजा भेड़ा, फिर एक अदा के साथ···जो अंगूरी सुरा से भी अधिक नशे वाली थी, उसने दरवाजा अन्दर से बंद कर दिया।

वह नागन की तरह बल खाती, अपनी चाल से प्रलय जगाती आती और उसके पास बैठ गई। वह कुछ खोया-खोया सा था। वह उसके और निकट आ गई, बोली—

"बाबूजी।"

हाशिम अब भी चुप बैठा था। वह उठी। उसने अलमारी खोली। शराब से दो प्याले भरे। उन्हें ट्रे में लगाकर लाई। एक गिलास अपने मुंह से लगा लिया। दूसरा हाशिम की ओर बढ़ा दिया। दोनों ने शीघ्र ही अपने-अपने गिलास खाली कर डाले। अब दौर शुरू हो गया। कमला की आंखों से भावों का तूफान उमड़ रहा था। दोनों मुस्कराए। छाती से लग गये। और इस प्रकार घुल मिल गए, जैसे पुराने प्रेमी और प्रेमिका। कल की चिन्ता से दोनों मुक्त थे। कल क्या होगा, इसे कोई नहीं सोच रहा था। आज जो कुछ है, वही उन दोनों के ध्यान का बिन्दु था। रातभर दोनों एक कमरे में रहे। इन चन्द घण्टों के अन्दर प्रेम का पौधा उभरा, बढ़ा, फल लाया। और सुबह होते-होते मुरझाने लगा।

सुबह हुई। हाशिम ने कपड़े पहने। बाहर जाने के इरादे से उठा। कमला उसके पास खड़ी थी। दोनों का नशा उतर चुका था। लेकिन दोनों को रात की रंगीनियां और मस्तियाँ याद थीं।

जाते-जाते हाशिम ने कमला की तरफ देखा।

कमला ने पूछा—

"आज भी आओगे, बाबूजी ?"

हाशिम मुस्कराया। उसने 'हाँ कहा, और सौ रुपये का एक नोट कमला के हाथ पर रख दिया।

हाशिम चला गया। कमला सोच में पड़ गई। पहाड़ों पर सौन्दर्य सस्ता है। आर्थिक प्रश्न वहां भी राज करता है। डिमांड से सप्लाई अधिक है, इसलिए वहां सौन्दर्य बहुत सस्ता बिकता है। बम्बई में एक कुरूप टकियाई सुरूप आदमी से दस रुपये हथिया लेगी और पन्द्रह मिनट के बाद उसे चलता

कर देगी। कश्मीर का सौंदर्य विवशता से रातभर आपका दिल बहलाएगा और पाँच रुपया पर सबर कर लेगा।

आज तक सौ रुपये का इनाम कमला को कभी नहीं मिला था। दूसरे ग्राहक यदि बहुत खुश हुए तो चलते समय रुपया-आठ आने उसके हाथ पर रख दिए। यह पहला ग्राहक था जिसने चलते समय एक दम सौ रुपये का नोट उसके हाथ पर रख दिया था और बेपरवाही से चला गया था।

वह सोचने लगी, इस रुपया को रामू से, और उसकी माँ कौशल्या से किस प्रकार छिपाए ? फीस उनका हक है, वह उन्होंने ले ली। इनाम और बखशीश मेरा हक है, यह क्यों उनके कब्जे में जाए ? उसने नोट को साड़ी के पल्लू में बांधा, और पेट के पास उड़स लिया।

थोड़ी देर के बाद रामू आया

"बखशीश क्या दी बाबू ने तुम्हें ?"

कमला ने कहा—

"कुछ नहीं ! न जाने किस पागल को ले आए तुम ! रातभर शराब पीता रहा। पीते-पीते बेहोश हो गया। सुबह होते ही कपड़े पहने और चला गया।

"फिर आने को कह गया है ?"

"हां, कहा तो है फिर आने को।"

"ख्याल रखना उसका। मोटी आसामी है। पचास रुपये दिए थे उसने फीस के। पचास रुपये।"

यह सुनकर कमला के कान और खड़े हुए। इतनी बड़ी फीस कमला के वेश्या-जीवन में पहली घटना थी।

रामू चला गया।

परन्तु कमला सोचने लगी—कौन था यह आदमी ? क्यों लुटाए दे रहा है यह अपनी दौलत ? क्या हुआ है इसे ? कोई सौदाई से दिखाई पड़ते हैं यह हज़रत !

यही सोचते-सोचते उसकी कल्पना भूतकाल के संसार में पहुँच गई। जब वह एक अंधेरी रात को, तालाब के किनारे, अपने हमजोली जगदीश से प्रेम और प्यार की बातें कर रही थी, जब मासूम आशाओं की नींव पर अपने आगामी जीवन के दुर्ग बनाए जा रहे थे। जब बेफिक्री की गोद में इन दोनों का प्रेम परवान चढ़ रहा था। जब जगदीश उससे कह रहा था—

"कल मैं जा रहा हूँ शहर। अब वर्ष बाद फिर लौटूंगा इंट्रेन्स की परीक्षा पास करके।'

और उसने उत्तर दिया था—

"जाओ ! मैं भी पढ़ने-लिखने में बड़ा परिश्रम कर रही हूं। तुम्हारे आते-आते मैं भी इतनी अंग्रेजी सीख लूंगी कि फरफर तुमसे वार्तालाप कर सकूं। तुम्हें पढ़ी-लिखी पत्नी पसंद है न ?

जगदीश यह सुनकर मुस्करा दिया था। उसने बड़े प्यार से उसका हाथ पकड़ कर दबाया था और बेसाख्ता प्यार कर लिया था।

फिर जगदीश शहर चला गया। वह अपने भाई और गाँव के मास्टर जी से अंग्रेजी पढ़ती रही।

अच्छी खासी सीख रही थी। अब वर्ष पूरा होने को था। जगदीश इसके दिल का राजा वापस आने को था। वह खुश-खुश रहती थी। न जाने क्यों जगदीश की कल्पना करते ही उसके मन का पुष्प खिल उठता था। उसके मुख पर लालिमा दौड़ जाती थी।

फिर गाँव में डाका पड़ा।

उसका बाप गाँव का खाता-पीता व्यक्ति था। डाकुओं ने उसीके घर को ताका। उसकी शादी-ब्याह के लिए जो गहने कपड़े थे, वह लिए, जो नकद रुपया था वह कब्जे में किया। चलते-चलते डाकुओं के सरदार ने अपने साथियों से कमला की ओर देखकर कहा—

"और यह माल यहीं छोड़ जाओगे ?"

डाकुओं ने उसे विवश कर दिया। उसके बाप को मारते-मारते बेहाल

कर दिया। उसके भाई को इतना मारा कि वह अर्ध मृत हो गया। और गहनों, रुपयों के साथ उसे भी मुंह में कपड़ा ठूंस कर लेते गये।

सबसे पहले सरदार ने उस पर हाथ साफ किया। और करता रहा। छः मास के पश्चात् एक ग्राहक से कुछ रुपये लेकर उसे उसके हाथ बेच दिया। वह इसी प्रकार कई स्थानों पर बिकती-बिकाती दार्रजिलिंग पहुँची। यहाँ रामू ने पहले उसे अपनी रखैल बनाया, फिर साधारण जनता के हित बना दिया। अब वह रामू की लौंडी थी। वह ग्राहकों को ढूंढ़ कर लाता। फीस बाहर ही वसूल कर लेता। और यह रातभर रामू के लाए हुए ग्राहकों का जी बहलाया करती थी।

वह ग्राहक भी भाँति-भाँति के होते थे। कोई काला, जैसे तवे की स्याही, कोई मोटा गदहे की तरह। किसीके मुंह से संडास की बू आती थी। किसी की बातों से सिर पर मुगदर चलते थे। कोई गंदी बीमारियों का शिकार होता था। कोई दिक क्षय का रोगी होता था, कोई माँस खाने वाला। कोई बूढ़ा होता था तो कोई जवान। वह सब की सेवा करती थी। सबसे हंसती बोलती थी। सबके पहलू में बैठती और नाज-नखरे का जाल फेंकती थी।

वह सब की गोदी की सज्जा बनती। सबकी पशुता और वासना का निशाना बनती। हंसती, मुस्कराती हुई वह अपनी सबसे बहुमूल्य वस्तु बेचती थी, परन्तु उसे मूल्य नहीं मिलता था। फिर भी वह खुश रहती थी।

बड़ी देर तक वह यह बातें सोचती रही। उसकी आँखें डबडबाई हुई थीं।

वह अपने बाप को, माँ को, बहन को, यहाँ तक कि जगदीश तक को भूल चुकी थी। अब वह उनके काम की नहीं रही थी। वह जानती थी कि वह यदि उनके पास पहुंच भी जाए, तो भी वह उसे घर में नहीं घुसने देंगे। बात करने के साझी भी नहीं होंगे।

उन सबको भूलकर, अपनी प्रीति रोजाना बेचकर वह एक स्वयं को भुला देने वाला सुख अनुभव कर रही थी। परन्तु आज हाशिम ने उसके दिल

के तार छेड़ दिए थे। उसके दिल की दुनियाँ में फिर उथल-पुथल होने लगी थी। वह सोचने लगी—

'इस आदमी की ओर मेरा मन खिंचता है। यह मेरे मन में समाया जा रहा है। उसे किसी की परवाह नहीं है। सब से बेगाना दीख पड़ता है वह। परन्तु उसकी यह हालत देखकर भी उससे घृणा नहीं होती। जी चाहता है, उसे टटोलूं। देखूं, यह कौन है, क्या है? परन्तु यह सब क्यों करूं? कौन है यह मेरा?······

···ऐसे-ऐसे ग्राहक प्रतिदिन आते हैं, पैसे देते हैं, सौदा करते हैं और चले जाते हैं। मैं इन बखेड़ों में क्यों पड़ूं? मेरे लिए सब बराबर हैं। मैं किसीकी नहीं बन सकती। कोई मेरा नहीं हो सकता।

···मेरी दुनिया और है। यह तमाशबीन दूसरी दुनिया के बासी हैं। हम इनके हाथों में खिलौने की नाईं हैं। जब जी भर जायेगा, उठाकर ताक पर रख देंगे। ऐसे लोगों की चिन्ता क्या? ऐसे लोगों का ध्यान क्यों? ऐसे लोगों का ख्याल किस लिए?

न जाने कब तक वह सोचती रहती यह बातें। इतने में कौशल्या, रामू की माँ, खाना लेकर आ गई।

"करो ज़हर मार, रानी जी!"

कमला एक जादू से विवश व्यक्ति की भांति इस जादू भरी आवाज़ से चौंकी, और कौशल्या का लाया हुआ खाना खाने लगी। एक प्याले में उबली हुई दाल, दूसरे में तरकारी, एक प्लेट में थोड़े से चावल, और दो रोटियां— यह था भोजन कमला का! जो इस घर की अकेली कमाऊ लड़की थी। जिस के कारण रामू चोर से शाह बन गया था। जो अपनी कमाई से रामू और कौशल्या का पेट पाल रही थी। वह न होती, तो कौशल्या किसी घर में बर्तन धो रही होती, और रामू जेल में चक्की पीस रहा होता। उसीकी कमाई पर यह परिवार जी रहा था।

मनसूर ने शाकिर से तो हार नहीं मानी, परन्तु रज़िया ने उसे बिल्कुल हार दे दी। उसने बार-बार उसकी गर्दन में अपने प्रेम का फंदा डाला, परन्तु हर बार वह जंगल के मृग की नांई छलांगें मारती हुई निकल गई। अंत में थककर वह भी चुप हो गया।

इस दुनिया में जो लोग प्रेमी होते हैं, वह प्रेम के लिए जीते और प्रेम के लिए मरते हैं। ब्रह्मा की रैन उनके लिए दुख की रैन बनकर निकलती है। मिलन-दिवस उनके लिए ईदे-सईद से भी बढ़कर होता है। प्रेमिका की कृपा-दृष्टि उन्हें प्रसन्नता के एक नए संसार में पहुँचा देती है और उसकी बेरुख़ी उन्हें निराशा और दुख में गिरफ़्तार कर देती है। प्रेमिका झिड़कती है तो वह प्रसन्न होते हैं। प्रेमिका बात करती है तो वह फूल की भांति खिल जाते हैं। हमारी सारी शायरी प्रेमिकाओं की इन्हीं विचित्रताओं और सच्चे प्रेमियों की इन्हीं जानबाज़ियों से भरी पड़ी है। हमारे प्रतिदिन के तजरुबे इन्हीं सच्चाइयों को दिखाते हैं। एक सफल प्रेमी अपने कपड़ों में फूला नहीं समाता। उसकी बाछें हर समय खिली रहती हैं।

इसके विपरीत असफल प्रेमी हर समय, आहज़ारी से दर-दीवार में भूचाल पैदा करता रहता है। उसकी मुख की पीलिया, उसका रतजगा, उसकी उदासी और निराशा, उसके मन का दुख, उसके दिल का भय—यह एक ऐसी साधारण घटना है, जो हर समय देखी जा सकती है।

परन्तु मनसूर ? तोबा कीजिए, वह सफलता-असफलता से प्रभाव ग्रहण करने का आदी ही नहीं था। वह कोशिश करता था, केवल कोशिश। यदि

सफल हो गया, तो खिलखिलाता नहीं था, कहकहे नहीं लगाता था। यदि असफल हुआ तो न आत्महत्या का विचार उसे सताता था, न जंगल अथवा मरुस्थल की राह सोचता था।

वह एक ओर के प्रेम को नहीं मानता था। उसने देखा, उसका मन रज़िया की ओर खिचता है। वह रज़िया से यह सोचकर अंधा-धुंध प्रेम करने लगा कि वह भी उसे चाहने लगेगी। उसका विचार था कि वह एक हक पर है। रज़िया का कर्त्तव्य है कि वह हक का साथ दे और उससे प्रेम करने लगे। परन्तु रज़िया ने प्रेम का उत्तर प्रेम से नहीं दिया।

मनसूर ने जाल बिछाए। कमंदें फेंकीं, कोशिशें कीं, परन्तु रज़िया को न मनवा सका। इस मायूसी और नाकामी से भी उसका दिल खट्टा न हुआ। वह अब भी वैसा ही खुश, वैसा ही प्रसन्न, और वैसा ही हरशाश बरशाश—अब तो वह रज़िया का मज़ाक उड़ाया करता था।

"विचित्र वस्तु हैं हमारी भाभी भी! प्रेम का उत्तर घृणा से देती हैं, और घृणा के उत्तर में अपना सिर झुका देती हैं।"

यह व्यंग्य करके वह स्वयं अपनी बात की प्रशंसा करता और ज़ोर से हंसता, कि रज़िया भयभीत हो जाती और घबरा-घबरा कर उसकी ओर देखने लगती।

हाशिम के दार्जिलिंग जाने के पश्चात्, वह घर जिसको वह पहले एक आराम का कुंज समझती थी, अब वीरान और सुनसान, दुखी और बीमार, ग़मगीन और उदास नज़र आने लगा था। अब वहाँ उसका जी नहीं लगता था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे घर उसे काटने को दौड़ रहा हो। अंत में वह फिर अपने ससुराल लौट आई, बिल्कुल बिन बुलाए महमान की भाँति।

शाकिर अब भी उससे बेगाना था। सास अब भी बात नहीं करती थी। सुरैया अब भी पराई थी। एक मनसूर था जो कभी उसके दुख-सुख को बाँटने वाला था, जो उससे सहानुभूति रखता था। अब वह भी बदल चुका था। अवसर पड़ने पर जली-कटी सुनाया करता था। शब्दों के तीरों से

उसका दिल छेदा करता था। परन्तु अपने घर की अपेक्षा वह यहाँ कुछ इतमीनान से ही थी।

वह जहाँ तक सम्भव हो, मनसूर के सामने नहीं आती थी। आ भी जाती तो कतराकर निकलने की कोशिश करती थी। और कोई होता तो सम्भल जाता, रुक जाता, परन्तु वह इन बातों को कब ख़ातिर में लाता था। रज़िया की बेरुख़ी, ठंडे वर्ताव और सम्बन्ध-विच्छेद—इन सब बातों को उसने महसूस किया. परन्तु उसने अपना मन नहीं दुखाया। वह उसकी घबराई-घबराई हरकतों से मज़ा लिया करता था।

एक बार उसने बीच आँगन में रज़िया को टोका।

कहने लगा—

"तुम मुझसे भागती क्यों हो ? मैं हव्वा हूँ ? हड़प कर जाऊँगा तुम्हें ? अरे भई, एक बात थी, वह तो अब ख़त्म हो गई। ख़ुशी का सौदा था वह तो, परन्तु न पट सका। चलो हटाओ इस कथा को ! क्या तुम समझती हो कि मुझसे कतराओगी और मैं हाथ बाँधे-बाँधे तुम्हारे पीछे-पीछे फिरूँगा ? वह और लोग होते होंगे। मैं ऐसा नहीं हूँ। मैंने तुमसे प्रेम किया। तुम मुझसे प्रेम न कर सकीं। मैंने भी अपने मन से निकाल दिया तुम्हारा मोह ! मैं अब अपने प्रेम का पात्र किसी और को बना लूँगा। तुम पूजती रहो अपने पतिदेव को !"

रज़िया बहुत दुखी थी परन्तु पतिदेव का शब्द सुनकर वह अपनी मुस्कान न रोक सकी। उसे मुस्कराता देखकर मनसूर का हौसला और बढ़ा।

उसने कहा—"कुछ ग़लत कहता हूँ मैं ? देखो; सच-सच कहना !"

रज़िया ने कहा, "न, बाबा मैं तुमसे बहस नहीं करती। तुम तो दामन पकड़ते-पकड़ते पहुँचा पकड़ने लगते हो ! क्षमा करो मुझे।"

यह कहकर वह अपने कमरे में चली गई।

मनसूर की इन बातों से रज़िया के दिल का कांटा निकल गया। वह

डर रही थी कि मनसूर फिर अपने प्रेम की बात करेगा, और अपनी मुहब्बत का डंका पीटने लगेगा। फिर शाकिर को क्रोध आएगा। फिर बड़ी बी अपने बेटे का पार्ट लेंगी, और उसे दो-चार गालियाँ सुना देंगी। परन्तु आज की बातों से उसे तसल्ली-सी हो गई। उसके दिल का बोझ उतर गया।

उसने विश्वास कर लिया कि अब मनसूर उसके विचार से हाथ धो चुका है। अब वह फिर उसकी भाभी है, और वह उसका देवर !

वह मनसूर के स्वभाव से परिचित थी। उसे भली भाँति पता था कि वह लगी-लिपटी रखने का आदी नहीं है। जो कुछ कहता है, बेलाग कहता है, चाहे किसीको बुरा लगे, या अच्छा। जब तक उस पर प्रेम का भूत सवार था, वह शाक़िर तक से दो-दो हाथ करने को तैयार था। अब वह भूत उतर गया, तो फिर आ गया वह अपनी वास्तविक हालत पर—और साफ़-साफ़ घोषणा कर दी—प्रेम खत्म !

आज पहली बार रज़िया ने इस घर में इतमीनान का साँस लिया।

१६

यू. पी. के प्राचीन रईसों और अमीरोंके यहाँ अब तक लौंडियों और बाँदियों का सिलसिला पीढ़ियों से चला आ रहा है। अकाल की मारी हुई माँ ने अपनी लड़की बेच दी। किसी मेले में कोई लड़की गुम हो गई। माँ-बाप गरीबी की दशा में मर गए और एक लड़की ना मालूम वारिसों के लिये छोड़ गए। यह लड़कियां जब बड़े घरों में पहुंचतीं, तो उनके माथे पर प्रारब्ध का जालिम हाथ बड़ी कलम से 'लौंडी' लिख देता, और वह भाग्य की रेखा बन जाता, जिसके सम्बन्ध में सभी जानते हैं कि भाग्य का लिखा कौन मिटा सकता है ?

इन बनने वाली लौंडियों का लालन-पालन इस प्रकार किया जाता कि रोटी से अधिक उन्हें मार खाने को मिलती। घर में यदि एक पैसा भी गुम हो जाए, तो शक में घर की हर लौंडी पकड़ ली जाती, और इकरार या इन्कार, दोनों हालतों में मार-मारकर उसकी मस्ती निकाल दी जाती। यह विचार अब पूर्ण विश्वास का रूप धारण कर चुका है, कि जिस वस्तु को हम 'मस्ती' कहते हैं, वह लौंडियों में कूट-कूट कर भरी होती है।

इन लौंडियों को कपड़ा पहनने को मिलता था। तेल प्रयोग करने, इतर लगाने, बाल गूंथने और भड़कीले कपड़े पहनने की इन्हें मनाही हुआ करती, ताकि बिगड़ न जाएं। घर की बेटियों को शादी में, जहाँ और दहेज, गहने, कपड़े, नकदी आदि दी जाती, वहाँ एक लौंडी भी बख्श दी जाती थी।

प्रथम तो इन लौंडियों के सम्बन्ध में यह समझ लिया जाता था कि इनको

शादी ब्याह की आवश्यकता ही नहीं है—और उनका स्वयं यह हाल था कि शादी की आवश्यकता लाख अनुभव करें, परन्तु फुरसत ही नहीं थी शादी की। मुंह अंधेरे से रात गए तक लगातार, और रात गए के पश्चात् से सुबह मुंह अंधेरे तक कभी-कभी इन्हें भिन्न-भिन्न काम करने पड़ते थे।

दिन का सारा समय तो बर्तन माँजने, झाड़ू देने, बच्चों को बहलाने, खाना खिलाने, और पाँव दबाने, में लग जाता था, रात को बड़ी देर में सोने का समय मिलता था।

अब फर्ज कीजिए, एक लौंडी दिनभर काम करके, थककर, चूर हो कर, घोड़े बेच के ग्यारह बजे के लगभग सोई। और एक बजे 'मियाँ' या 'सरकार' बाहर से ज़नानखाने में तशरीफ लाए। वह सोते-सोते भी गुड़गुड़ी पीने के आदी हैं। तुरन्त ही लौंडी को आवाज़ देंगे, चिलम भर !"

अव्वल तो लौंडी का कर्त्तव्य यही है कि मालिक के आने तक बिल्कुल न सोए, परन्तु यदि वह सो गई, तो उसका यह परम धर्म है कि पहली आवाज़ पर ही उठ पड़े। दूसरी आवाज़ बाद में पड़ती थी, पहले जूती पड़ती थी। जूती खा के यह खड़बड़ा के उठी। रोती गई। कोसती गई। होठों में ही आका को गालियाँ भी देती गई और चिलम भी भरती गई। चिलम हुक्के पर रख कर वह फिर सो गई।

ठीक दो बजे घर का सबसे छोटा बच्चा पेशाब के लिए उठा। अब लौंडी का फिर फर्ज है कि उसे तुरन्त पेशाब करवाए। ज़रा भी विलम्ब हुआ और पड़े जूते।। इन कामों के साथ शादी कैसे निभ सकती थी। इस कारण प्रायः लौंडियां जवान से बूढ़ी हो जातीं, परन्तु विवाह के मजों से कोरी ही रहतीं। कोई भाग्यवती लौंडी ऐसी भी निकल आती, कि घर के किसी सम्बन्धी नौकर के साथ उसकी शादी कर दी जाती, परन्तु शादी की शर्तों में एक बात यह भी शामिल थी कि लौंडी लौंडी ही रहेगी। गुलाम को गुलाम रह कर शादी करना चाहिए, अर्थात् पत्नी के अधिकारों पर कभी ज़िद न करे, तो शादी कर सकता है।

इन लौंडियों में कुछ ऐसी भी थीं, जो परिवार की सेवा करते-करते

बुढ़ापे में कुछ सम्मान प्राप्त कर लेती थीं, परन्तु जिस प्रकार सरकारी उपाधियाँ साधारणतः व्यक्तिगत होती हैं, पीढ़ियों तक नहीं चलतीं, उसी प्रकार इन बूढ़ी लौंडियों का सम्मान भी इन्हीं तक सीमित होता था। उनकी सन्तान को इसमें से कोई भाग नहीं मिलता था।

सनोबर इसी घर की जन्मी हुई लौंडी थी। इसकी माँ, नानी, परनानी इस घर की लौंडियां रह चुकी थीं। इसकी बूढ़ी मां नस्तरन का अभी इन्हीं दिनों देहांत हुआ था। वह अपनी बेग़र्ज़ सेवाओं के लिए सम्मान की दृष्टि से देखी जातीथी, परन्तु सनोबर उसके सामने भी धुआं-धार पीटी जाती थी। मां के देहांत के बाद कुछ दिनों तक उसकी दिलजोई हुई, इसके बाद फिर गालियाँ और जूतियाँ और ठोकरें और ताने। वह थोड़े समय के लिए तो अवश्य प्रभावित होती थी, अर्थात् अधिक मार पड़ी तो रोने लगी। परन्तु ओट का दर्द ज्योंही दूर हुआ, वह फिर आ गई अपने रंग पर, या अम्मीजान के शब्दों में, "आ गई अपनी औकात पर !"

उसकी आयु कोई पन्द्रह वर्ष की होगी। वह यौवन की दहलीज पर कदम रख चुकी थी। रंग काला परन्तु चमकीला, दाँत मोती की तरह सफेद, बाहें भरी-भरी, न दुबली न मोटी। बातों में मिठास, बोल-चाल में खिचाव, आदतों में शोखी, यह था उसका नाक-नक्शा।

लौंडियों में भरे यौवन का काल बड़ा खतरनाक होता है। इन बेचारियों को मर्दों की अपेक्षा स्त्रियों से अधिक वास्ता पड़ता है। घर की बीबियाँ उनके यौवन के उभार को रोकती हैं। उनकी जवानी की बाढ़ से जलती हैं। तुरन्त ही फूल की तरह मसल देती हैं। उन्हें डर रहता है कि कहीं यह मालिक या मालिक के बेटे की दृष्टि में न चढ़ जाएँ, और बाद में एक काँटा बन जायें। एक ऐसा तूफान न बन जायें, जो रोके न रुके और सम्भाले न सम्भले।

सनोबर अब इसी दौर से गुज़र रही थी। वह जवान हो रही थी। जवानी उस पर तूफान की तरह सवार थी। वह सुन्दर नहीं थी परन्तु जवानी थी कि फूटी पड़ती थी। उसकी आँखों से जवानी छलकती थी, उसकी बातों

से जवानी बरसती थी। उसकी रफ्तार से जवानी टपकती थी। उसके मुख पर जवानी चमकती थी। उसकी बाहों, उसके वक्ष, उसकी अदाओं में जवानी समाई हुई थी, उभर रही थी। एक मुंह जोर चश्मे की तरह अपने लिए फैलाव ढूंढ़ रही थी। वह बैठती थी लेकिन उसकी शरसार जवानी मंज़िल के संकेत की तरह खड़ी रहती थी। वह चलती थी तो एक हौल दिलाने वाले मेंह के झक्कड़ की तरह, अपनी संक्षिप्त कायनात पर छा जाती थी। सोती थी, तो उसकी जवानी एक जीते-जागते फितने की तरह हो जाती थी।

अम्मीजान यौवन-कला की पुरानी कलाकार थीं। उन्होंने सनोबर का यह रंग देखा और भांप लिया।

"अभी फ़ितना है, कोई दिन में क़यामत होगी।

उन्होंने रोक-थाम शुरू कर दी। बे बात की बात पर उसे मारतीं। उसका कसूर न होता, तो भी उससे मनवा लेतीं, और फिर चार चोट की मार से उसका सम्मान करतीं।

वह रह-रहकर सोचती—आखिर मुझ में ऐसी कौन सी तबदीली आगई है, कि मैं बीबी की नजरों से गिर रही हूँ? मैंने क्या अपराध किया है कि इस निर्दयता से पीटी जाती हूँ? मुझसे क्या खता हुई है कि बात-बात पर ताने और गाली से मेरी खातिर होती है?

और हाँ, यह जवानी क्या वस्तु होती है कि जिसका जब देखो, बीबी मुझे ताने दिया करती हैं। "जवानी फटी पड़ रही है मुई पर!" मैं जवान हो रही हूँ, तो इसमें मेरा क्या आपराध है? क्या यह बीबी कभी जवान नहीं थीं? क्या रज़िया जवान नहीं है? क्या सुरैया पर जवानी फटी नहीं पड़ रही है। फिर इनकी जवानी को कोई कुछ नहीं कहता, मेरी जवानी सबकी आंखों में खटक रही है कांटे की तरह।

या अल्लाह! मैं बूढ़ी किस प्रकार हो जाऊं? जवानी इतनी बुरी थी तो तूने मुझे जवान क्यों किया! मैं बाज आई जवानी से।

कल मुई गुलशन (दूसरी लौंडी) कह रही थी, जरा सम्भल के रहना जवानी फटी पड़ रही है तेरे ऊपर! फिर किस मजे में गुनगुनाने लगी:—

बचपन भी वश में, बुढ़ापा भी वश में
जवानी क्यों नहीं वश में······!

कितना मधुर गीत गा रही थी। लेकिन मैं समझी नहीं कि जवानी क्यों वश में नहीं ? जवानी कोई घोड़ा है कि सरपट भागा जा रहा है और रोके नहीं रुकता। कोई हवाई जहाज है, कि उड़ा जा रहा है, मगर रुकता नहीं।

सब जवान होते हैं। वह भी जवान है। मैं भी जवान हूँ। न मैं वश से बाहर हूं, न वह। फिर यह क्यों कह रही थी कि जवानी वश में नहीं।

वह इन बातों को सोचती जाती, परन्तु इनका कोई तसल्ली-बख्श उत्तर नहीं मिलता था। आखिर थक-हारकर वह इस सम्बन्ध में सोचना ही छोड़ देती थी।

"ऊँह, होगा ! न जाने कैसी बातें हैं ? मेरी समझ में तो नहीं आतीं !"

२०

मनसूर सिनेमा देखने गया था। माँ से कह गया था कि आज रात को देर से आऊँगा।

मनसूर के जाने के बाद अम्मीजान ने सनोबर से कहा—

"तोशा खाना* से एक कम्बल निकालकर ऊपर मनसूर के कमरे में रख आ। अब हल्की-हल्की सर्दी पड़ने लगी है। जड़ाता होगा। वह एक पागल है, ज़बान से तो कुछ कहेगा नहीं!"

सनोबर ने कहा—"अच्छा।" और काम-काज में लग गई। घर के लोगों ने खाना खा लिया। सनोबर खाने बैठी, फिर बर्तन माँजने लगी। इन कामों को निपटाते-निपटाते प्रतिदिन इसे ग्यारह बज जाते थे रात के। आज भी यही हुआ। अपने काम से फ़ारिग़ होकर वह अपनी कोठरी में जाकर लेट रही। लेटते ही उसे विचार आया, बीबी ने मनसूर के कमरे में कम्बल रखने को कहा था। फौरन उठी। तोशा खाना की कुंजी उसीके पास रहती थी।

दरवाज़ा खोला, कम्बल निकाला और चली ऊपर की ओर। सारा घर सो चुका था। सब अपने-अपने कमरों में द्वार बंद किए सो रहे थे। दरवाज़े के पास जुम्मन बैठा ऊंघ रहा था, कि मनसूर आ जाय तो दरवाज़ा बंद करके वह प्रतिदिन की तरह बरौठे में जाकर सो रहे। यह सन्नाटा देखकर सनोबर का दिल डर गया।

---

*भंडार

ऊपर कोठे पर तो इससे अधिक सुनसान होगा, उसने सोचा। कहीं चोर न हो वहाँ! बहुत डरी वह ऊपर जाते हुए। लेकिन वह जान रही थी कि चोर भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। जैसे अम्मीजान आज्ञा का पालन न करने के अपराध में उसका हुलिया बिगाड़ देंगी·········

अंत में वह डरी-डरी सहमी-सहमी ऊपर गई। मनसूर के कमरे का दरवाजा खोला। बिजली जलाई। उसके बिस्तर की सलवटें ठीक कीं। चारपाई पर तह करके कम्बल रखा। फिर बिजली की ओर बढ़ी कि उसे बुझाकर वापस चली जाए।

उसकी दृष्टि मनसूर के पढ़ने-लिखने की मेज़ पर पड़ी। एक अंग्रेज़ी पत्रिका खुली पड़ी थी। वह आगे बढ़ी और झुककर उसे देखने लगी। एक चित्र था किसी नर्तकी का अध-नंगी हालत में। यह चित्र देखकर उसके शरीर में न जाने क्यों झुरझुरी सी आ गई।

उसने दायें-बायें देखा, कोई उसे देख तो नहीं रहा है। तसल्ली होने पर बड़े शौक़ से उसने वह पत्रिका उठा ली और सामने जो सोफ़ा पड़ा हुआ था, उस पर जाकर बैठ रही। वह बिल्कुल पढ़ी-लिखी नहीं थी, परन्तु चित्रों की मूक भाषा को भली भांति समझती थी।

वह आराम से सोफ़े पर बैठ गई और पन्ने पलटने लगी।

एक के बाद एक चित्र बोलता हुआ, छेड़ता हुआ, गुनगुनाता हुआ उसकी आँखों के सामने आ रहा था। वह एक स्वस्थ पुरुष एक सुन्दर स्त्री को अपनी बांहों में जकड़े हुए है। दोनों के मुँह एक-दूसरे से गुथे हुए हैं। स्त्री कुछ शर्माई-लजाई-सी है। पुरुष इस लाज को अपनी कलाई से थामे हुए है।

एक दूसरा चित्र सामने आया। एक पुरुष और एक स्त्री······स्त्री पुरुष का चुम्बन ले रही है। उसने दांतों तले उँगली दबा ली। परन्तु उसके शरीर में फिर एक बिजली की लहर दौड़ गई।

फिर उलटा उसने पन्ना।

एक सुन्दर पुरुष और एक सुन्दर स्त्री, अर्ध-नंगे-से परस्पर एक दूसरे की गोदी में थे। यह देखकर उसने फिर एक झुरझुरी ली। उसकी आँखों में अपने आप एक चमक-सी आ गई। उसका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा। उसके हाथों में कंपकंपी पैदा हो गई।

पत्रिका अभी तक उसके हाथों में थी। चित्र अभी तक उसके सामने था, परन्तु अब वह दूसरी ही दुनियां में पहुँच चुकी थी। स्वप्न की दुनिया—सुन्दर, मन-मोहक, और दिल लुभाने वाले ख्वाबों की दुनिया।

वह स्वप्न देख रही थी कि अच्छे-अच्छे कपड़े पहने है। गहनों से उसका शरीर लदा हुआ है। फूलों के हार और गजरे वसंत बनकर उसके शरीर पर लहरा रहे हैं। इतने में एक सुन्दर, तगड़ा और दिल में घर कर जाने वाला नवयुवक उसके सामने आया। उसकी आँखों से मस्ती उबल रही थी।

उसे देखकर वह घबरा गई, परन्तु वह मुस्कराया और उसे अपनी बाहों में ले लिया। उसने उसके मज़बूत शिकंजे से निकलने की चेष्टा की··· लेकिन अरे! यह तो उसे अच्छा लग रहा था। उसका जी चाह रहा था कि वह नवयुवक इसी तरह उसे भींचे जाए, दबाए जाए।

वह इस पर राजी थी कि वह नवयुवक अपनी बांहों के शिकंजे में उसे लेकर कस ले, चूर-चूर कर दे, थका दे।

वह उसकी बाहों में समाई चली जा रही थी। उसका जोड़-जोड़ दर्द करने लगा था, फिर भी वह वहाँ से हटना नहीं चाहती थी। उसकी आँखों में, उस पकड़ में आते-आते आँसू आ गये थे, परन्तु वह स्वयं भी तो इस पकड़ से निकलना नहीं चाहती थी। न जाने, क्यों?

एकाएक उसकी आँख खुली।

वह स्वप्न की दुनिया से वास्तविकता की दुनिया में पहुँच गई। मनसूर के मज़बूत हाथ और बाज़ू उसे पकड़ में लिए थे। दोनों के नथनों से गर्म-गर्म सांस निकल रहे थे। दोनों के होंठ एक-दूसरे से जुड़े हुए थे।

स्वप्न की दुनिया में जो नवयुवक उसने देखा था, यह उससे भी अधिक

नुकीला सजीला था। वह इस प्रकार उसकी बाहों में जकड़ी थी, जैसे मकड़ी के जाल में मक्खी।

मनसूर मुस्करा रहा था।

पहले तो वह घबराई, परन्तु मनसूर को मुस्कराता देखकर वह भी मुस्कराने लगी। उसकी रग-रग और नस-नस में उस समय बिजली समाई हुई थी। मनसूर मिकनातीस बना उसके शरीर से लिपटा था। उसका जी चाह रहा था, वह भी मनसूर को प्यार करे। वह चित्र वाली स्त्री भी तो उस पुरुष को प्यार कर रही थी।

यह विचार आते ही उसने मनसूर को अपने बाजुओं में ले लिया। वह भी उसे भींच-भींचकर प्यार करने लगी। मनसूर उस समय उसकी दृष्टि में आकाश से उतरा हुआ एक देवता था। उसके मुख-मंडल पर उसे नूर बरसता दीख रहा था। आज तक वह किसी वस्तु की टोह में थी, तलाश में थी, खोज में थी ; आज वह वस्तु उसे मुफ़्त मिल गई थी, बिल्कुल मुफ़्त। ऐसी वस्तु कि जिसका नाम भी उसे मालूम नहीं था।

रात को तीन बजे तक मनसूर और सनोबर, मालिक और बाँदी के रूप में नहीं, प्रेमी और प्रेमिका के रूप में एक-दूसरे से प्रेम-क्रीड़ा में मग्न रहे। मनसूर का विचार था कि वह इतराएगी, अर्थात् दिल में हँसेगी और ऊपर से रोएगी, चीखेगी, चिल्लाएगी, रोकेगी, परन्तु यह कुछ भी न हुआ।

न वह चीखी, न चिल्लाई। वह तो मनसूर से अधिक प्रसन्न थी। मनसूर ने तो एक वक्ती जज़बे को बहला लिया था, परन्तु उसे तो लगता था, जैसे दो जहानों की दौलत मिल गई हो।

मनसूर ऐसी स्त्रियों से बहुत नफरत करता था, जो इतराती हैं। जो "मन चाहे, मुंडिया हिलाए" की तरह होती हैं। जिनके दिल में पुरुषों से अधिक आग होती है, परन्तु बर्फ़ की सिल बनी रहती हैं। सनोबर ने तो अपनी सारी आग उगल दी। खुशी-खुशी, हँस-हँसकर। यह अदा उसके दिल में चुभ गई।

सनोबर ने देखा, आज मनसूर उससे चाव-प्यार की बातें कर रहा है। उसमें वह मालिकों का-सा रौब, सख्ती आदि नहीं है, जो अब से कुछ देर पहले तक था। मनसूर की इस तबदीली ने सनोबर के दिल की खुशी और बढ़ा दी।

वह उसके गले में बाहें डाले हुए उसकी गोद में लेटी थी। मनसूर उसके बालों और गालों से खेल रहा था।

अब घड़ी ने चार बजाए। मनसूर चौंका। उसने धीरे से सनोबर को अपनी गोद से हटाया। कहने लगा—

"अब जाओ, सुबह हो रही है।"

हकूमत के तख्त से वह फिर गुलामी के फ़र्श पर पहुँच गई। एकाएक उसे आभास हुआ कि वह लौंडी है। उसके मुख पर दर्द की रेखायें उभर आईं। परन्तु मनसूर की गर्म जोशी ने उसे फिर ठण्डा कर दिया।

जब वह जाने लगी तो मनसूर ने एक बार फिर उसका हाथ पकड़कर खींचा। वह धम से उसकी गोदी में आ रही।

मनसूर ने कहा—

"सनोबर, मैंने तो तुझे आज देखा है।"

वह बोली, "तो अब तक जिसे आप देखते रहते थे, वह कोई और थी ?"

मनसूर ने कहा—

"हाँ, होगी कोई चुड़ैल, सनोबर, मेरे दिल की रानी वह नहीं थी। तू है, तू !"

सनोबर के मुख-मंडल पर खुशी की लहर दौड़ गई। इस खुशी में अब अम्मीजान की भयानक क्रूरता का डर मिलता जा रहा था। वह अब नीचे जाने के इरादे से उठी।

मनसूर ने पूछा, "कल फिर आएगी ?"

सनोबर ने 'हाँ' में गर्दन हिलाई और मुस्कराती हुई धीरे-धीरे दबे पाँव नीचे चली गई।

मनसूर ने कम्बल ओढ़ा और सो गया। सनोबर अपनी कोठरी में गुदड़ी में पड़ी जाग रही थी। नींद का कोसों तक पता नहीं था। फिर भी वह बहुत खुश थी, बहुत खुश !

२१

मनसूर परीक्षा की तैयारी कर रहा था। साधारणतः वह पुस्तकों की ओर बहुत कम ध्यान देता था, परन्तु परीक्षा करीब आई और वह किताबों का कीड़ा बना। तैयारी के दिनों में वह दो-दो बजे रात से पूर्व कभी नहीं सोता था।

ठीक बारह बजे जब घर में सोता पड़ चुका था, मनसूर के कमरे का दरवाज़ा थोड़ा-सा खुला। मनसूर ने सिर उठाकर देखा। सनोबर खड़ी मुस्करा रही थी, और मूक वाणी में पूछ रही थी—

"मैं आऊं अन्दर ?"

मनसूर ने गर्दन से संकेत किया। वह दबे पाँव अन्दर आई। उसने स्वयं दरवाजे के अन्दर से चटखनी लगाई, और बड़े इतमीनान से आकर कल वाले सोफे पर बैठ गई।

मनसूर ने कहा, "अभी आता हूं। तुम बैठो !"

यह कहकर वह पुस्तक देखने लगा। सनोबर भी बेकार क्यों बैठती, वह अपने दिल की पुस्तक पढ़ने लगी। वह पुस्तक जिसे, पढ़े और बे पढ़े, पंडित और जाहिल, स्त्री-पुरुष, सब पढ़ते हैं।

वह मनसूर की ओर देखती थी और सिर झुका लेती थी। उसे कल के खेल का शौक था। दिल में मनसूर को देखकर गुदगुदी सी हो रही थी। यह सोच रही थी—

यह क्या जादू है इस व्यक्ति में, कि इतनी रात गए मैं इसके पास चली

आई ? न बीबी के जूतों का डर, न मियाँ की ठोकरों का ? इस समय की प्रतीक्षा में दिन काटना मुश्किल हो गया। जो काम मुझसे दिनभर नहीं निपटते थे, वह मैंने पलक झपकते में कर लिए। सोच रही थी, कब दिन खत्म होगा ? कब रात आएगी ? कब घर वाले सोएंगे ? कब मैं ऊपर जाऊंगी ? आखिर वह घड़ी भी आ गई।

यह विचार आते ही फिर उसे ऐसा लगा जैसे उसके शरीर का सारा रक्त खिचकर उसके मुख पर आ गया है और यहां से फर्राटा मारकर बाहर निकलने लगा है। उसका दिल धड़कने लगा। हाथ-पाँव कुछ ढीले पड़ गए। वह मन ही मन में कहने लगी, यह धड़कन क्यों हो रही है ? ऐसा लगता है, जैसे दिल डूबा जा रहा हो मेरा !

मनसूर की कोशिश यह थी कि पुस्तक के जो दो-तीन पन्ने शेष हैं, उन्हें खत्म कर ले। फिर रात्रि का शेष भाग सनोबर के पहलू में बिता दे। वह सोफे पर बैठी हुई थी।

मनसूर पुस्तक देख रहा था, परन्तु पुस्तक के अक्षर कुछ मिटते-मिटते दीख पड़ते थे। मध्यम मद्धम दिखाई दे रहे थे। वह एक-एक पंक्ति को कई बार पढ़ता, परन्तु समझता खाक नहीं था। सनोबर के आते ही उसे लगा जैसे उस पर एक बिजली-सी गिर पड़ी। वह बे हरकत हो गया। शरीर में रक्त घूम रहा था, और उसके साथ दिल भी और दिमाग भी, और दिमाग के साथ यह कमरा भी घूम रहा था। यह घर भी, यह सारा ब्रह्मांड भी, आकाश भी, नदी भी और सागर भी, वृक्ष भी और पहाड़ भी।

वह सोचने लगा—

"मैंने अनगिनत स्त्रियों को देखा, परखा, जाँचा। बहुत सी स्त्रियाँ थीं, जिन्हें मैंने चाहा, जिन्होंने मुझे चाहा। वह भी युवा थीं, वह भी सुन्दर थीं, दौलतमन्द भी थीं। सभा के असूलों से परिचित भी थीं। यह छोकरी सब पर बाजी लिए जाती है। हालाँकि कुछ भी नहीं है उनके मुकाबले में ! खाक भी नहीं। यह छोकरी, या जादूगरनी ? इसने कोई तावीज़ तो नहीं

पिला दिया मुझे घोलकर ? इसने कुछ पढ़ तो नहीं दिया मेरे उपर ? लाहौल बिला कुव्वतः जो एक शब्द समझ आ रहा हो पुस्तक का !"

वह उठा।

उसने ज़ोर से पुस्तक मेज़ पर पटकी। वह सोफे पर सनोबर के बिल्कुल पास आकर बैठ गया, जैसे जुड़वां हों। पास बैठना था, कि दोनों फिर बेखुद हो गए। दोनों फिर नशे में बदमस्त हो गए। दोनों फिर आपे से बाहर हो गए।

अब न कोई असूल था, न कोई स्तर। एक तूफान था, ज़ोर का, असीम, जिसमें दोनों तिनके की नाईं बहे जा रहे थे। न किनारे का निशान था, न मंज़िल का पता। न रोशनी, न चाह, न बादबान""चले जा रहे थे, बहे जा रहे थे।

संसार से निश्चिन्त वह दोनों अपना खेल खेलते रहे। यहां तक कि घड़ी ने चार बजाए। दोनों चौंके।

ग़ाफ़िल, तुझे घड़ियाल यह देता है मनादी।
कुदरत ने घड़ी उम्र की इक और घटादी।।

इन दोनों ने महसूस किया, उम्र की एक घड़ी कम नहीं हुई, बल्कि उम्र ही खत्म हो गई। जिन्दगी ही मर गई।

दोनों सम्भले, उठे, एक दूसरे से अलग हो गए। दोनों पास खड़े थे परन्तु जुदा होने के लिए। सनोबर ने जल्दी से अपने सिर के उलझे बाल ठीक किए। मुंह पर कहीं-कहीं कुछ निशान रह गए थे, उन्हें हाथ से ज़ोर-ज़ोर से मला, कि गालों की सतह हमवार हो जाए। ओढ़नी जो सोफे से कई फुट दूर जा पड़ी थी, उसे उठाकर ठीक ढंग से ओढ़ा।

उस समय उसके पाँव लड़खड़ा रहे थे। उसे सहारे की आवश्यकता थी। मनसूर ने अपने बाजुओं के सहारे में उसे ले लिया। उसने पूरी बेतकल्लुफ़ी से अपना सारा बोझ उन मज़बूत बाहों पर डाल दिया। नशीली आँखों से मनसूर की ओर देखा और गर्दन झुका ली।

मनसूर आत्मसमर्पण की दशा में उसकी आँखों को चूमता रहा। जिन आँखों से इस समय सनोबर ने मनसूर को देखकर गर्दन झुका ली थी, वह उसे बड़ी प्यारी लग रही थीं। इन आँखों में कोई संदेश था। कोई बात थी। कोई रूह थी—"यह सहारा छीन तो न लोगे ?" वह था इनका सार।

कमरे में सन्नाटा छाया हुआ था। परन्तु सनोबर की आंखों में उसका संदेश गूंज रहा था। उसकी आंखों ने जो बात कही थी, वह साफ सुनाई दे रही थी। सनोबर का मुख सूर्य की भाँति जगमगाता हुआ उसे मालूम हो रहा था। आँख नहीं ठहरती थी ज़ालिम पर !

घड़ी की सुई अपनी मंज़िल तेज़ी से तै कर रही थी। दोनों चाहते थे कि वह चलना भूल जाए, परन्तु समय की ताकत इसे रवां-दवां, खरामा-खरामां आगे बढ़ाए लिए जा रही थी। उसे आगे बढ़ने पर विवश कर रही थी। ऐसा लगता था जैसे घड़ी की सुई तीर की तरह उनके दिलों में चुभकर आगे बढ़ रही थी।

सनोबर ने कहा—

"बड़ी देर हो गई। अब जाऊं?"

मनसूर ने उत्तर दिया—

"जाओ, परन्तु कल आना अवश्य !"

उसने फिर कल की तरह 'हां' में गर्दन हिलाई और चली। मनसूर उसे देखता रहा। वह चोर की नाईं फूंक-फूंककर अपने कदम रख रही थी। जब वह आँखों से ओझल हो गई तो मनसूर अपने बिस्तर पर लेट गया।

सनोबर आज जाते ही सो गई, परन्तु मनसूर करवटें बदल रहा था। वह नींद को बुला रहा था, परन्तु नींद की देवी उससे रूठी हुई थी। बार-बार सनोबर का विचार सनोबर बनकर उसके सामने आकर खड़ा हो जाता था।

वह फिर विचारों की दुनियाँ में पहुँच गया। वह ग़ौर कर रहा था। सौन्दर्य और यौवन के बड़े-बड़े तूफान मेरी आँखों के सामने से गुज़रे हैं, परन्तु

मैं चट्टान की तरह अपने स्थान पर जमा रहा···और यह ज़लील छोकरी ! कैसा विचित्र तूफान है कि जिसके पहले ही रेले में मेरे पाँव डगमगा गए और मैं बेबसी के साथ बहने लगा।

इसी घर में यह पैदा हुई, पली, पढ़ी, जवान हुई। परन्तु इसका तूफान कितने दबे पाँव आया कि मुझे खबर भी न हुई। खबर हुई तो कब ? जब वह पूरी शक्ति से मुझे ले डूबा।

कल रात के बारह बजे तक वह घर की दूसरी बाँदियों की तरह एक बाँदी थी, जिसे मैंने कभी मुंह नहीं लगाया। परन्तु सिनेमा से लौटकर जब मैंने उसे अपने सोफे पर स्वयं को भूल जाने की दशा में सोते देखा···

···तो मैंने देखा कि वह जवानी की एक ऐसी उमंडती हुई नदी है, एक ऐसा ज़बरदस्त तूफान है, जिसने मेरे यौवन की नाव को उलटा दिया। जिसने मेरे दिल की किश्ती को डुबो दिया। जिसने मेरे जीवन की नाव को ऐसी धारा पर पहुंचा दिया, जहाँ से वापसी की, लौट आने की, प्रतिध्वनि की कोई गुंजाइश नहीं !

यह दुनिया भी कैसी-कैसी क़यामतें अपने अन्दर छिपाए रखती है ? सनोबर की यह प्रलय उठाने वाली जवानी ! मआज़-अल्लाह ! अब इसका यह हाल है तो आगे चलकर यह क्या होगी ?

अब उसके पपोटे भारी पड़ने लगे थे। पलकें बंद होती जा रही थीं। नींद की रूठी हुई देवी उसकी आँखों में समाई जा रही थी। वह सो गया।

२२

शाकिर से मिलने आज मसऊद फिर आया था। दोनों बाहर के कमरे में बैठे हुए पूरी बेतकल्लुफ़ी से बातें कर रहे थे। मसऊद ने कहा—

"कहो भई, क्या हाल है तुम्हारी ज़हरा का ?"

"मैं क्या जानूँ ?"

"अब तक खटपट है तुम दोनों में ?"

"खटपट नहीं, सम्बन्ध-विच्छेद !"

"रज़िया का क्या हाल है ?"

"ठीक है।"

"ले ली ज़हरा की जगह रज़िया ने ?"

"अमां छोड़ो इन बातों को।"

"रज़िया की चर्चा से बिदकते क्यों हो ? अच्छा छोड़ दी इसकी चर्चा। यह तो बताओ, ज़हरा का मकान कब तक खाली रहेगा ?"

"तुम्हें क्या ?"

"बताओ, तो।"

"भई, मुझे बिना मतलब की खुशामद पसंद नहीं। वह ऐंठती गई, खिंचती गई, दूर होती गई,। मुझसे जितना हो सका, पीछा किया, परन्तु वह इतनी दूर हो गई कि मैंने तंग आकर पीछा करना छोड़ दिया।"

"अच्छा किया। एक बात पूछूँ ?"

"अवश्य पूछो।"

"तो मैं समझ लूँ कि तुमने तौबा कर ली।"

"यह तो जनाब की खुश-फहमी है।"

"तो किसी और को ढूंढ लिया ?"

"और क्या—तुम न सही और सही, और नहीं, और सही !"

"अब कहाँ आशियाना है आपका ?"

"यासमीन के यहाँ ?"

"ओ हो, समझ गया। वही जो महाराज विकरमपुर की गायिका थी। वहां से भागकर यहाँ आ गई और यहाँ आकर उसने अपना डेरा जमा लिया।"

"खूब समझे। वही।"

"कैसी गुज़र रही है ?"

बहुत खूब। न वह ज़हरा की सी दार्शिनिक बातें हैं, न वह बाल की खाल उतारती है। वह है और मैं हूँ। मैं हूँ और वह है। सौंदर्य है और प्रेम है, प्रेम है और सौंदर्य है। वह साकार मेरे लिए तैयार, और मैं साकार उसके लिए। यही मज़ा है प्रेम का और मुहब्बत का !"

मसऊद चुपचाप सुनता रहा।

शाकिर ने बात का सिलसिला जारी रखते हुए कहा—

"मुझे उन स्त्रियों से बड़ी घृणा है, जो योग्य बनती हैं। दर्शन छांटती हैं। मैं तो समर्पण चाहता हूँ। वकीलों और बैरिस्टरों-की-सी बहस नहीं चाहता। ज़हरा से जब तक सम्बन्ध था, रज़िया का स्थान भी मेरे दिल में था, परन्तु जब से यासमीन का इस दिल पर कबज़ा हुआ है, किसीके लिए कोई स्थान शेष नहीं रह गया है।"

फिर रज़िया को आज़ाद क्यों नहीं कर देते ? सच तो कह रहा था मनसूर, न हटते हो, न रास्ता देते हो !"

"मनसूर रज़िया को भूल भी चुका। वह ठहरा एक शराबी-स्वभाव का। जिस ज़ोर-शोर से रज़िया के प्रति प्रेम की घोषणा की थी, उसकी बे-रुखी

को देखकर, वैसे ही डंके की चोट से वह उसके प्रेम से अधिकार-मुक्त भी हो गया ।"

"और हाशिम ?"

"हूँ ! हाशिम ? भाग गया मैदान छोड़ के ।"

"वही रजिया की बे-रुखी के कारण ?"

"हाँ, और क्या ?"

"खूब पुरुस्कार दे रहे हो तुम रजिया को ।"

"यही तो संसार की रीति है । हाशिम रज़िया को चाहता है, परन्तु वह उससे प्रेम न कर सकी । रज़िया मुझे चाहती थी, परन्तु मैं उससे प्रेम न कर सका । मैं ज़हरा को चाहता था, परन्तु उसने मुझे ठुकरा दिया ।"

"और यासमीन ?

"अब तक तो खूब निभे चली जा रही है । आकबत की खबर खुदा जाने !"

"वह भी तुम्हें चाहती है ?"

"बहुत अधिक ।"

"और तुम ?"

"मैं तो इश्क करता हूं उससे ?"

"तो यहाँ तुम्हारी कहावत ग़लत हो गई ।"

"कौनसी कहावत ?"

"यही की दो प्रेम करने वाले एक हो जाँय, ऐसा कम होता है ।"

"अमां यार, हर कहावत में एक-आध झूठ भी हो सकती है । तुम भी यों ही रहे ।"

यह कहकर शाकिर हँसने लगा । मसऊद ने भी एक ज़ोर का कहकहा लगाया, जो शाकिर की हँसी में गुम हो गया ।

२३

कालेज की रैसिस में रोज की तरह सुरैया और शाहद की मुलाक़ात हुई। वह सौन्दर्य और बाँकपन का चित्र बनी हुई, शाहद के निकट आई। उसने उसे देखा और न जाने किस दुनियाँ में खो गया। सुरैया उसकी बेखुदी का जोश देखकर शर्मा गई।

उसने कहा—

"बुरी दृष्टि वाले हो तुम ! मुझे घूर क्यों रहे हो ?"

शाहद इतना व्यस्त था कि मूर्ति बना खड़ा रहा। उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

सुरैया मुस्कराती हुई आगे बढ़ी और धीरे से शाहद को कहने लगी—

"याद है कल की बात ? कल का वायदा ?"

"हाँ, याद है। तुम्हारी शादी है न रईसे आज़म से।"

"हाँ, देखो...आना ज़रूर।"

"न भई, मैं नहीं आता।"

"वायदा जो किया था ? भूल गये ?"

"भूला नहीं, परन्तु मुझे डर लगता है।"

शाहद भी हंसने लगा और सुरैया भी मुस्करा दी।

कहने लगी, "बुजदिल कहीं के।"

"मेरा दिल तो स्त्रियों से भी अधिक कोमल है।"

"सच कहती हूँ, स्त्रियों का दिल भी तुमसे मजबूत होगा। मुझ ही को तो देख लो ना ?"

"देख तो रहा हूँ, आँख भी नहीं ठहरती। क्या शेर कह गया है, शायर–

वह हुस्न नहीं, नामे-खुदा, और ही कुछ है।
अन्दाज़ निराला है, अदा और ही कुछ है॥

"कविता बाद में करना। आना ज़रूर, नहीं तो लड़ाई हो जाएगी।"

"अब ज़रूर आऊंगा। निश्चिन्त रहो।"

इस बात-चीत के पश्चात् बसंत की भांति अपना प्रभाव और अपनी सुगंधि फैलाकर वह दूसरी ओर चली गई और शाहद अपनी क्लास में आ बैठा।

दूसरे दिन शाकिर के घर एक धूम मची हुई थी। आज सुरैया का विवाह था। दूर-दूर से सम्बन्धी इसमें शामिल होने के लिए आ रहे थे। बारात के दुल्हा नवाब रशीद महमूद अपने लाव-लशकर समेत पहुंच चुके थे। इस शादी के प्रबन्धों में शाकिर और मनसूर बराबर का भाग ले रहे थे। सुरैया दोनों भाइयों की लाड़ली और चहेती थी। जनान-खाना मेहमान स्त्रियों से और मर्दाना मेहमान मर्दों से भरा हुआ था।

घर में सुरैया दुल्हन बनाई जा रही थी। डूमनियां और मीरासनें गा रहीं थीं। ढोलक बज रही थी। सुरैया की समायु लड़कियाँ उसके गिर्द दायरा बनाए बैठी थीं। वह ऐसी मालूम हो रही थी, जैसे तारों के जमघट में चांद चाँद की रौशनी तारों को चांद बना देती है। यही हाल इस सभा का था। सुरैया के सौंदर्य और बाँकपन ने सखियों और सहेलियों के सौन्दर्य को चांद बना दिया था। सनोबर सुरैया की मुंह लगी थी। वह भी बढ़-बढ़ कर काम काज में हिस्सा ले रही थी।

सुरैया बड़ी दिलचस्पी और व्यस्तता से अपने को दुल्हन बनवा रही थी। कोई इसकी चोटी गूंथ रही थी। कोई उसे आईना दिखा रही थी। कोई उसे ईर्ष्या भरी दृष्टि से देख रही थी और जल रही थी। यह वास्तविक सहेलियों की सभा थी। परस्पर चुहलें भी हो रही थीं।

रज़िया ने कहा—

"अब काहे को याद करेंगी सुरैया बी हमें।"

शाहजहान बोली—

"हाँ भई, जिसे याद करेंगी, करेंगी। हम अब किस गिनती-पंक्ति में हैं ?"

रज़िया ने कहा—

"तो बन जाओ तुम रसीद। फिर सुरैया तुम्हारे ही पास रहेंगी उमरभर !"

शाहजहान बोली—

"अच्छा भई, यूंही सही।"

यह कहकर बाहर निकली। सनोबर के कान में कुछ बात कही और सीधी मनसूर के कमरे में चली गई। थोड़ी देर के याद वह रशीद महमूद बनकर निकली। चूड़ीदार पायजामा,बढ़िया शेरवानी, सिर पर किश्ती की शक्ल की टोपी। वह आई और आते ही उसने कहा—

"हट जाओ तुम मेरी पत्नी के पास से !"

किसी की जान गई, आप की अदा ठहरी ! वह तो पसीने से नहा रही है। उसका दम घुटा जा रहा है और तुम्हें चुहलें सूझी हुई हैं।"

यह कहकर शाहजहान ने रकिया को पीछे हटाया और स्वयं जाकर सुरैया के घुटनों से घुटना मिलाकर बैठ गई। रकिया और रफ़िया हंसने लगीं। सुरैया भी खिलखिला दी।

इतने में शोर हुआ कि काज़ीजी साहब तशरीफ़ लाते हैं। अब सुरैया का कमरा केवल उसकी सहेलियों का ही नहीं, बल्कि घर की भी स्त्रियों का खुला दरबार बन गया। सब स्त्रियाँ काज़ी साहब के बाल और सुरैया की हाँ सुनने के लिए इस संक्षिप्त से कमरे पर टूट पड़ी थीं। सुरैया और उसकी कुछ सहेलियां यद्यपि पर्दा नहीं करतीं थीं, तथापि उसकी मां, भौजाई और घर की दूसरी स्त्रियाँ सख्त पर्दा करती थीं। आज चूंकि शादी का दिन था और बहुत से सम्बन्धी आए हुए थे, इसलिए पर्दे का प्रबन्ध अधिक कड़ा था।

बहरहाल काज़ी साहब, शाकिर और दूसरे सम्बन्धियों के साथ तशरीफ़ लाए। सुरैया जिस कमरे में थी, उसके द्वार पर आकर खड़े हो गए। उन्होंने पूरे इसलामी ढंग से अपने मुल्लाओं के से स्वर में पूछा—

"सुरैया बेगम, मैंने आपका निकाह एक लाख रुपया मुहर के ऐवज़ जनाब नवाब रशीद महमूद के साथ बाँधा। क्या आपको क़बूल है ?"

एकाएक सुरैया का स्वर बुलंद हुआ—

'हरगिज़ नहीं।"

काज़ी साहब इस प्रकार चौंक पड़े, जैसे भूल से अंगारे पर बैठ गए हों। शाकिर के मुख का रंग उड़ गया। अम्मीजान के काटो, तो लहू नहीं बदन में। रज़िया को जैसे साँप सूंघ गया। एक सहेली ने दूसरी को, दूसरी ने तीसरी को, तीसरी ने चौथी को बारी-बारी देखना आरम्भ किया। सारे कमरे पर चुप्पी छा गई।

काज़ी साहब ने जो कुछ सुना था, उसे अपने कानों का धोखा समझ कर, बड़ी मुश्किल से अपने होश फिर इकट्ठे किए। एक बार फिर अच्छी तरह खंखारकर उन्होंने कहा—

"सुरैया बेगम, मैंने आपका निकाह एक लाख रुपया मुहर के ऐवज़ में जनाब नवाब रशीद महमूद साहब के साथ बाँधा। क्या आपको क़बूल है ?"

अब के सुरैया ने ज़रा कटुता से कहा—

"काज़ी साहब, आप कितनी बार मुझसे पूछेंगे ? कह तो रही हूँ कि नहीं मन्ज़ूर है आपके नवाब साहब के साथ निकाह ! लाइये कलम दवात, लिखकर दे दूं ताकि सनद रहे और आवश्यकता के समय काम आए।

कमरे पर अब भी चुप्पी छाई हुई थी। काज़ी साहब ने खामोशी को तोड़ा—

"क्या मामला है, शाकिर मियाँ ?"

शाकिर मियाँ के स्वयं होश गुम थे। क्या उत्तर देते ? इतने में मनसूर आ गया। उसने देखा कि सब लोग गम्भीर सी शक्लें बनाए, मुर्दों की तरह खड़े हैं। आंखें चल रही हैं ज़बान सब की बंद है।

उसने काज़ी सहाब से पूछा—

"क्या बात है काजीजी ?"

"कुछ नहीं !"

"कुछ तो ज़रूर है।"

"हाँ, सहाबजादी शादी से इन्कार कर रहीं हैं।"

"सुरैया नवाब साहब से शादी नहीं करना चाहती ? इन्कार करती है ?"

"जी हाँ।"

"तो क़िस्सा खत्म। चिन्ता काहे की ! चलिए बाहर। शादी और निकाह तो खुशी का सौदा है।"

यह कहकर वह बाहर जाने के लिए आगे बढ़ा। आगे-आगे वह, पीछे-पीछे शाकिर, काज़ी साहब और अन्य लोग।

मनसूर ने आते ही नवाब रशीद महमूद को सम्बोधन करते हुए कहा—

"नवाब साहब, सुरैया आपसे शादी नहीं करना चाहती !"

यह सुनकर यूँ लगा, जैसे उन पर बिजली-सी गिर पड़ी। वह सुन्न-से हो गए। एक मिनट तक वह और अन्य लोग चुपचाप खड़े रहे, फिर उन्होंने अपने होश इकट्ठे करके कहा—

"क्या फ़र्माया आपने ?"

"सुरैया आपसे शादी नहीं करना चाहती !"

"तो फिर आप लोगों ने मुझे बुलाया क्यों ?"

"यह भाई साहब से पूछिए।"

यह कहकर वह खामोश हो गया। सब लोगों पर एक विचित्र प्रकार की सोगवारी-सी छाई हुई थी।

थोड़े ही समय में यह समाचार घर के कोने-कोने और फिर घर से नगर के बाज़ारों और गलियों में फैल गया। लोग शोक प्रकट करने और हौसला देने की ग़र्ज़ से शाकिर और मनसूर के पास आने लगे। शाकिर का जी चाह रहा था कि धरती फट जाए और वह उसमें समा जाए। इतनी बड़ी बदनामी और अपमान देखने के लिए वह जीवित ही क्यों रहा ?

और इधर नवाब साहब का पारा चढ़ा हुआ था। वह जो जी में आ रहा था, कहे जा रहे थे। उनकी खफ़गी ठीक थी। इसलिए उनकी बातों को भी घर के लोग बड़े सबर और खामोशी से सुन रहे थे। नवाब साहब ने आज्ञा दी कि तुरन्त ही असबाब बँधे। सामान तुरन्त बँध गया और वह बिना यह मालूम किए कि गाड़ी का समय भी है या नहीं, अपने नौकरों-चाकरों और सगे-सम्बधियों के साथ स्टेशन रवाना हो गए।

घर पर एक विचित्र सी मातम की चुप्पी छाई थी। वह चहल-पहल, वह रौनक, वह गहमा-गहमी रुख़सत हो चुकी थी। न ढोलक बज रही थी, न मुजरा हो रहा था। न मीरासनें गा रही थीं, न डूमनियां। न कोई इनाम के लिए झगड़ रहा था, न कोई 'हक' माँग रहा था। अच्छे से अच्छा खाना आज अधिक मात्रा में पका था, परन्तु सबका जी खाने से भरा हुआ था। वह योंही पड़ा था। चूहों और बिल्लियों की दावत आम थी।

रात भीग गई। बहुत सी अतिथि स्त्रियाँ रुख़सत हो गईं, सुरैया को घूरती हुई और होटों में ही बड़बड़ाती हुई। जो स्त्रियाँ बहुत दूर से यात्रा करके आई थीं, वह गुम-सुम थीं। उन्हें न खाने की चिन्ता थी, न पीने का होश। वह भी बहुत उदासी और थकावट के साथ गईं और अपने-अपने बिस्तरों पर लेट गईं।

सबके मस्तिष्क में यह विचार चक्कर काट रहा था, कि यह क्या किया सुरैया ने ? कमबख्त ने नाक कटा दी खानदान की ! कहीं शरीफ़ लड़कियाँ ऐसा भी करती हैं ?"

रात को बारह बजे के बाद ऊपर चौबारा पर मनसूर के कमरे में हाईकोर्ट की स्पैशल ट्रिब्यूनल की सभा आरम्भ हुई। शाकिर जज था, सुरैया अपराधी, मनसूर उसका वकील, अम्मीजान और रज़िया आनरेबल ज्यूरी के मेम्बर।

भावात्मक स्वर में कांपते हुए शाकिर ने कहा—

"सुरैया, तूने हमारी नाक कटा दी ! हमें मुँह दिखाने योग्य न रखा। हमें बदनाम और ज़लील किया। क्या बिगाड़ा था, मैंने तेरा ?"

मनसूर ने कुछ बोलने का इरादा किया था कि सुरैया ने कहा—

"भाईजान, यह आप क्या कह रहे हैं ? क्या किया है मैंने ?"

"कुछ नहीं किया तूने ? तूने हमें भरी आदरी में जलील नहीं किया ?"

"कदापि नहीं !"

"तूने शादी से इन्कार नहीं किया ?"

"तो ?"

"यह आज तक किसी शरीफ़ घराने में हुआ है ?"

"शरीफ़ घरानों में बहुत कुछ होता है भाईजान। उसकी चर्चा आप न कीजिए। बाकी में इस बात को मानती हूँ कि मैंने इन्कार किया। और इसका शरह अथवा कानून की रू से मुझे अधिकार था।"

"हमें बदनाम करने का ?"

"जी नहीं, शादी से इन्कार करने का। मैं बुद्धिमान हूं, पढ़ी-लिखी हूँ, बालिग हूं। मुझे शरह भी इस बात की आज्ञा देती है और कानून भी कि जिससे जी चाहे, शादी करूं, और जिससे न जी चाहे, इन्कार कर दूं।"

अम्मीजान बोलीं—

"तो पहले तूने क्यों नहीं बता दिया हमें ?"

"पूछा था आपने मुझसे ? जब मुझसे पूछा गया, मैंने अपने दिल की बात बता दी।"

अम्मीजान फिर बोलीं—

"नोज, ऐसी लड़की हो किसीकी ! ऐसी लड़की पैदा होते ही मर जाए तो अच्छा है।"

सुरैया ने कोई उत्तर नहीं दिया।

मनसूर बोला—

"लो आखिर इसमें गजब क्या हो गया ? सुरैया आप अपने भले-बुरे को समझती है। नहीं थे इसे नवाब साहब पसंद, इसने इन्कार कर दिया। जीवन इसे व्यतीत करना था नवाब साहब के हरम में, आपको या मुझे नहीं !"

अम्मीजान फिर बोलीं—

"तू न बोल मनसूर ! सारी आग तेरी लगाई हुई है। मश्रा नालायक ! न भाई का, न बहन का ! मैं तेरी बजाए साँप जनती तो अच्छा था। डूब मरने को जी चाहता है मेरा !"

फिर उन्होंने सुरैया से सम्बोधन किया। कहने लगीं—

"तेरी जगह कोई शरीफ़ लड़की होती, तो खानदान की आन, मां के नाम और भाई की लाज का पर्दा रखती। कोई लंगड़ा-लूला होता तो उसके साथ भी जीवन बिता देती !"

सुरैया ने बड़ी सादगी से कहा—

"अम्मीजान, आप यह कैसी बातें कर रही हैं ? एक तो मैं झूठ-मूठ की बातों को मानती नहीं। खानदान की आन, माँ का नाम, भाई की लाज, यह सब दूसरी बातें हैं। पहली चीज मेरी पसंद है और मर्जी है। दूसरे मेरी तो शादी भी हो चुकी है ! मैं अपने पति के जीवन में दूसरा निकाह कैसे कर लेती ? यह इन्साफ़ है ?"

यह शब्द बम के गोले की तरह सब पर गिरे।

अम्मीजान ने सिर पीट लिया। रोने लगीं।

"क्या कह रही है तू अभागन ?"

शाकिर ने कहा—

"मार डालूँगा मैं तुझे !"

रज़िया ने कहा—

"बड़ा दिल गुर्दा है तुम्हारा !"

सुरैया सबकी सुनती रही। फिर उसने कहा—

"मैं जो कुछ कह रही हूँ, वह सच है। मैं शादी की एन्ट्री रजिस्ट्रार के दफ़्तर में करा चुकी हूँ। मैं मरने से नहीं डरती। घुल-घुलकर मरने से मैं यही बहतर समझती हूं कि एक बार कोई मेरा गला घोंट दे, या पिस्तौल मार दे !"

शाकिर ने कहा—

"किसीसे शादी की तूने ?"

"शाहद से !"

यह सुनते ही करीब था, कि शाकिर के दिल की धड़कन बंद हो जाए उसके मुँह पर एक रंग आता था, एक जाता। उसने कड़ककर पूछा—

"कौन शाहद ?"

"वही जो मेरे साथ कालेज में पढ़ता है।"

और अधिक गर्जकर शाकिर ने कहा—

"तू जानती है, वह कौन है ? किस परिवार का सदस्य है ? कैसा व्यक्ति है ?"

"यह मैं बिल्कुल नहीं जानती कि वह कौन है और किस परिवार का सदस्य है। अलबत्ता यह मैं जानती हूं कि वह कैसा व्यक्ति है। बहुत अच्छा व्यक्ति है वह !"

अब के फिर शाकिर ने चीखकर कहा—

"ओ परिवार के शत्रु ! चुप ! वह शाहद है, जहरा का भाई, तवायफ़ का बच्चा !"

"सम्भव है आपकी सूचना ठीक हो। तो भी मुझे क्या ? उसकी बहन तवायफ़ है, सम्भव है उसकी माँ भी तवायफ़ हो। परन्तु वह तो तवायफ़ नहीं है। मैं खूब जानती हूं कि वह बहुतों की अपेक्षा शरीफ है।"

"यह शादी नहीं हो सकती !"

"हो भी चुकी वह तो ! "सुरैया ने बड़े हौसले और धैर्य से कहा।

"मैं उसे घर में नहीं घुसने दूंगा !"

"इस घर पर जितना अधिकार आपका है, अब उतना ही उनका भी है।

"मैं तुझे भी घर से बाहर निकाल दूंगा। एक पैसा तुझे जायदाद से नहीं मिलेगा !"

"क्यों नहीं मिलेगा ? क्या जायदाद, मकान, सामान सब मेरे बाप का नहीं है ? क्या इन चीजों में मेरा हिस्सा नहीं है ? क्या मैं अपने पिता की

छोड़ी हुई सम्पत्ति से दूर रहूँगी। यह नहीं हो सकता! मैं यह नहीं होने दूंगी! मैं अपना भाग लेकर रहूँगी। आप नहीं देंगे तो मैं अदालत का दरवाज़ा खटखटाऊंगी!"

"एक रंडी-बच्चा से शादी करते हुए तुझे लाज न आई मुर्दार!" अम्मीजान ने बड़े क्रोध से कहा।

"क्यों शर्म आती? बहुत से रंडी-बच्चे भी शरीफ़ों की सन्तान ही होते हैं। आप ही कह रही थीं, वह गुलज़ार जिसके गाने की धूम है, खान बहादुर अशरफ़ हुसैन की लड़की है। उसकी माँ रंडी थी। और हमारी सहेली रीहाना, जिसकी शादी अभी चंद दिन पहले एक डिप्टी कलक्टर से हुई है, सर अमजद अली की लड़की है। उसकी माँ रंडी थी। उसे उन्होंने घर डाल लिया था। फिर अगर शाहद भी एक रंडी का बच्चा है, तो क्या हुआ?"

सुरैया कुछ देर चुप रही, फिर उसने कहा—

"और अम्मी जान, यह तो बताइये कि रंडियों को इतने बड़े परिवारों से सम्बन्ध रखने वाले बच्चे कहाँ से मिल जाते हैं? क्या वह उन्हें घूरे पर से उठा लाती हैं। वह सैयद साहब, यह शेख साहब, वह खान बहादुर साहब, यह सेठ साहब, वह हज़रत मौलाना साहब और यह मिनिस्टर साहब, सब रंडियों के रसिया होते हैं। सब अपनी शराफत जेब में रखकर भिखारी बन कर जाते हैं। सब उनकी झोलियों में बच्चे डाल कर आते हैं। फिर इन भद्र पुरुषों के भद्र-कुमारों को वह बेचारी रंडियां क्या करें? क्या, फेंक दें उन्हें घूरे पर? यदि रंडियाँ इतनी ही बुरी हैं तो यह शरीफ़ लोग वहाँ जाते क्यों हैं?

बुरा तो लगेगा ही, परन्तु जिस शाहद का नाम लेते हुए भाई साहब इतने खफ़ा हो रहे थे, उसकी बहन ज़हरा के यहां वह सदैव जाते हैं। उसके लिए उन्होंने जायदाद तबाह की, पत्नी से बेगाना हुए, बच्चा का मुँह न देखा, खानदान की आन, माँ के नाम, और बहन की लाज का विचार न किया। वह सब कुछ करने के बाद भी शरीफ़ हैं, और शाहद जो इन्सान के

रूप में देवता है। जितना सुन्दर है, उससे कहीं अधिक ही अच्छे चरित्र वाला है, इस योग्य भी नहीं 'कि भाई-जान की पापी बहन का पति ही बन सके ?

"आखिर यह कौनसा उसूल है ? मुझे समझा दीजिए, मैं मान लूंगी।"

"ए चल चल, तुझे कौन समझाए ! कैसी कैंची की तरह जबान चल रही है। जी चाहता है, ताला लगा दूं मुंह पर !"

बिना किसी निर्णय पर पहुँचे हुए हाई-कोर्ट उठ गई। पहले रजिया खिसकी, फिर अम्मी जान उठीं। फिर मनसूर अपनी पुस्तक पढ़ने लगा।

शाकिर उठा और बाहर चला गया। सुरैया अपने स्थान पर डटी बैठी थी।

जब वह जाने लगी, तो मनसूर ने उसकी ओर देखा। स्नेह-भाव से कहा—

"सुरैया, मैं तेरे साथ हूं !"

"मुझे भी भैया, तुमसे यही आशा थी।"

यह कहकर उसने दुपट्टा गले में डाला और नीचे चली गई।

२४

हाशिम की दशा दिन-प्रतिदिन बिगड़ती चली जा रही थी। विचित्र पागल-सा हो गया था। वह कई-कई दिन कमला के कोठे पर न जाता। हर समय शराब के नशे में मस्त रहता था। और जब जी चाहता, फिर कमला के यहाँ जाने लगता। कई दिन तो दिन में दो-दो बार भी पहुंच जाता था। वह जब जाता था, कमला की झोली नोटों से भर देता था।

कमला उसकी हमदर्द हो गई थी। इस दशा में वह उसे देखकर बहुत कुढ़ती थी। वह जान गई थी कि हाशिम का मन घायल है। इसलिए अपने व्यवहार से उसके घायल मन पर फाहा रखने की कोशिश किया करती थी।

इस वास्तविकता को हाशिम भी अनुभव करने लगा था। जब उसके मन का घाव बार-बार रिसने लगता, तो वह दौड़-दौड़कर कमला के पास आता था। वह अपनी बातों, अपनी सेवा, और अपनी बेलौसी का फाहा उसके घायल मन पर रखती, वह कुछ सुख-सा अनुभव करने लगता। दिल के छाले की तपश कुछ कम लगने लगती। वह आग-सी जो भड़क रही थी उसके सीने में, उसके शोले मन्द पड़ जाते। वह ग़म से चूर होकर, सदमे से निढाल होकर, कमला के पास इस तरह आता था, जैसे भूख से बेहाल बच्चा माँ की गोद में पहुँच जाए और हुमक-हुमक कर उसका दूध पीने लगे।

वह जब निराशा के दौरे से और अपनी असफलता के ग़म से अपने आप को भूल जाता था, तो उसके पग अपने आप ही कमला के घर की ओर उठने लगते थे। उसे विश्वास था कि मैं वहाँ पहुँचा और दिल की तपश कम

हुई। वह दर्द जो अन्दर ही अन्दर खाए जा रहा है, वहाँ पहुँचते ही थम जाएगा।

सिर का दर्द असप्रीन खाते ही गुम हो जाएगा, परन्तु जाएगा नहीं ! जब तक असप्रीन का प्रभाव रहेगा, दर्द दुबका पड़ा रहेगा, जब इसका प्रभाव खत्म हो जायेगा, वह फिर उसी प्रकार दबोच लेगा, जिस प्रकार शेर बकरी को दबोच लेता है।

कमला उसके दर्द का वक्ती इलाज थी। जब तक वह उसके दामन से लिपटा रहता था, उसका दर्द, उसकी तपश, उसकी टीस रुकी-रुकी रहती थी। जब वह वहाँ से हटता था, तो दर्द उसके पास लौट आता था। टीस फिर महसूस होने लगती थी। जलन फिर मन के कोने-कोने में अपना घर बना लेती थी।

एक दिन वह कमला के पास कई दिन बाद आया। मुख उतरा हुआ, कपड़े मैले, सिर के बाल उलझे हुए, जूता फटा हुआ। कमला उसे देखते ही उठ खड़ी हुई। द्वार रोज़ की तरह अन्दर से बन्द कर लिया और उससे बातें करने लगी।

"आज तो बहुत दुखी दिखाई दे रहे हो, बाबूजी !"

"हाँ, है कुछ ऐसी ही बात !"

"मुझे नहीं बताओगे ?"

"क्या करोगी सुनकर तुम ?"

"कुछ दिल ही हलका हो जाएगा।"

"जो रुपये लाया था, सब खर्च हो चुके। मुन्शी को दो तार भेज चुका हूँ, अब तक उसने रुपया नहीं भेजा। न मालूम क्या बात है। होटल का बिल भी चढ़ गया है और रामू को देने के लिए तुम्हारी फीस भी नहीं है। उसके सौ रुपये फीस के मेरे ऊपर चढ़ चुके हैं। अब सख्ती से माँगने लगा है। सोचता हूँ कहीं और चला जाऊँ।"

"मैं तो नहीं जाने दूँगी बाबूजी।"

"बे पैसा-कौड़ी यहाँ रहूंगा कैसे ?"

"मुझसे ले लो।"

"(हंसकर) तुम्हारे पास क्या है ?

"अभी लाई।"

यह कहकर वह उठी। बग़ल की कोठरी में गई। वहाँ एक चारपाई बिछी हुई थी। उसके पाए तले, उसने एक पुड़िया रख दी थी। तुरन्त वही पुड़िया उठा लाई और हाशिम के सामने रख दी।

"यह लो।"

हाशिम ने पुड़िया खोली, सौ-सौ के तीस नोट और दस-दस के सौ-डेढ़-सौ नोट निकल आए उसमें से।

हाशिम को बड़ा अचम्भा हुआ। उसने कहा—

"यह तो कई हज़ार रुपये हैं।"

"आप ही के तो हैं।"

हाशिम को याद आ गया। सौ-सौ के और दस-दस के नोट वही तो न्यौछावर करता था इस पर। उसने कहा—

"तुमने इनमें से कुछ ख़र्च नहीं किया ?"

"नहीं !"

क्यों ?"

"ले जाइये यह रुपये। कर्ज़ अदा कर दीजिए सब, परन्तु—

"हाँ, हाँ, कहो।"

"अब कहीं जाने का नाम न लीजिए।"

"क्या तुम मुझे चाहती हो ?"

कमला ने गर्दन झुका ली। उसकी आँखों से मोटे-मोटे आँसू गिरने लगे। हाशिम ने कहा—

"कमला, तुम ऐसे आदमी से प्रेम करती हो, जो किसीसे प्रेम नहीं

कर सकता। जो सबको भूल चुका है। जो किसीका नहीं हो सकता। जो किसीको खुश नहीं रख सकता। जिससे कोई भी खुश नहीं रह सकता!"

यह कहते-कहते हाशिम की आँखें भी उबलता चश्मा बन गईं। कमला ने अपने आंचल से उसके आंसू पोंछे, और कहा—

"अरे आप रो रहे हैं? मत रोइये!" यह कहकर वह स्वयं भी रोने लगी। उसकी बांह पर सिर रखकर वह हिचकियाँ ले रही थी और हाशिम उसके सिर पर हाथ फेर रहा था, उसके मुंह को अपनी उँगलियों से टटोल रहा था।

बड़ी देर तक यही हालत रही। फिर हाशिम ने कहा—

"कमला, मैं अब जाता हूँ, फिर आऊँगा!"

"मैं एक बात कहूँ?"

"कहो, अवश्य कहो!"

"मुझे मोल ले लीजिए, रामू से।"

"मोल ले लूँ? तुम्हें?"

"हाँ, मुझे।"

"बेच डालेगा रामू तुम्हें?"

"हाँ, वह कह रहा था कि कोई अच्छा गाहक मिल जाए तो कमला को बेचकर नया माल लाऊँगा।"

"तुम्हें मोल लेकर क्या करूँगा मैं?"

"मैं आपकी सेवा करूँगी। आपका बिस्तर बिछाऊंगी। आपके लिए खाना पकाऊंगी। आपके पांव दाबूंगी।"

"(हँसकर) इतने सारे काम कर डालोगी तुम?"

"हाँ।"

"क्या दाम लेगा रामू?"

"हजार रुपया। और क्या?"

"तो मैं आज ही सौदा किए देता हूँ।"

कमला के कमरे से हाशिम बाहर निकला तो रामू से मुलाकात हुई। वह अपनी मूछों को मक्खन का नाश्ता करा रहा था। पूर्व इसके कि रामू कुछ कहे, हाशिम उसके पास पहुँच गया।

"सौदा करोगे रामू?"

"क्या मतलब आपका?"

"मतलब यह कि हमारा दिल कमला से मिल गया है। तुम बेच डालो, हम ले लें।"

"अनमोल मोती है, बाबू साहब वह!"

"यह तो मैं भी जानता हूँ, बताओ, क्या लोगे उसका?"

"पूरे दो हज़ार।"

"हम तो भई पूरा एक हज़ार देंगे। यदि मन्ज़ूर हो, तो यह लो अपने दाम।"

यह कहकर सौ-सौ के दस नोट उसने रामू के सामने रख दिए। रामू ने अपनी माँ की ओर देखा। उसने आँखों-आँखों में कहा, करले सौदा। यह माल पुराना हो चुका। कोई और इतने दाम भी नहीं देगा तुझे। उसने नोट जेब में रखे और कमला को आवाज़ दी।

कमला आई। उसने कहा—

"कहा-सुना माफ़ करना। आज से तुम बाबूजी की हो। जाओ इनके साथ।"

कमला एक गाय की तरह नीलाम हुई और अपने नए मालिक के साथ रवाना हो गई।

हाशिम कमला को लेकर होटल आया। वहाँ तार वाला उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसने फार्म पर हस्ताक्षर कराए और पाँच हज़ार रुपये गिन दिये। हाशिम ने नोट अपनी जेब में रखे और कमला को लेकर अपने कमरे में आ गया।

कमला से हाशिम ने कहा—

"बड़ी भाग्यवती निकलीं, तुम कमला।"

"क्यों, बाबूजी ?"

"कितने दिन से मैं रुपयों के लिए परेशान हो रहा था। आज तुमने भी मेरी झोली भर दी और यह देखो, मुन्शीजी ने भी रुपये भेज दिए।

कमला चुपचाप सुनती रही।

हाशिम ने फिर कहा—

"कमला, तुमने मुझे ग़लत चुना है। मैं तुम्हें सुख नहीं दे सकूँगा। मेरे दिल की दुनिया उजड़ चुकी। अब वह आबाद नहीं हो सकती। मेरी चाह की लहलहाती खेती झुलस गई। अब वह फिर हरी नहीं होगी। ऐसे उजड़े घर में रहकर तुम क्या करोगी ?

"बाबूजी, मुझे सुख नहीं चाहिए। मेरा सबसे बड़ा सुख यह है कि आपको कुछ सुख मुझसे मिल जाए। मैं आपके पास कोई आशा लेकर नहीं आई हूँ। आपकी यह भूल है, जो आप ऐसा समझ रहे हैं।"

हाशिम ने कहा—

"कमला, क्षमा करना। मैं तुम्हें ग़लत समझा था। तुम तो देवी हो। हम तुम आज से भाई-बहन की तरह रहेंगे।"

कमला का मुख दमक उठा। कहने लगी—

"हाँ, बिल्कुल भाई-बहन की तरह !"

२५

सुरैया सुबह को देर तक बिस्तर पर पड़ी रही। उसे कुछ-कुछ बुखार था। बदन टूट रहा था। जमाहियाँ आ रही थीं। पहले उसका पिंडा भी फीका हो जाता था तो घर डाक्टरों और हकीमों का अजायबघर बन जाता था, परन्तु आज उसकी बीमारी कतई महत्व न पा सकी। अलबत्ता सनोबर घंटों उसके पास बैठी रही। रज़िया ने भी पूछा। उसने हकीमों की तरह नब्ज़ देखी। माथा टटोला और कुछ घरेलू दवाएँ भी प्रयोग कराईं।

अम्मीजान को भी यह समाचार सनोबर ने पहुँचा दिया। वह क्रोध के मारे उसके कमरे में झांकी भी नहीं, अलबत्ता सनोबर को सख्त ताकीद की कि पल-पल के समाचार लाकर देती रहे। वह सुन चुकी थीं कि सुरैया को यूंही सी हरारत है, फिर भी उनका दिल डूबा जा रहा था। किसी काम में उनकी तबीयत न लगती थी।

दूसरे दिन बुखार तो उतर गया परन्तु कमजोरी इतनी अधिक हो चुकी थी कि वह कालेज नहीं जा सकी। तीन-चार दिन के बाद वह लोट-पोटकर बिल्कुल अच्छी हो गई।

आज वह फिर कालेज जा रही थी। अम्मीजान का यह अंतिम फैसला था कि अब उसकी शिक्षा का सिलसिला तोड़ दिया जाए। शाकिर की भी यही राय थी कि उसे कालेज कदापि न जाने दिया जाय और पर्दा में बिठा दिया जाए।

परन्तु रज़िया इस फैसले के विरुद्ध थी। उसने कहा—"सुरैया जोर-ज़बरदस्ती से काबू में आने वाली लड़की नहीं है। वैधानिक रूप से बालिग हो

चुकी है। एम० ए० में पढ़ रही है। शादी की रजिस्ट्री भी करवा चुकी है। पुलिस में सूचना देने और मुकदमा करने को तैयार है। उस पर जोर किया जाएगा तो वह काबू में नहीं आएगी। मामला अधिक बढ़ जाएगा। बदनामी और अधिक होगी, और होगा वही जो वह चाहेगी। वह जायदाद में से अपना भाग भी लेगी और बैंक में जो पचास हज़ार की रकम उसके नाम पर, इस शर्त पर तय है कि जब उसकी शादी हो जाए तो उसे दे दी जाए, उसे भी वसूल कर लेगी। फिर यह भी याद रखना चाहिए कि मनसूर उसका हिमायती है। वह भी अकड़ा हुआ है और बिल्कुल उसके साथ है। सुरैया बिगड़ी तो वह भी बिगड़ जाएगा। जायदाद के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे। घर बंट जायेगा। खानदान तबाह हो जायेगा।"

"हो जाए!" अम्मीजान ने कहा—

परन्तु शाकिर के लिए यह "हो जाए" अब इतना आसान नहीं था। जायदाद में सबका हिस्सा था। मनसूर का भी और सुरैया का भी, परन्तु साझे खानदान के बड़े सदस्य के रूप में शाकिर ही कर्ता-धर्ता बना हुआ था। वही सारी आय पर लेने और खर्च करने का अधिकार रखता था। जायदाद के प्रबन्ध और देख-रेख का सारा कार्य उसीके पास था।

वह उन बातों के लिये जिन पर उसका वश नहीं चलता था, ख्वाहमख्वाह बात बढ़ाकर, अपने सीमा से बढ़े हुऐ खर्च, अपनी असीम आय आदि, से मुक्त नहीं होना चाहता था। वही शाकिर जो कल तक एक रक्त पीने वाले और क्रूर हाकिम की तरह सुरैया को डांट रहा था, इस समय रजिया की बातें सुनकर नर्म पड़ गया—

उसने कहा—

"रजिया सच कहती है। छोड़ दो सुरया को उसके हाल पर!"

अम्मीजान भी चुप हो गईं। इस भरे-पूरे घर में, जिस पर वह राज करती थीं, उनकी प्रजा में से कोई भी उनका साथ देने को तैयार नहीं था। ऐसे नाजुक अवसर बहुत कम आते थे, परन्तु जब कभी आ जाते थे तो वह 'चुप भली' का प्रयोग करती थीं।

अभी यह कानफ्रेंस हो रही थी कि सुरैया कालेज जाती दिखाई दी। शाकिर की आँखों में खून उतर आया। अम्मीजान का खून (बहुत कम था, फिर भी) खौलने लगा। बड़ी घातक आँखों से इन दोनों ने उसे देखा, परन्तु वह एक बेपरवाही के से ढंग से आँखें नीची किये निकल गई।

सुरैया कालेज पहुँची।

उसकी आँखों ने क्लास पर एक उड़ती सी निगाह डाली। शाहद अपने स्थान पर बैठा था, परन्तु बहुत खोया-खोया, मुख पीला, दुखी, गमगीन, उदास। सुरैया आई और अपने स्थान पर बैठ गई। नासिर शाहद के पास बैठा था, उसने जोर की चुटकी ली।

शाहद चौंका, उसने देखा, सुरैया आई है।

रैसिस के दौरान में दोनों की मुलाकात हुई। सुरैया खिंची-खिंची सी थी. और शाहद की आँखों में वही शौक जो सदा झलकता था, आज भी झलक रहा था। उसने एक विशेष प्रभाव के वश में होकर कहा—

"सुरैया, इतने दिन कहाँ रहीं ?"

"जहन्नुम में।"

"अरे कुछ खफा हो तुम ?"

"आपको क्या ?"

"आज तुम कैसी बातें कर रही हो ?"

"बहुत नागवार हो रही हैं यह बातें आपको ?"

"तुम्हारी हर बात मेरे सिर आंखों पर, परन्तु खफगी नहीं।"

"दिल टूट जाएगा आपका ? क्यों ?"

"हाँ, टूटा जा रहा है वह तो।"

"लेकिन दूसरों का दिल भी तो तोड़ते रहते हैं आप !"

"किसका दिल तोड़ा है मैंने ?"

"आपने वायदा किया था। फिर क्यों नहीं आए मेरी शादी पर ?"

"इसका गिला तो मैं स्वयं तुमसे करने वाला था।"

"मुझसे गिला करने वाले थे आप ? काहे का ?"

"तय हो गया था कि शादी में आऊंगा मैं। कहो, हाँ।"

"हाँ, तय हुआ था वह।"

"तुमने अपने घर का पता बताया था मुझे ?"

"अरे !"

यह कहकर सुरैया मुस्करा दी। फिर उसने वार किया—

'आपने क्यों नहीं पूछ लिया था मुझसे ?''

मैं पूछने वाला था, परन्तु तुम्हारी बातों में ऐसा खोया गया कि बिल्कुल न पूछ सका। वरना इस बारात का वास्तविक दुल्हा तो मैं था। मैं ही न आता भला ?"

अब सुरैया हंसी। शाहद भी मुस्कराने लगा। पराएपन का स्थान फिर अपनेपन ने ले लिया। बेतकल्लुफी फिर बेरुखी का स्थान लेती जा रही थी।

सुरैया ने कहा—

"पहले मैं जाती हूँ, रानी बाग ! थोड़ी देर के बाद आप वहाँ आ जाइये। इस समय दोपर को वहाँ एकाकीपन होता है। बैठकर तसल्ली से बातें करेंगे। बहुत सी बातें करनी हैं।"

दोनों अलग-अलग हो गए। पहले सुरैया रवाना हुई, थोड़ी देर के बाद शाहद। थोड़े-थोड़े वक्फ़े के बाद दोनों वहाँ पहुंच गए। उसी अकेले झुण्ड में, जहाँ इससे पहले भी एक दिन वह बैठे हुए बातें कर रहे थे।

"हाँ भई, पहले अपनी शादी का किस्सा सुना डालो।" शाहद ने मुस्कराते हुए कहा—

"क्या कीजिएगा सुनकर ? बड़ी दुखभरी कहानी है वह।"

"क्यों, क्या हुआ ?"

"(ठंडा साँस लेकर) वही हुआ जो न होना चाहिए था।"

"शादी कर दी गई तुम्हारी ?"

"हाँ।"

"कुछ न हो सका तुमसे ?"

"क्या होता ? मैं अकेली एक ओर, सारा घर एक ओर। आप भी तो ऐसे नाजुक अवसर पर अपना मुंह छिपा गए।"

शाहद पर जैसे ग़शी का दौरा पड़ गया हो। लगता था, वह बेहोश हुआ ही चाहता है। सुरैया का गम्भीर मुख फिर फूल की तरह खिल उठा। उसने आँखों में आंखें डालकर, मुस्करा-मुस्कराकर, आदि से अन्त तक, महाभारत की लड़ाई का एक-एक पन्ना उलटना शुरू कर दिया। शाहद चुपचाप सुन रहा था। हैरान, आश्चर्यचकित, दंग।

सुरैया अपनी कहानी सुना रही थी। शाहद की आँखें सुरैया के मुख पर गड़ी थीं। कान कहानी सुन रहे थे, और दिमाग़ सोच रहा था—आफ़रीन है इस स्त्री की हिम्मत पर! इसने वह कार्य कर दिखाया जो बड़े-बड़े मर्द नहीं कर सकते। ऐसे चरित्र और ऐसे दिल की स्त्रियाँ यह धरती भी दिन-प्रति-दिन पैदा नहीं करती। शताब्दियों में पैदा होती है ऐसी एक आदम की बेटी!

सुरैया की कहानी ख़त्म हुई। शाहद चुपचाप बैठा था। उसकी आँखें सुरैया के मुख पर गड़ी थीं। उसके मुख पर शाहद को इस समय नूर और प्रताप का एक जलवा दिखाई दे रहा था। उसका जी चाह रहा था कि इस मुख को उठाकर अपने मन में रख ले।

अब तक यह सुरैया से प्रेम करता था, परन्तु आज से वह उसका पुजारी हो गया था। प्रेम तो ख़त्म भी हो सकता है परन्तु पूजा तो जान के साथ जाती है।

उसे चुप-चुप देखकर सुरैया ने कहा—

"कैसा मराक़बा* हो रहा है मौलाना साहब ?"

यह कहकर उसने जोर से कहकहा लगाया। वह जानती थी कि कालेज की लड़कियाँ शाहद को व्यंग्य से मौलाना साहब कहा करती थीं।

उसने उत्तर दिया—

*समाधि।

"कमाल कर दिया तुमने सुरैया !"

"स्त्री क्या नहीं कर सकती है !"

"यह काम तो मर्दों से भी नहीं हो सकता था।"

"मर्द ? यह तो बड़ा पुराना प्रापोगेंडा है। लेखनी और दवात तो सदैव पुरुषों के हाथ में रही है। करते रहे जी भर के अपनी प्रशंसा। धीरे-धीरे "पुरुष" शब्द में वह जान डाल दी कि यह शक्ति, हौसला, हिम्मत, चरित्र का समानार्थ बन गया। और "स्त्री" को यह अपने प्रापोगेंडे से कोमल-शरीर और नाजुक प्रमाणित करते रहे। वह इनकी दृष्टि में एक कली, एक काँपती हुई पत्ती बन गई।"

"जबकि वास्तविकता इसके बिल्कुल उलटी है !" यह कहकर शाहद मुस्करा दिया।

"बिल्कुल ! शाहद साहब, स्त्री एक ऐसा पैकर है जो कुदरत का शाहकार है। हाँ, स्त्री फूल की तरह नर्म, कली की तरह नाजुक, बसंत की हवा की तरह कोमल है—परन्तु यही स्त्री यदि स्त्री बन जाए, तो इसकी टक्कर से पहाड़ हिल जाते हैं। चट्टानें अपना स्थान छोड़ देती हैं। तूफान अपना रुख बदल लेते हैं।"

"मैं कदापि कायल न होता इस कविता का, परन्तु तुमने तो कविता को वास्तविकता बना दिया है। सूर्य से अधिक रोशन और चमकीली वास्तविकता।"

शुक्रिया ! आदाब बजा लाती हूँ।"

"सुरैया आज तो विचित्र-विचित्र बातें खुल रही हैं मुझ पर। मुझे इस बात का बिल्कुल ज्ञान न था कि तुम शाकिर साहब की बहन हो। मैं तुमसे प्रेम करता था, तुम्हारे परिवार आदि के सम्बन्ध में मुझे जानने की क्या जरूरत थी ? मुझे हरगिज इस बात की आशा नहीं थी कि ऐसे ऊंचे खानदान की लड़की, यह पता चल जाने के बाद भी, कि जिससे वह प्रेम कर रही है,

वह एक तवायफ के पेट से पैदा हुआ है, एक तवायफ के घर पला-बढ़ा है, मुहब्बत करती रहेगी ?"

"वही बात ?"

"क्या ?"

"मैंने प्रेम तुमसे किया, मुझे तुम्हारे परिवार आदि का क्या विचार हो सकता था ? मैंने कभी यह मालूम करना नहीं चाहा कि तुम अमीर हो, या ग़रीफ। शरीफों के शब्दों में 'शरीफ हों या 'रज़ील'। मैंने ऐसे-ऐसे शरीफ-रज़ील देखे हैं कि यदि उनके चेहरे का नक़ाब उलट दिया जाए, तो लोग घिन खाकर क़ै कर दें, और मैंने ऐसे-ऐसे रज़ील-शरीफ भी देखे हैं कि मानवता को जिन पर गर्व है।"

शाहद खामोशी से सुन रहा था।

सुरैया ने कहा—

"मैंने तुम्हें देखा। तुमसे पूर्व मैं बहुत से लोगों को देख चुकी थी। परन्तु तुममें कोई विशेष बात थी जिससे मैं प्रभावित हुई। फिर मैंने तुम्हें परखा और परख का परिणाम यह निकला कि मैं तुमसे प्रेम करने लगी।"

शाहद अब भी खामोश बैठा था। सुरैया की बात का सिलसिला जारी था।

"मैं उन स्त्रियों में से नहीं हूँ, जिनके पाँव डांवाडोल होते हैं। मैं उनमें से हूं जिनका बढ़ा हुआ कदम कभी पीछे नहीं हटता। न समाज के डर से, न खानदान के ख़ौफ़ से, न माँ और भाई के दवाब से। मेरी परीक्षा हुई और मैं इन सब मंज़िलों से गुजर गई।"

शाहद ने कहा—

"सुरैया, ज़रा अपनी प्राण-दायक आवाज में वह शेर तो गाओ,

—हज़ार दाम* से निकली हूं एक झटके से
जिसे ग़रूर हो, आए मुझे शिकार करे !"

*जाल।

सुरैया को स्त्री की स्वभाविक लाज आ गई । उसने कहा—

"हटो, हमें नहीं अच्छी लगतीं यह बातें ।"

थोड़ी देर तक दोनों [इधर-उधर की बातें करते रहे । फिर शाहृद ने कहा—

"अब क्या होगा ?"

"क्या राय है तुम्हारी ?"

"शरह और कानून की रू से हम पति-पत्नी हैं, बल्कि (मुस्कराकर) 'रज़िस्टर्ड' पति-पत्नी हैं । परन्तु इतने निकट होकर भी हम कब तक एक दूसरे से दूर रहेंगे ?"

"मेरी राय तो यह है कि एक वर्ष और बीत जाने दो । तुम भी एम. ए कर लो और मैं भी । फिर हम तुम दोनों अपने पाँव पर खड़े होकर अपनी दुनिया सबसे अलग होकर बसाएं । वैसे मेरा जायदाद में भी हिस्सा है और घर में भी है । मेरे नाम अब्बाजान पचास हज़ार रुपया बैंक में भी जमा करवा गए हैं । इन सबसे मैं फायदा उठा सकती हूँ, और उठाऊंगी । परन्तु मैं यह नहीं चाहती, कि हमारा जीवन मेरी पैत्रिक जायदाद के सहारे पर शुरू हो । मैं इसकी परवाह नहीं करती कि दुनियाँ हमें क्या कहेगी वह कुछ कहती, मैं ले लेती अपनी यह सब चीजें । परन्तु मैं सब पर यह साबित कर देना चाहती हूं कि यह कुछ न होता, या कोई ऐसी सूरत होती कि मुझे यह सब चीजें न भी मिलतीं तो भी हम अपने पाँव पर खड़े होकर अपनी दुनिया बसा सकते थे । अपने पाँव पर खड़े होकर पहले हम अपनी दुनियाँ बसालें, फिर बैंक और जायदाद का स्वर्ग हमें अधिक सुख दे सकेगा । बोलो, क्या कहते हो ?"

"वही जो तुम !

—मुझे तो खू* है कि जो कुछ कहो, बजा★ कहिए !"

---

*आदत ।

★ठीक ।

सुरैया ने कहा—

"बड़े शेर याद कर लिए हैं !"

"शेर कहाँ सुने अभी तुमने ? यह तो केवल एक पंक्ति थी। शेर सुनोगी तुम ?"

"क्षमा करो, कालेज का समय खत्म हो गया। अब मैं जाती हूं घर ! फिर कभी होगा यह मुशायरा !"

दोनों साथ-साथ उठे और अपनी-अपनी राह हो लिए।

२६

सुरैया की घटना ने शाकिर को मानसिक रूप में बड़ी चोट पहुंचाई थी। रज़िया की सलाह को मानकर वह जान-बूझ कर खामोश था, परन्तु उसके दिल में गुस्से का तंदूर गर्म था। उसका वश चलता तो वह मनसूर और सुरैया दोनों का फैसला कर देता। परन्तु वह विवश था। दाँत पीसकर रह जाता था।

इस बीच में वह यासमीन के यहाँ भी न जा सका। जब आदमी चिन्तित हो तो एय्याशी में भी मजा नहीं आता।

आशुफता-खातरी वह बला है कि 'शेफ़ता'—
ताअत में कुछ मजा है न लज्जत गुनाह में।

यही कारण था कि यासमीन का विलास-भवन भी उसे अपनी ओर न खींच सका। कुछ दिनों में ही वह घर की ताजा उलझनों का आदी हो गया। अब उसे फिर जरा ऐश की सूझी। अचकन पहनी और सीधा यासमीन के चौबारे पर पहुँच गया।

यासमीन ने देखते ही टाँग ली :—

"कहाँ भूल पड़े सरकार आज ?"

"इतना आश्चर्य क्यों है ?

"मैं समझी, शायद आप रास्ता भूल गए !"

"क्यों समझीं तुम यह ?"

"इतने दिनों से कहाँ थे ?"

"थीं कुछ ऐसी ही घरेलू मसरूफ़ियतें और इससे अधिक परेशानियाँ ।"

"परेशानियाँ भी ? क्यों हुआ क्या ?"

"छोड़ो, इस किस्से को !"

"बंदी तो सुनकर रहेगी सरकार !"

"क्या करोगी वह दुखड़ा सुनकर ?"

"यह लो, आप परेशान हों और मैं यह भी न पूछूँ । फिर मैं दवा किस मर्ज की हुई ?"

शाकिर ने यासमीन को सारी घटनायें सुना दीं । वह बड़े ग़ौर और ध्यान से यह बातें सुन रही थी । फिर उसने पानदान अपनी ओर खींचा और पहले एक बीड़ा बनाकर स्वयं खाया, उसके बाद दूसरा शाकिर की ओर 'हूँ' कह कर बढ़ाया ।

वह पानदान बंद करते-करते कहने लगी—

"अल्लाह क़सम, तुम भी निरे वही रहे !"

"बड़ी अच्छी पहेली बुझा गईं तुम । यह 'वही' क्या चीज होती है ?"

"तो और क्या कहूं ? ग़ज़ब खुदा का ! जवान-जहान बहन, तुम्हारी आँखों देखते रंडी-बच्चा से ब्याह रचा ले और तुम कुछ न कर सको ? ऐ, मैं कहती हूं तुम्हारी ग़ैरत क्या हो गई थी ? मार क्यों न डाला तुमने बहन को ?"

"वह बड़ी चालाक है । उसने ऐसा बंदोबस्त कर लिया था कि मैं ज़रा भी ज्यादती करता तो मेरा घर पुलिस-चौकी बन जाता ।"

"चलो हटो, बातें बनाना भी कोई तुमसे सीखे । हीला-हवाला तो मियां से कुछ है नहीं । बे बात की बातें जितनी चाहे सुन लो !"

"फिर वह नालायक मनसूर भी तो उसका हिमायती था !"

"भाड़ में गया मनसूर और चूल्हे में गई सुरैया ! और सुनो, अब शरीफ़ बेटियां स्वयं अपना वर चुनेंगी । स्वयं ताक-झांक कर मर्दवा पसंद करेंगी ! और कहीं और नहीं, तो रंडी-बच्चों से विवाह करेंगी । मुई ज़मीन

भी नहीं फट जाती। अल्लाह बचाए इन लोगों से। यह सब कयामत के संकेत है। मैं कहती हूं, इससे पहले भी तुमने कभी सुना था कि ऐसा हुआ हो ? भई हम झूठ क्यों बोलें ? डंके की चोट से कहते हैं कि हम रंडी शरीफ़ों का मुकाबला नहीं कर सकतीं। इनका हमारा मेल क्या ?"

"यही तो मैं भी कह रहा था।"

"कह रहे थे ख़ाक ! तुमने तो वह नाक कटवाई है खानदान की कि तौबा ही भली। मैं सोचती हूं तो शरीर में सनसनी-सी होने लगती है। हाय, मेरे अल्लाह ! शाकिर की माँ-जाई ज़हरा के घर जायेगी। उसके भाई का पहलू गर्म करेगी ! उसकी मां की बहू बनेगी। वह शरीफ़ज़ादी जिसके दामन पर हूरें निमाज़ पढ़ें, ऐसी गई-गुज़री हो गई कि मुए शाहद के पल्ले बाँध दी गई। तौबा है मेरे अल्लाह ! तौबा है !"

"यासमीन, तुम स्वयं भी तो एक तवायफ़ हो !"

"हाँ, हूँ। फिर ?"

"फिर सुरैया की शादी, तुम्हें इतनी बुरी क्यों लगी ?"

"क्यों न लगती ? हमने शरीर बेचा है, ईमान नहीं बेचा। वही कहेंगे, जो ईमान लगती होगी ! मेरा भी तो भाई है अनवर—ले तो ले मेरे सामने नाम किसी शरीफ़ज़ादी का। मुँह में ताला लगा दूँ, ताला !"

"क्यों ?"

"हम अपने साथ दूसरों को क्यों बुरा बनायें ? उनका जीवन क्यों खराब करें ? उन्हें क्यों पाप के रास्ता पर डाल दें ?"

"तो क्या तुम लोगों की बहू-बेटियाँ भी सुरक्षित नहीं रहतीं ?"

"ऐ है, इतने भोले तो न बनो ! जैसे कुछ जानते ही नहीं !"

"मैंने तो यह सुन रखा था कि तवायफ़ों की लड़कियाँ चाहे जैसी हों, परन्तु वह अपनी बहुओं की बड़ी रक्षा करती हैं। पक्षी पंख नहीं मार सकता वहाँ !"

"तुम्हारा यही तो भोलापन है, जिसने तुम्हारा वह हाल बना रखा है !"

"तो अब तुम्हारी क्या राय है ? अब क्या करूं मैं ?"

"मेरी राय किसी योग्य होती, तो पहले पूछते। अब क्या पूछ रहे हो, जब चिड़ियां खेत चुग गईं ?"

"आखिर कुछ तो ?"

"जाओ, चाव-प्यार से बहन का डोला निकालो। सारी आदरीको इकट्ठा करो। दूर-दूर के सम्बन्धियों और मित्रों को बुलाओ। शहर के लोगों को न्योता दो। और जब सब आजाएं तो शाहद के हाथ में सुरैया का हाथ दे दो। और मेरी मानों, तो एक बात और भी करो।"

"क्या बात ?"

"एक मुजरा करवाओ, और बी जहरा को बुलाओ। जब वह अच्छी तरह नाच गा चुकें तो सब बरातियों को बता दो कि यह मेरी सुरैया की ननद हैं। शाहद इन्हीं का माँ-जाया भाई है। बड़ा मजा रहेगा, सच !"

"तुम मेरे दिल पर फाहा रखने के स्थान पर नमक छिड़क रही हो। मैं तुम्हारे पास इसलिए आया था कि तुम मेरे साथ सहानुभूति करोगी। मेरा दिल बहलाओगी। तुम और उलटे ही मेरा मज़ाक उड़ाने लगीं। मेरे दिल के घावों पर तेज़ाब का छिड़काव करने लगीं। वाह यासमीन, वाह !"

"देखो, भई, बुरा न मानना।"

"नहीं मानेंगे, कहो।"

"सच तो कड़ुवा होता ही है।"

"कहो।"

"ईमान से कहना, मैंने कुछ झूठ कहा ?"

"अरे खुदा की बंदी, तूने सब सच कहा। परन्तु मुझे सच की आवश्यकता नहीं थी। तदबीर की, मश्विरा की जरूरत थी। यह तो तुमने बताया ही नहीं कि अब क्या किया जाए ? किस प्रकार इस निकाह को, जिसकी रजिस्ट्री हो चुकी है, तोड़ा जाए ? क्योंकर सुरैया को सीधे रास्ते पर लाया जाय ? सोचने की बातें यह थीं और तुम लगीं ईरान-तोरान की बातें करने !"

"मानोगे मेरी ?"

"क्यों नहीं मानूँगा ?"

"तो सुनो, मार से भूत भागता है। वह चार चोट की मार मारो कि सुरैया के होश ठीक हो जाएं, और वहीं एक काग़ज़ पर लिखवा लो कि शाहद इसे ज़बरदस्ती करके रजिस्ट्रार के पास ले गया था। निकाह भी टूट जाएगा और इज़्ज़त भी बच जाएगी। आगे तुम जानो, तुम्हारा काम। मैं कौन पराए फट्टे में टाँग अड़ाने वाली। ऐ हाँ, मेरी मान न मान, मैं तेरा मेहमान !"

"फ़र्ज़ करो, ऐसा किया मैंने फिर भी तो मामला नाज़ुक है।"

"(त्योरी चढ़ा-कर) मैं भी तो सुनूँ, वह नज़ाकत ज़रा।"

"यदि यह बयान मार-पीट कर सुरैया से ले भी लूँ मैं, तो भी मामला अदालत तक जाएगा। बदनामी और अधिक होगी। फिर फ़ैसला होगा सुरैया के बयान पर। वह ठहरी एक ही ज़िद्दी। अदालत के कटहरा में वह बिल्कुल आज़ाद होगी। यदि उसने बयान बदल दिया, तो रही-सही नाक भी कट जाएगी !"

"भई, मैं नहीं जानती। तुम जानो, तुम्हारा काम !"

"लो ख़फ़ा हो गईं ज़रा में ?

"बातें ही ऐसी करते हो। इतना डरपोक भी कोई नहीं होगा। छोटी बहन के डर से पता पानी हुआ जा रहा है मियां का !"

"तुम तो अच्छी ख़ासी पागल हो। यहाँ डरता कौन है ? प्रश्न केवल यह है कि यदि यह तदबीर भी पट पड़ी तो मैं मुँह दिखाने योग्य न रहूंगा किसीको !"

"क्यों नहीं रहोगे ? क्या किसीकी बहू-बेटी भगाए लिए जा रहे हो ?"

"इससे क्या होता है ?"

"अच्छा, एक तदबीर और सोच ली है मैंने !"

"वह क्या ?"

"यही कि अनवर को ढर्रे पर चढ़ाती हूं।"

"क्या करेगा वह ?"

"जो किसीसे न बन पड़े।"

"अर्थात् ?"

"जो सलूक तुम सुरैया से करोगे, वही सलूक अनवर शाहद से करेगा। इतना मारेगा बच्चा जी को कि छटी का दूध याद आ जाएगा। फिर लिखते ही बनेगी, फारिग़-खती। कोई हंसी-खेल है मेरे अनवर का मुकाबला करना ?"

"करेगा यह काम अनवर ?"

"कैसे नहीं करेगा ? लालच बुरी बला है।"

"हाँ मैं उसका मुँह मीठा करूँगा।"

"इस लालच में वही नहीं आयेगा।"

"फिर ?"

"उसे दूसरी प्रकार का लालच देना पड़ेगा।"

"आखिर क्या ?"

"मैं नहीं समझा।"

"तोबा इलाही ! कैसी उलटी समझ है तुम्हारी ! कुछ समझते ही नहीं !"

"फिर भी ?"

"उसे लालच यह दूंगी कि शाहद का कांटा निकाल दे, रास्ते से। फिर बन जा सुरैया का दूल्हा !"

"खाई से गिरे खंदक़ में ! शाहद के बाद अनवर ?"

"फिर वही नासमझी की बातें ?"

"तो समझाओ न ?"

"अरे लालच दूँगी अनवर को ! कुछ ब्याह तो नहीं करूँगी सचमुच सुरैया का उससे !"

"हाँ, यह ठीक है !"

"तो करूँ अनवर से बात ?"

"जरूर करो।"

"रही पक्की ?"

"हाँ, बिल्कुल !"

"और तुम घर जाकर क्या करोगे ?"

"वही जो तुमने बता दिया है। मिज़ाज ठीक करूँगा उस परिवार कुलहनी सुरैया का !"

"अब आए मर्दी पर। वह भी कोई मर्द है, जो स्त्री से डर जाए ?"

"(मुस्करा कर) तो न डरा करूँ स्त्री से ?"

"(हलकी-सी मुस्कान के साथ) न वक्त देखो, न बेवक्त······करने लगे छेड़-छाड़ !"

"तुम भी तो स्त्री हो आखिर।"

"तो ?"

"न डरा करूँ तुमसे ?"

"(आंखें नीची करके) मेरे ऐसी स्त्री कोई हो तो ले !"

"हाँ भई, यह ठीक है। फिर तो डरा करेंगे तुमसे।"

यह कहकर शाकिर ने एक जोर का कहकहा लगाया और कहने लगा—

"लाओ एक पान दो। चलें फिर।"

"जाओगे कहाँ ?"

"घर ?"

"अभी से ?"

"अब मुझसे सहन नहीं होता। अभी जाऊंगा घर और अभी तुम्हारी बताई तरकीब पर अमल करूंगा। तुम भी अनवर को भली प्रकार समझा-बुझा दो। कल ही वह भी अपने प्रोग्राम पर अमल कर डाले।"

"तसल्ली रखो। यही होगा।"

इस बात-चीत के बीच में पान बनाने का क्रम जारी था। यासमीन ने

शाकिर को पान दिया। उसने बीड़ा मुंह में रखा और चल दिया घर की ओर।

उसके जाने के बाद यासमीन ने आवाज़ दी—

"सितारा !"

एक दस वर्ष की छोकरी आंखें मलती सामने आकर खड़ी हो गई।

"हर समय नींद भरी रहती है मालजादी की आँखों में। अभी ग्यारह बजे हैं रात के और नवाबज़ादी ने आराम शुरू कर दिया।" यासमीन गर्जी।

सितारा ने इस प्रकार जैसे यासमीन की बातें सुनीं ही न हों, पूछा—

"क्या काम है बीबीजी ?"

"जा अनवर को बुला ला।"

थोड़ी देर में एक नवयुवक बढ़िया लुंगी बाँधे, बिना बाहों का बनियान पहने, मूंछों पर ताव देता हुआ, अपनी जवानी और कस-बल पर गर्व करता हुआ, सामने आकर खड़ा हो गया। यही अनवर था।

यासमीन ने सितारा से जो अनवर के साथ आई थी, बड़े भोंडे-पन से कहा "चल हट!"

और अनवर से कहा, "आओ, मेरे पास बैठ जाओ।"

अनवर और यासमीन में बड़ी देर तक कानाफूसियां होती रहीं। यासमीन मुस्करा-मुस्कराकर कुछ उसके कान में कह रही थी और अनवर हंस-हंसकर उसकी बातें सुन रहा था।

बड़ी देर के बाद दोनों भाई-बहन जुदा हुए। जाते हुए अनवर ने कहा—

"यही होगा।"

और वह चला गया।

२७

शाकिर यासमीन के यहाँ से सीधा घर की ओर चला। यासमीन ने उसे एक नई दुनिया में पहुंचा दिया था। एक नए बलबले से परिचित करवाया था। एक नया रास्ता सुझा दिया था। यासमीन की बातें उसके लिये सुरा का प्याला बन गईं। शराब पीने के पश्चात् कायर पुरुष भी मर्द बन जाता है। यासमीन की बातों से शाकिर में नया पुरुषत्व आ गया। उसका पुरुषत्व सहमा हुआ था। यासमीन ने उसे शेर बना दिया। उसकी मर्दाना हिम्मत दिल के किसी कोने में सोई पड़ी थी—नववधु की नाईं लजाई शर्माई—परन्तु अब वह जाग उठी थी। अब वह रुस्तम और असफंदयार जैसे बहादुरों के बराबर हो गई थी।

पहले वह स्वयं को सुरैया और मनसूर के सामने बिल्कुल विवश पा रहा था। परन्तु यासमीन के कारण अब उसका कस-बल देखने योग्य था।

इस समय वह पुरुषत्व के तेज और शाहाना प्रताप का आकार बना हुआ था, जिसके सन्मुख हर विद्रोह कुचल दिया जाता है, हर सरकशी रौंद दी जाती है, हर खुदसरी घात कर दी जाती है। अब वह सिकन्दर महान की भाँति था, जो पुरु को पराजय देने उसके दुर्ग पर अपने बहादुर सिपाहियों का लश्कर लेकर चढ़ रहा था।

उसके कदम तेज-तेज पड़ रहे थे। वह रास्ता-भर रज़िया और यासमीन की तुलना करता रहा। वह सोच रहा था, कितनी बोदी है रज़िया! डर गई कमबख्त! कितनी दलेर है यासमीन! मुझे उभारा और अपने संगे

भाई तक को खतरे में डाल दिया, हालाँकि यासमीन की अपेक्षा रज़िया को कहीं अधिक मेरी और मेरे खानदान की महानता और सम्मान का रक्षक होना चाहिए था। रज़िया ने हथियार डाल दिए और यासमीन तन कर खड़ी हो गई। यही कारण है कि रज़िया मेरे मन से उतर गई है और यासमीन इसकी पूर्णरूप में मालिक बन गई। यह बात तो ज़हरा में भी नहीं थी। ज़हरा ने तो स्वयं मुझे सन्देश दिया था शाहद का सुरैया के साथ। हरामज़ादी कहीं की! हूं, चली थीं ब्याह रचाने अपने भाई का मेरी बहन से!

"इस हौसला को देखिए और हमको देखिए!"

बहू बनाकर लायेगी सुरैया को—अब मालूम हो जायेगा आटे-दाल का भाव!

दिल से यही बातें करता, नई-नई स्कीमें बनाता और नए-नए फैसले करता, क्रोध से भरा हुआ, त्यौरियां चढ़ाए शाकिर घर में दाखिल हुआ। उसने सोचा था, घर पहुँचते ही अपनी ऊँची अदालत को ग्रामीण थानेदार का कमरा बना देगा, जहाँ इकबाल-जुर्म और दोष-स्वीकृति के लिए बेगुनाहों और गुनाहगारों को इतना पीटा जाता है कि वह लहलुहान हो जाते हैं और वही कहते हैं जो थानेदार साहब की इच्छा होती है।

परन्तु घर में दाखिल होने के बाद उसे एक विचित्र-प्रकार का हंगामा सुनःपड़ा।

हंगामे का स्थान सनोबर की कोठरी थी और सारा घर वहीं जमा था। अम्मीजान भी, सुरैया भी, रजिया भी। सनोबर के कमरे से ऐसी आवाज आ रही थी, जैसे कोई नया जन्मा बच्चा रो रहा हो।

शाकिर के कान खड़े हुए। वह भी उस भीड़ में आकर शामिल हो गया। अम्मीजान के मुँह से आग का फव्वारा उड़ रहा था। उनका स्वर बुढ़ापे के बावजूद कान फाड़ने की सीमा तक ऊंचा हो रहा था। उनके एक हाथ में बेंत था और वह पूरे जोर और निर्दयता के साथ सनोबर पर उसे बरसा रही थीं। मारती जाती थीं और पूछती जाती थीं;

"बोल हरीफा, किसका है बच्चा ?"

सनोबर दर्द, तकलीफ और दुख की स्थिति में हर नई चोट पर मछली की तरह तड़प जाती, लोटने लगती। परन्तु उसके मुंह पर ताला लगा हुआ था। वह मार खा-खाकर रो रही थी, परन्तु वह भेद जिसे मालूम करने के लिए अम्मीजान ऐढ़ी-चोटी का जोर लगा रही थीं, उसके मुंह में बन्द था।

उसकी इस चुप्पी से अम्मीजान का पारा और बढ़ चढ़-गया। अंत में तंग आकर उन्होंने पहले सवाल और फिर मार का सिलसिला बंद किया, और एक साथ ही दोनों काम आरम्भ कर दिए। वह बेतहाशा सनोबर को मारने लगीं,

"बोल यह किसका बच्चा है ?"

"बोल, यह किसका बच्चा है ?"

और उत्तर की प्रतीक्षा किए विना ही अपना प्रश्न दुहराती रहीं। शाकिर हक्का-बक्का यह तमाशा देख रहा था। उसकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि यह तमाशा क्या है ? क्या सनोबर के बच्चा हो गया ? कहीं हो सकता है ऐसा ? शाकिर इन गुत्थियों को हल कर रहा था।

शोर सुनकर मनसूर घर में दाखिल हुआ। सब इससे खफा थे, सब इससे जलते थे, सबकी आंखों में वह कांटे की तरह खटकता था, परन्तु सब उससे सहमे-सहमे रहते थे। सब उससे घबराते थे।

उसे आते देखकर अपने आप ही मजमा काई की तरह फट गया। बिना किसी प्रकार की रुकावट के वह सनोबर की कोठरी तक पहुंच गया। सनोबर अपनी गुदड़ी पर लहूलहान, कमजोर सहमी-सी, घबराई-सी, और बीमार-सी पड़ी रहती थी। उसके सामने एक नव-जात शिशु ऐड़ियां रगड़-रगड़कर रो रहा था, और अम्मीजान उससे दोष-स्वीकृति करवाने के लिए महाबा उसे पीट रही थीं।

अम्मीजान को इस पर गुस्सा नहीं था कि सनोवर कुंवारेपन में एक बच्चे की मां किस प्रकार बन गई ? उन्हें यह राज मालूम करने का शौक

था कि यह सौगात है किसकी ? वह कौन दीदा-दलेर डाकू, जिसने उनके दुर्ग में आकर डाका डाला और उन्हें खबर तक न हुई !"

आज तक इस घर में कोई घटना ऐसी नहीं घटी थी। खरबूजे को देख कर खरबूजा रंग पकड़ता है। सनोबर की भाँति यदि दूसरी बाँदियां भी उद्धमाने लगीं, तो फिर क्या होगा ? अच्छा खा..ा हरामी बच्चों का बोर्डिंग बन जाएगा यह घर !"

मनसूर ने बड़ी नर्मी के साथ अम्मीजान से पूछा—

"क्यों मार रहे हैं आप इसे ?"

"देख तो रही हो अपनी आँखों से। बी जन्नो खैर से एक सूर्य-चाँद के टुकड़े से बच्चे की माँ बन गई। और यहाँ किसीको पता तक न चला कि क्या खेल खेले जा रहे हैं···मालज़ादी···लुच्ची !"

यह कहकर उन्होंने फिर मारने के लिए छड़ी उठाई। मनसूर ने छड़ी अपने हाथ पर रोक ली, पूछा—

"क्या कहती है यह ? किसका है यह बच्चा ?"

"यही तो नहीं बताती सुअर की बच्ची ! मैं इसे मार डालूंगी, लेकिन पूछकर रहूँगी।" यह कहकर फिर उन्होंने अपनी भारी लठ उठाई।

मनसूर ने कहा—

"तो मैं बता दूं किसका है यह बच्चा ?"

"जानता है तू ?"

"और नहीं तो क्या······"

"किस हरामज़ादे के हैं यह करतूत ?"

"मेरे, यह बच्चा मेरा है !"

यह सुनते ही अम्मीजान के हाथों से छड़ी छूटकर गिर पड़ी। शाकिर के हाथ-पांव में कप-कपी आ गई। रज़िया का दिल जोर-जोर से धड़कने लगा

सनोबर चुपचाप पड़ी थी। उसका चेहरा इस प्रकार चमकने लगा जैसे अभी-अभी उस पर चार चोट की मार नहीं पड़ी, फूलों की वर्षा हुई हो।

बच्चा उसी प्रकार रोए-चिल्लाए जा रहा था।

मनसूर ने रज़िया से कहा—

"भाभी, सनोबर को मेरे कमरे में पहुँचा दो।"

फिर वह सुरैया से बोला—

"तुम ज़रा लेडी डाक्टर ओझा को फोन करो। फौरन आ जायें।"

दोनों बातों को तुरन्त ही माना गया। सनोबर मनसूर के कमरे में पहुँचा दी गई। और सुरैया के फ़ोन करते ही लेडी डाक्टर आ मौजूद हुई। उसने आते ही सनोबर का निरीक्षण किया। उसे शक्ति की दवा दी। उसके स्नायु-अंगों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा था।

जाते समय वह मनसूर के पास से गुज़री।

मनसूर ने पूछा—

"कोई भय की बात तो नहीं है जच्चा और बच्चा के लिए?"

लेडी-डाक्टर ने कहा—

"बिल्कुल नहीं। मैंने ताक़त की दवा दे दी है। कमजोरी है, ठीक हो जाएगी। परन्तु कम-से-कम पन्द्रह दिन तक बहुत अधिक एहतियात और सेवा की आवश्यकता है। जरा भी बेकली हुई, या सदमा पहुंचा तो उसका जीवन खतरे में पड़ जाएगा।"

"बहुत अच्छा।" मनसूर ने कहा।

"मेरे विचार में तो आप जच्चा को एक सप्ताह के लिए नर्गिस-होम भेज दीजिए, वरना यहाँ किसी नर्स का प्रबन्ध कर दीजिए। जो देख-भाल और सेवा नर्स से हो सकती है, वह घर की स्त्रियों से नहीं हो सकती।" लेडी-डाक्टर ने कहा।

"ठीक है आपका विचार। आप नर्स का प्रबन्ध कर देंगी?"

"क्यों नहीं?"

"(फीस के पचास रुपये देकर) तो कब तक भेज देंगी आप नर्स को ?"

"सुबह होते ही ।"

"धन्यवाद ।"

लेडी-डाक्टर चली गई । मनसूर अभी तक अम्मीजान, शाकिर और घर वालों के दायरे में घिरा हुआ था । रजिया और सुरैया मनसूर के कमरे में सनोबर के पास थीं ।

२८

शाकिर ने पकाई थी खीर, हो गई दलिया। यासमीन की बातों ने टानिक का काम किया था। वह जोश में भरा हुआ आया था, जैसे तोप का गोला—और यहाँ आकर जो यह प्रलय का हंगामा देखा तो एक पटाखे की भाँति ठंडा पड़ गया। सुरैया तो रही एक ओर, एक नई वस्तु-स्थिति पैदा हो गई, जो किसी प्रकार पुरानी घटनाओं की अपेक्षा कम और हलकी नहीं थी।

इस सोच-बिचार में वह अन्दर ही अन्दर सुलग रहा था कि लेडी-डाक्टर को रुख़सत करके मनसूर अपने कमरे की ओर बढ़ा। शाकिर ने फिर अपने होश इकट्ठे किए। फिर अपनी टूटी हुई हिम्मत में पुरुषत्व की मोमियाई लगाई।

उसने कड़क कर कहा—

"मनसूर !"

"(रुककर) कहिए !"

"इस घर में तुम जैसे लफंगे और बदमाश नहीं रह सकते !"

"(पलटकर) क्या कहा आपने ?"

"इस घर में तुम जैसे लुच्चे और शुहदे नहीं रह सकते। निकल जाओ यहाँ से !" खाली कर दो यह घर !"

"अधिक देर मेरे सबर और सहनशीशता की परीक्षा न लीजिए। मैं यह शब्द, यह बातें नहीं सुन सकता !"

"तू बदमाश है। परिवार की बदनामी का कारण है !"

"क्यों छोड़ दूं यह घर ? किसमें शक्ति है कि यह घर मुझसे छुड़ाए ? घर आपका नहीं, मेरे बाप का है ! इस घर में आप रह सकते हैं तो मैं भी रह सकता हूँ। यदि वह लोग यहां रह सकते हैं जो रंडीबाज़ हैं, तो वह लोग भी रह सकते हैं, जो लौंडी-बाज़ हैं। आप आईने में अपना चेहरा नहीं देखते ? दूसरों के तिल और महासे आपको खूब दीख पड़ते हैं ! आप न जाने कब से रंडीबाज़ी कर रहे हैं। इस बीच में न जाने कितने लड़के-लड़कियाँ आपकी कृपा से रंडियों की गोदी की शोभा बने होंगे और अब वह भी वही ट्रेनिंग हासिल कर रहे होंगे। परन्तु मैंने अपने घर की एक लौंडी से, जिसे मैंने पसन्द किया, सम्बन्ध बढ़ाया, उससे सन्तान पैदा हुई। मैं कानों पर हाथ रखकर भागता नहीं। वह मेरी संतान है। मैं उसे पालूंगा। उसकी माँ मेरे साथ पत्नी बनकर रहेगी······"

अभी मनसूर का भाषण चल रहा था कि अम्मीजान बोलीं—

"हाय ग़ज़ब ! यह अंधेर तो देखो, कि छोटा भाई बड़े भाई के मुंह पर आ रहा है। मां के सामने अपनी बदमाशी को सराह रहा है। मैं कहे देती हूँ, दफ़ान हो जा यहाँ से ! नहीं तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा ! हाँ, कहे देती हूं मैं।"

"अम्मीजान, यह नहीं हो सकता !"

"तो क्या सनोबर मेरी बहू बनेगी, मुई दो कौड़ी की छोकरी !" यह कहकर वह रोने लगीं।

मनसूर ने कहा—

"बहू का रिश्ता आप पसन्द करें या न करें, अब बन चुका। वह अब टूट नहीं सकता। मैं आपके राजकुमार की तरह नहीं हूँ कि आज इससे जी भर गया तो छोड़ दिया। कल उस पर दिल आया तो उसे सिर पर चढ़ा लिया !"

"यह लौंडी-बच्ची, हरामज़ादी, और मेरी बहू ?!"

"तो इसमें क्या हुआ ? आखिर आप लौंडी को इतना बुरा क्यों समझती

हैं ? क्या लौंडी इन्सान नहीं होती। क्या उसकी छाती में धड़कता दिल नहीं होता ? क्या उसमें वफ़ा नहीं होतीं ?"

"हुई। नीच लोगों में वफा ढूंढ़ रहे हैं, मियाँ साहबज़ादे।"

"अम्मीजान, तुम ही उसकी माँ की वफ़ादारियों का राग अलापा करती थीं ? मेरे तो होश से भी पहले की बातें हैं। फिर क्या एक लौंडी अपने आक़ा से वफ़ा कर सकती है ? अपने चाहने वाले या पति से नहीं कर सकती ? क्या कह रही हो तुम अम्मीजान ?"

"यह देखो इस नालायक को ! इसे यह भी मालूम नहीं कि लौंडियाँ हरजाई होती हैं—ज़लील, कमीनी, नीच !"

"मालूम तो है, लेकिन मैं मानता नहीं !"

"क्या नहीं मानता तू ?"

"यह कि लौंडियाँ ज़लील और नीच होती हैं। और यह बात अम्माँ, तुम भी अज्ञानता में कह रही हो, वरना जानती हो, कि बात कहाँ-से-कहाँ तक पहुंच जाएगी !"

"ज़रा मैं भी तो सुनूं कि कहाँ तक बात पहुंचाएगा तू संपोले ?"

"मुसलमानों के इतिहास से अगर लौंडियों को निकाल दिया जाए, तो तुम्हारे बड़े-बड़े शाह और नगर-पति, जिनके नाम सुनकर तुम्हारे बदन में झुरझुरी आ जाती है, जिन की महानता तुम्हारे दिल में गड़ी हुई है, जिनकी चर्चा से तुम्हारे सेरों खून बढ़ जाता है, कहाँ जायेंगे यह सब ?"

"क्या बक रहा है जाहिल ?"

"अम्मीज़ान, तुम नहीं जानती हो, भाईजान शायद जानते हों, कि तुम्हारे अरब शरीफ के अम्मवी और अब्बासी खलीफों में बहुत से ऐसे थे, जो लौंडियों की सन्तान थे। भारत पर तो गुलाम वंश ने हकूमत की है। यह दिल्ली की कुतब साहब की लाट, जिसे देखने दूर-दूर से लोग आते हैं और श्रद्धा से सिर झुकाते हैं, एक गुलाम का ही तो बनाया हुआ है। तुम तो निमाज़-रोज़ा को अपना ओढ़ना-बिछौना बनाए हुए हो, तुम्हें पता होना

चाहिए, कि इस्लाम लौंडी का इतना ही सम्मान करता है जितना एक शरीफ स्त्री का। लौंडी से शादी करना शरह की रू से मुख्य है। फिर तुम इस सवाब के काम पर बजाए इसके कि मुझे बधाई दो, कोस क्यों रही हो ? खफा क्यों हो रही हो ?"

अम्मीजान और शाकिर दोनों चुप थे।

मनसूर कह रहा था—

"पिछले जमाने की बातें छोड़ो। आजकल जो हो रहा है, उसे देखो।"

"अरे चल हट, जहनिया, हरामखोर !"

"तुम्हीं कह रही थीं कि चच्चा-जान के यहाँ जो लौंडी है, गुलाब, उसकी लड़की चमेली का नाक-नकशा बिल्कुल चच्चा-जान से मिलता जुलता है।" (चच्चीजान भी सुनने वालों में से थीं।

उनका चेहरा सुर्ख हो गया और अम्मीजान का एक रंग आने, एक जाने लगा।

"फिर वह तो वैसे ही लालों के लाल बने हुए हैं जबकि गुलाब को, और उसके साथ चमेली को अभी तक लौंडी बनाए हुए हैं, और मैं बुरा हो गया, जो अपने बेटे को बेटा बनाकर रखना चाहता हूँ—क्यों अम्मीजान, है यह इन्साफ तुम्हारा ?"

"अव्वल तो मैंने गुलाब और चमेली और तेरे चच्चा के सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं। तू झूठा है। परन्तु यदि मान लिया जाए कि कहा, तो भी तेरे चच्चा ने अपना बिगाड़ा क्या ? माशा अल्लाह पत्नी मौजूद है, बच्चे मौजूद हैं। चमेली जहाँ की थी, वहीं है। क्या ब्याह लेगा उसे कोई शरीफ ? तू भी यही करता !"

अब चच्ची का पारा चढ़ चुका था। उन्होंने तीखी नजरों और कडुवे स्वर में कहा—

"यह भी अच्छी रही ! बात हो रही थी मां-बेटे की, झगड़ा था सनोबर

और मनसूर का, ज़िक्र छिड़ गया उन बेचारे का। उन्होंने किसीका क्या बिगाड़ा है ?"

यह कहकर वह क्रोध से उठीं। अम्मीजान समझ गईं कि यदि चच्चीजान ने अपने घर जाकर लगाई-बुझाई तो एक मुसीबत से तो छुटकारा हुआ नहीं, दूसरा हंगामा खड़ा हो जायेगा।

उन्होंने कहा—

"बैठो, दुलहिन, तुम भी किसके कहने में आगईं ? यह मेरा लड़का नहीं, विष की गाँठ है। देख लो क्या हाल कर रखा है इसने मेरे घर का। अब तुम भी रूठ जाओगी तो में किसका सहारा लूंगी ?"

यह कहकर अम्मीजान फूट-फूटकर रोने लगीं। चच्चीजान ज़रा की ज़रा रुकीं।

उन्होंने कहा—

"भई यह सब सच है, परन्तु हम से तो इनके यह व्याख्यान नहीं सुने जाते।"

"दुलहिन कौन उनके व्याख्यान कर रहा है ? इसे तो लड़वाने में मज़ा आता है। यह तो घर फूंक कर तमाशा देखना चाहता है। ईश्वर शत्रु को भी ऐसी संतान न दे !"

"अम्मीजान, मेरी झूठ बोलने की आदत नहीं है। मुझे झूठा न बनाओ !"

"हाँ, और क्या ? तू ही तो एक सच्चों का सच्चा रह गया है।"

"फिर मैं कहूं कुछ ?"

"क्या कहेगा तू ? गालियां देगा मुझे ? दे ले। यह हसरत भी निकाल डाल।"

"मैं गालियाँ क्यों देने लगा ?"

"तो तूने मुझे किसीके साथ पकड़ा था ? हरामखोर कहेगा क्या तू ? तुझे भी कसम है जो न कह दे !"

"अभी परसों की बात है, तुम नहीं कह रही थीं········"

"हां, बोल, क्या कह रही थीं मैं ?"

"कि मौसी की खव्वास तज्जो के……"

"अच्छा, अब चुप रह मूज़ी ! नहीं तो तेरा गला घोंट दूंगी कलमूंहे !"

"अच्छा, मामूं प्रेमी बने जा रहे हैं !"

अम्मीजान के मुख का रंग उड़ गया : मौसी का मुख तमतमा उठा। मयानीजान पीली पड़ गईं। कैसे-कैसे भेद खुल रहे थे आज ? किन-किन चेहरों से नकाब उठ रहे थे इस समय ? यह चच्चीजान, यह खाला अम्मी (मौसी) यह ममानी केवल तमाशा देखने आई थीं। "ऊईं नौज" कहकर मनसूर का मज़ाक उड़ाने, अम्मीजान का कलेजा छलनी करने, घर की टोह लेने, और फिर अपने-अपने घर जाकर, जिनकी खिड़कियां इस घर से फूटती थीं, नमक-मिर्च लगाकर, इस सब कहानी का बयान करने। परन्तु हुआ यह कि यह सब आप ही तमाशा बन गईं। मनसूर ने सबके सामने आईना लाकर रख दिया !

—न हम समझे न आप आए कहीं से
पसीना पूछिए अपनी जबीं* से !

मनसूर की यह बातें सुनकर सब ज्वालामुखी की अग्नि बन गई थीं, परन्तु मनसूर के इस भेद खोलने ने इस ज्वालामुखी हिमालाय को शर्मिन्दगी के पसीन में ग़रक कर दिया।

एक चुप्पी सारी सभा पर छाई थी।

—गुलशन में कहीं बूए दमसाज़* नहीं आती
अल्लाह रे, सन्नाटा, आवाज़ नहीं आती

परन्तु मनसूर की आवाज़ आ रही थी। उसने कहा—

"अभी इसी तरह की और कई बातें हैं मेरे मस्तिष्क के पिंजरे में पंख तोल रहीं हैं। मेरा भी जी चाह रहा है कि खोल दूँ पिंजरे की खिड़की। निकल जाने दूँ इन्हें। कब तक रहेंगी कैद मेरे पास !"

अम्मीजान को फिर रोना आ गया। उन्होंने कहा—

"मनसूर तू एक छुरी ले आ और भोंक दे मेरे सीने में !"

---

*माथा *दोस्त-मित्र।

"क्यों ? यह क्यों ?"

"तेरी बातें मुझसे सुनी नहीं जातीं।"

"लेकिन मैं तो सुन रहा हूँ तुम सब की बातें। मैं चाहता हूं जो मुझे बुरा समझ रहा है, वह अधिक देर के लिए नहीं, थोड़ी देर के लिए, ज़रा अपनी बग़ल में भी झांककर देख ले और मेरी आँखों का तिनका देखने से पहले दिल के आईने में अपनी आंख का शहतीर भी देख लें।"

"बहुत देख लिया। क्षमा करो। चले जाओ यहाँ से !"

बिना किसीके कुछ कहे अब भीड़ अपने आप ही छटने लगी थी। देखते ही देखते सब छंट गए, अलबत्ता शाकिर अभी तक बुत बना खड़ा था और अम्मीजान अब भी एक मूर्ति को नाईं अपनी जगह पर जड़ी हुई थीं।

सनोबर नीम बेहोश पड़ी थी। रज़िया और सुरैया जाग रही थीं। दोनों उसके पास बैठी हुई थीं। बच्चा रजिया की गोद में था।

मनसूर उन दोनों से बोला—

"अब तुम जाओ, बड़ी तकलीफ की तुमने ! मैं बैठा हूं। सबेरे नर्स आ ही जाएगी।"

सुरैया बोली—

"आप यहां बैठकर क्या करेंगे ? स्त्री-स्त्री का दुख समझती है कर लेंगे हम दोनों देख-भाल। जाइये आप सो रहिए।"

रज़िया बोली—

"चलो सुरैया, हम तुम चलें। मनसूर को और इस बच्चे को यहीं छोड़ दो। यह बड़ी भली-भाँति दूध पिलायेंगे।"

मनसूर पर उस समय गम्भीरता छाई थी। सुरैया भी बहुत खामोश-सी थी, परन्तु रज़िया की एक बात ने दोनों के होंठों पर मुस्कान की बहार पैदा कर दी।

मनसूर दूसरे कमरे में जाकर लेट गया। रज़िया और सुरैया सनोबर के पास रहीं। तीन बज चुके थे रात के। मनसूर लेटते ही खर्राटे लेने लगा।

शाकिर और अम्मीजान दोनों एक दूसरे से बात किए बिना अलग हो गए। अपनी चारपाई पर वह करवटें बदल रही थीं? नींद काले कोसों दूर थी—और शाकिर दीवार पर दृष्टि गाड़े हुए था।

वह सोच रहा था, अब क्या होगा? मैं सच समझ रहा था, मनसूर सीधे रास्ते पर आ गया, परन्तु वह तो एक ही छलाँग में न जाने कहाँ जा पहुँचा। क्या हो गया है उसे और सुरैया को! यह दोनों ऐसी-ऐसी हरकतें कर गुज़रते हैं जिसका वहम और गुमान तक नहीं होता। अब तो सुरैया को और शह मिल गई। अब तो उसका पल्ला और भारी हो गया। अब कोई ज़बरदस्ती उस पर नहीं की जा सकती। और की भी जाए तो सफल नहीं हो सकती, बल्कि और अधिक खतरे का, बदनामी का, अपमान का, कारण बन जाएगी। फिर?

वह भी सो गया।

२६

सोने को तो शाकिर सो गया, लेकिन विचित्र-विचित्र स्वप्न देखने लगता। कभी देखता बड़े वेग से बाढ़ आ रही है और वह तिनके की नाईं बहा चला जा रहा है—

"न हाथ बाग पर है न पा है रकाब में"

कभी उसे नजर आता कि सुरैया भी वेश्या बन गई है। एक कोठे पर वह नाच रही है, गा रही है और बड़े-बड़े सेठ और साहूकार, जमींदार धनवान अपने आपको न्यौछावर करने को तैयार बैठे हैं। कभी उसके सामने जहरा आ जाती, कहती, क्यों जनाब! आ गई न—सुरैया मेरे भाई की पत्नी बनकर? बड़ा अभिमान था आपको अपने वंश पर, भूठे कहीं के मुझे भी खोया और सुरैया को भी। पहले ही यदि मेरा कहना मान लेते, तो क्यों यह दिन देखना पड़ता?

यह दृश्य भी बदल गया और मनसूर भयानक आँखों से हाथ में खुला छुरा लिए बढ़ता नजर आया, जान पड़ता था, एक ही वार में उसको समाप्त कर देगा।

यह दृश्य देखकर उसके प्राण सूख गए, वह हड़बड़ाकर उठ बैठा—सफेद सुबह उदय हो रही थी। लगभग एक ही घंटा सोया। आंख खुलीं तो न मनसूर था, न सुरैया न जहरा न सैलाब। उसने फिर सोने की कोशिश की परन्तु सोने की चिड़िया उड़ चुकी थी। कुछ देर तक करवटें बदलता रहा, जब देखा नींद आ ही नहीं रही; तो उठ बैठा। हाथ-मुंह धोया और चला सीधा यासमीन के घर।

यहां अब रात्रि हुई थी, मदिरालयों का जीवन ऐसा ही होता है वहाँ रात्रि दिन की भांति मनाई जाती है और दिन को रात्रि समझ कर निद्रा की झोली में विश्राम किया जाता है। घर में सभी सो रहे थे, शाकिर ने दरवाजा खटखटाया, बड़ी देर के बाद सितारा ने आकर दरवाजा खोला और शाकिर के भीतर आते ही फिर बन्द कर लिया।

उससे शाकिर ने पूछा—

"बाई कहां है ?"

"सो रही हैं अपने कमरे में।"

"और कोई है वहां ?"

"(मुस्कराकर लज्जा सहित) वाह, हमसे छेड़ न किया करो, नहीं तो कह दूंगी बाई से, बड़े आए कहीं के।" शाकिर ने उसे डाँटा।

"अरे उल्लू की पट्ठी जो भी पूछता हूँ, बता न, बाई अकेली है न ?"

"हाँ, हाँ अभी तो सोई हैं, अभी-अभी तो लालाजी गए हैं यहां से।"

यह सुनकर शाकिर को कुछ क्रोध आया। उसने यासमीन के सब दायित्व स्वयं ले रखे थे और इस व्यवस्था की शर्त यह थी कि वह किसी अन्य व्यक्ति से ऐसे सम्बन्ध न रखेगी। लाला शंकरलाल के विषय में उसे अपने जासूसों से नितान्त सूचना मिल रही थी। चोरी-छुपाव से वह आते रहते हैं, लेकिन वह सुनी-अनसुनी कर देता था, आज तो सितारा कह रही थी, वह क्यों झूठ बोलने लगी।

उसके मन में भी आया कि अभी जाकर यासमीन को उसके नीच आचार पर उसे जाकर ग्लानि दे, लेकिन नीति के विचार से उसने उस बात को उस समय दबा दिया, उसका निर्णय फिर किसी समय होता रहेगा। इस समय तो उसे यासमीन से नई अवस्था प्रकट करना था और उससे उसका परामर्श लेना था, देखना था वह क्या सुझाव देती है अब।"

वह सीधा यासमीन के कमरे की ओर गया। भीतर से किवाड़ बन्द था। उस ने थपथपाया।

"ऊंह, अल्लाह, कौन है ?"

बुड़बुड़ाती हुई यासमीन बाहर आई। उसने शाकिर का उतरा हुआ चेहरा, लाल-लाल आँखें जो देखीं तो सहम-सी गई।

"यह क्या हुआ तुम्हें ?"

"यही सुनाने तो आया हूँ ?"

"तो आओ बैठो।"

यासमीन उसे अपने कमरे में ले गई और सितारा को आवाज़ दी। वह शीघ्र ही आ गई, आज्ञा हुई चाय जल्दी से बना ला, वह चाय बनाने के लिए चली और यासमीन ने फिर शाकिर से पूछा—

"कुछ कहो तो क्या बात है ?"

"एक संकट समाप्त नहीं हुआ था कि दूसरा सामने आ खड़ा हुआ है।"

"वही तो पूछ रही हूँ मैं। कहो न, यहां दिल डूबा जा रहा है तुम्हारे सिर की कसम।"

शाकिर ने सारी रामकहानी सुना डाली। यासमीन बड़े ध्यान से सुन रही थी। उसने अब तक कुल्ली की थी न पान खाया था। चाय यूं ही रखी रखी ठंडी हो गई, परन्तु वह इस निमग्नता से शाकिर की बातें सुन रही थी, कि चाय का ध्यान ही न था उसे।

यासमीन ने फिर सितारा को आवाज़ दी—"देख, यह चाय ठंडी होगई है, फिर से गर्म कर ला···और हां, पहले गिलास में पानी देना, मैं कुल्ली कर लूं। उगालदान रखा है, उठा तो ला उसे और एक गलौरी भी बनाकर मुझे दे दे।

सितारा गिलास में पानी और उगालदान लाई। वहीं बैठे-बैठे यासमीन ने कुल्ली की! इतने में सितारा गलौरी भी ले आई, उसे लेकर यासमीन ने मुंह में रखा। दाँतों के नीचे आने के बाद वह गलौरी इस प्रकार चरचराई जैसे कमज़ोर चारपाई पर कोई भारी-भरकम आदमी करवटों पर करवटें लेने लगे।

मुंह की चक्की में पान अभी तक अच्छी प्रकार पिसा नहीं था कि सितारा चाय गर्म कर लाई। पान यासमीन ने उगालदान में थूका, और दो प्यालियां अपने सामने रखकर चाय बनाने लगी। शाकिर ने कहा—

"तुम्हें चाय की सूझी है। यहां जान पर बनी जा रही है।"

"यही तो मैं भी सोच रही हूँ।"

"क्या सोचा तुमने ?"

"क्या बताऊं मेरी तो संज्ञा ही विलीन हो रही है ? ईश्वर की विचित्रता से।"

"तो मान लूँ पराजय ! डाल दूँ हथियार ?"

"यह मैं कैसे कहूं ?"

"कुछ कहो भी तो।"

दोनों प्यालियां बन चुकीं। एक उसने अपनी ओर बढ़ा ली। दूसरी शाकिर की ओर बढ़ा दी। प्याली की ओर संकेत करते हुए कहा—

"चाय पीओ, क्या सोचते हो ?"

शाकिर ने चाय की प्याली उठा ली और आहिस्ता-आहिस्ता पीने लगा।

यासमीन के हाथ में प्याली थी, एक-एक घूंट कर वह पी रही थी और भुयें ऊपर को उठाए हुए किसी गहरी चिन्तन-मुद्रा में लीन थी, निपट मौन।

शाकिर की प्याली समाप्त हो गई। लेकिन यासमीन की प्याली आधी से अधिक शेष थी, वह निरन्तर सोच रही थी। इतने में सितारा सामने आकर खड़ी हो गई। यासमीन ने जल्दी-जल्दी चाय पी और ट्रे की ओर देखकर कंठ हिला दिया। सितारा ने बरतन बढ़ाए और चल दी। यासमीन अब भी गुमसुम बैठी थी।

बड़ी देर के बाद यासमीन ने पूछा—

"तो अब तुम कुछ नहीं कर सकते ?"

"तुम्हीं बताओ, इस दशा में क्या कर सकता हूं ?"

"हाँ ठीक है, चुप साध लो तुम।"

"सुरैया को जाने दूँ शाहद के घर ?"

"यह नहीं होना चाहिए।"

"क्यों ? यही तो पूछता हूं मैं।"

"अनवर अपना काम करेगा, उसके घर में न कोई मनसूर है और न सुरैया। शाकिर भी नहीं।"

"क्या करेगा वह ?"

"यह अभी नहीं बताऊँगी, इस समय केवल इतना कह सकती हूं कि तुम चिन्ता न करो। जो काम तुमसे न हो, वह मैं कर लूँगी, जो संकट तुमसे दूर न हुआ, उसे अनवर दूर कर देगा।"

"अच्छा, भई देख लेंगे तुम्हें और तुम्हारे अनवर को।"

यह बातें हो रही थीं कि अनवर आ गया। उसे देखकर यासमीना मुस्कराई, कहने लगी—

"याद है अनवर वो कल की बात ?"

"हाँ खूब याद है।"

"तो फिर कब ?"

"आज ही और कब ?"

"शाबाश ! भैया ! खूब मन से काम करना। देख कितना बड़ा पुरस्कार रखा है शाकिर साहब ने तेरे लिए।"

"हाँ लालच में तो जान पर खेल रहा हूं मैं।"

यह कहकर अनवर तो मूछों पर बल देता हुआ चला गया और यासमीन बड़े गर्व से देखने लगी उसे।

"क्या हत्या करवा रही हो शाहद की ?"

"आ गया प्रेम बहनोई पर।"

"लाहोल वला कुव्वत।"

"सच कहना।"

"कुछ पागल हो गई हो ? मैं तो एक बात पूछ रहा था।"

"नहीं हत्या तो नहीं करवाऊँगी, मजा अवश्य चखाऊँगी।"

"आखिर क्या प्रोग्राम है तुम्हारा ?"

"यह भेद की बातें हैं, बताया नहीं करते ।"

"भेद मुझसे भी"

"हां भला इसीमें है ।"

"शायद मैं कुछ सहायता कर सकूं ?"

"तुम्हारी अधिकतर सहायता यह है कि कि अड़चन मत डालो, जो हो रहा है, होने दो ।"

"बहुत खूब सरकार ।"

यह कहते-कहते किसी सीमा तक शाकिर के होंट मुस्कराहट से फैले परन्तु शीघ्र ही फिर वह सचेत हो गया । मौन हो गया ।

यासमीन ने फिर पानदान खोला और वह पान बनाने लगी ।

३०

अनवर ने सुरैया को देखा नहीं था। लेकिन यासमीन ने उसके सौन्दर्य आकर्षण की इतना प्रशंसा की थी कि वह उसके प्रेम में दीवाना हो गया था। वह सुरैया का अदृश्य प्रेमी था और उसके प्रेम में सब कुछ करने को तैयार था, वह शाहद को जानता भी नहीं था, कभी उससे मिलना भी नहीं हुआ था, उसे कोई शत्रुता भी शाहद से नहीं थी लेकिन—

'रिंदे मैनोश को है इसलिए तोबा की तलाश
कहीं मिल जाए तो कमबख्त के टुकड़े करदे'

वह शाहद की खोज में था, घात लगाए हुए था। कि कहीं मुटभेड़ हो जाए और उसे मजा चखा दे सुरैया के साथ विवाह करने का वही। सुरैया जिसे अब तक उसकी इच्छुक दृष्टि से साक्षात्कार नहीं हुआ था, लेकिन जो उसके मन पर शासक की भाँति शासन कर रही थी, जिसका चित्र उसकी कल्पना ने स्वयं रचा था और जिस हृदय ने श्रद्धा अर्पित की थी, जिसे पाने के लिए वह हर भय को मोल लेने का साहस अपने हृदय में पाता था।

कालेज की शिक्षा जब से शाहद ने आरम्भ की थी, उसने जहरा के निवास-स्थान से स्वयं ही अपनी इच्छा से और इसके रोग के कारण पृथक् फ्लेट ले लिया था जिसमें वह निवास करता था।

इस पृथक् निवास का कारण था कि उसे ज़हरा के घर का वातावरण पढ़ाई के लिए लाभकारी नहीं था। उसे ज़हरा से अत्यन्त प्रेम था, उतना ही जितना एक भाई को बहन से होना चाहिए; लेकिन वहाँ उसे समानाधिकार नहीं प्राप्त था। ज़हरा का आग्रह ऊँघते को ठेलते का बहाना साबित हुआ

और वहाँ से वह एक अलग फ्लैट में उठ आया। एक बूढ़ा नौकर साथ था जो घर की देख-भाल भी करता था और उसका भोजन भी बनाता था।

कई मित्रों ने आग्रह किया कि होस्टल में रहो लेकिन इस आग्रह से वह प्रभावित नहीं हुआ। वह जानता था कि वहाँ पढ़ाई कम होती है, खेल ज्यादा होता है। वह था किताबों का कीड़ा—वह ऐसा वातावरण चाहता था जहाँ उसकी शक्ति को कोई भंग न कर सके, असहाय उसने एक फ्लैट किराये पर ले लिया, इस निर्णय में ज़हरा भी भागी थी।

वह एक अलग मोहल्ले में अलग-अलग जीवन व्यतीत करने लगा। उस का यह नित्य नियम था कि वह प्रात: दो-तीन मील दौड़ता, फिर अपने घर आकर नाश्ता करता, कुछ देर अध्ययन में समय व्यतीत करता, फिर ज़हरा की ओर से होकर कालेज चला जाता।

शाहद टहल कर वापिस आ रहा था, कि उसे एक बुढ़िया मिली रोती हुई, मुंह बसोरती हुई—

"क्या हुआ तुम्हें ?" शाहद ने पूछा।

"मेरा एक ही बेटा है, उसकी पत्नी दम तोड़ रही है, उसे तार देना है।"

"तो पैसे चाहियें तुम्हें ?"

"नहीं बेटा।"

"फिर क्या चाहती हो ?"

"अंग्रेज़ी में एक तार लिख दो बस, बस इतना काम कर दो मेरा।"

"हाँ हाँ मैं तैयार हूँ, कहाँ है घर तुम्हारा ?"

"वह रहा सामने।"

आगे-आगे बुढ़िया और पीछे-पीछे शाहद, दोनों एक घर में प्रविष्ट हुए। बरामदे से होती हुई बुढ़िया एक कमरे में दाखिल हुई, दरवाजे पर पहुँचकर उसने कहा—

"आ जाओ बेटा भीतर।"

वहाँ एक सुन्दर युवती चारपाई पर लेटी थी, चेहरे पर कोई विशेष चिन्ह

बीमारी का नहीं था, कुर्सी पर शाहद को बिठाकर बुढ़िया ने कहा—'बेटा मैं कलम-दवात ले आऊं ? अभी आई, शाहद उत्तर नहीं दे पाया था कि वह बाहर निकल गई।

इतनी देर भी अकेला बैठना वहाँ शाहद को उपयुक्त नहीं लगा। वह उठा कि बाहर बरामदे में उसकी प्रतीक्षा करे। दरवाजे तक पहुँचा था कि एक स्वस्थ हट्टा-कट्टा युवक मूछों पर ताव देता हुआ हाथ में एक बड़ा सा डंडा लिए हुए मिला।

"कौन हो तुम ?"

"बड़ी बी, लाई हैं मुझे।"

"क्यों ?"

"तार लिखवायेंगी अपने बेटे को।"

"अबे बकता क्या है ? कौन बड़ी बी, कैसा तार ? बदमाश कहीं का ! मुझे धोखा देता है। मारते-मारते हुलिया बिगाड़ दूंगा साले का।"

"यह आप क्या कह रहे है ?"

"अबे आपके बच्चे तू यहाँ आया क्यों ? देख तो अभी तेरा और तेरी परिचित स्त्री का (पलंग पर लेटी हुई स्त्री की ओर संकेत करके) क्या हाल बनाता हूं ? हमारे पीछे यों गुलछर्रे उड़ाए जाते हैं ?"

"यह कहकर वह उस स्त्री की ओर पलटा।

"बता कौन है यह तेरा धगड़ ?"

वह स्त्री रोने लगी, कहने लगी—

"चरणों पर पड़ती हूँ तुम्हारे क्षमा कर दो, भूल हुई।"

"(ठोकर मारकर) में पूछता हूँ, यह है कौन ?

"आते रहते हैं मेरे पास।"

"मुंह काला करने ?"

स्त्री चुप रही। वह युवक फिर शाहद की ओर आकृष्ट हुआ—

"क्यों जवान आज तो बुरे फंसे।"

"यह सब झूठ है, मैं इस स्त्री को जानता भी नहीं।"

"तो यह घर तेरे बाप का है ? यहाँ आया क्यों ?"

"कह तो रहा हूं तार लिखने के लिए आया था बड़ी बी के साथ।"

"अच्छा बेटा, बुलाता हूँ पुलिस को अभी, वह काट देगी तुम्हारा तार।"

वह स्त्री उसके पाँव पर गिर पड़ी और रोने लगी।

"ऐसा न करो, पुलिस आएगी, तो मैं भी तो पकड़ी जाऊंगी।"

"तो छोड़ दूँ इसे ?"

"मैं कब कहती हूं ?"

"फिर क्या बकती है ?"

"दो-चार जूते मारकर निकाल दो इसे घर से, सजा मिल जायेगी।"

शाहद विस्मय से इन लोगों की बातें सुन रहा था, उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या कहे, क्या करे ? किस प्रकार छुटकारा हो ?

वह व्यक्ति शाहद के निकट आया—

"बैठ जाओ, इस कुर्सी पर।"

शाहद बैठ गया, उसने फिर कहा—

"क्या नाम है तुम्हारा ?"

"शाहद !"

"वही शाहद ?"

"कौन वही ?'

"जिससे शाकिर की बहिन ने विवाह किया है ?"

"हाँ वही, तुम्हें कैसे पता चला ?"

"मैं क्या सारा शहर जानता है।"

शाहद मौन बैठा रहा, उसने फिर पूछा—

"यार इतनी अच्छी पत्नी के होते हुए भी तुम मेरी पत्नी पर हाथ साफ करते रहे ?"

"यह गलत है, झूठ है।"

"कौन मानेगा तुम्हारी बात को सच ? इस समय सुरैया आ जाए, तो वह भी तुम पर धिक्कार देगी।"

"सुरैया मुझे खूब पहचानती है।"

"अच्छा हटाओ इन बातों को, सौदा करते हो बोलो ?"

"कैसा सौदा ?"

"हम तुम पत्नी बदलकर भाई-भाई बन जायें।"

"(क्रोध के साथ) क्या मतलब ?"

"देखो जवान तेवर न दिखाओ, क्रोध में आना हमें भी आता है, हाँ बताओ, स्वीकार है मेरी बात ?"

"कदापि नहीं।"

"सोच लो अच्छी प्रकार।"

"सोच चुका।"

"तो तुम यहाँ से जीवित वापिस नहीं लौट पाओगे बेटा। हड्डियों तक का पता नहीं चलेगा, कुछ हंसी-खेल समझे हो पराई बहू-बेटियों पर हाथ डालना।'

"यह झूठा आरोप है मुझ पर।"

"अच्छा तो अब फैसला हो जाए हमारा-तुम्हारा।"

यह कहकर उसने उस स्त्री से कहा, जा, मेरा वह छुरा ले आ।"

स्त्री चारपाई से उठी और अलमारी में से एक बहुत बड़ा चमकदार छुरा ले आई, वह सिर से पाँव तक काँप रही थी।

"हाए, क्या मार डालोगे इन्हें ?"

"हाँ।"

"छोड़ो, मुझे क्षमा कर दो, अब कभी नहीं करूंगी ऐसा, यह भी हाथ जोड़ते है।"

"कदापि नहीं, मैं हाथ नहीं जोड़ता, मैं इस स्त्री को जानता तक भी नहीं।"

"अभी सब कुछ जान लोगे तुम !"

यह कहकर वह छुरी चमकाता हुआ, शाहद की ओर बढ़ा, उस स्त्री ने फिर उसके पांव पकड़ लिए, उसने ठोकर मारी।

"बड़ा चाव है धगड़े का, और वह चूकता भी नहीं मुझ पर। ऐसा ही इसका प्रेम है तो सहमत कर ले इसे कि सुरैया को त्याग दे और तुम दोनों आनन्द मनाओ !"

"हाए अल्लाह, तुम छोड़ दोगे मुझे ?"

"झूठे बरतन में भोजन मैं नहीं करता।"

"तो मैं कहाँ जाऊंगी ?"

"अपने इसी प्रेमी के साथ।

वह स्त्री शाहद के पास आई, उसने हाथ जोड़ कर कहा—"दया करो।"

"दया करूं मैं ?"

"मैं तुम्हारी आजीवन सेवा करूंगी, तुमने मेरी जवानी लूटी है, मेरे साथ विलास किया है, मेरे पति को मुझसे असम्पृक्त कर दिया है, मेरी ओर देखो, मैं भी कुरूप नहीं हूँ। मैं वही तो हूँ जिसे तुम प्यार करते थे। जिसके कंठ में तुम बाहें डाला करते थे। जिसके विरह में तुम रोया करते थे, जिससे सौगन्ध खा-खाकर प्रेम प्रकट किया था, मुझे न ठुकराओ, नई दुनिया न बसाओ, छोड़ो सुरैया विचार, न जाने कौन है यह मेरी सौत। मुझसे तुम कहते थे कि भाग चल मेरे साथ, तुझसे विवाह कर लूंगा, तेरे बिना किसी अन्य से मैं विवाह नहीं कर ककता। फिर अब मैं क्या सुन रही हूं ? कौन है वह सुरैया जिसने तुम्हारे हृदय से मुझे उतार दिया, और स्वयं आसीन हो गई उस पर।"

यह कहकर वह फूट-फूटकर रोने लगी। शाहद विस्मित और चकित उस की बातें सुन रहा था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था, यह कहानी क्या है ?" यह स्त्री कौन है ? यह व्यक्ति कौन है ?

वह इस स्त्री की बातें सुनता रहा, फिर उसने जोर से उसे झिड़का।

"चुप रहो, मैं तुम्हें बिल्कुल नहीं जानता। मैं तुम्हें अपनी पत्नी नहीं बना सकता, मैं सुरैया को नहीं छोड़ सकता।"

यह कहकर वह बाहर जाने के मन्तव्य से चला, उस व्यक्ति ने बढ़कर शाहद को कंठ से पकड़ा, कहा—

"इतने सस्ते नहीं छूट पाओगे जनाब।"

शाहद ने एक झटका देकर उससे अपना गला छुड़ा लिया, अब तो उसकी आँखों में रक्त उतर आया, उसने कहा—"एक चोरी और फिर सीनाज़ोरी! चले हो बेटा अपना बल दिखाने, जरा इन कलाइयों की शक्ति भी तो देखो लो।

यह कहकर वह छुरा लेकर शाहद की ओर लपका, शाहद बिल्कुल निहत्था था, लेकिन उसने अत्यन्त चतुरता से उसके वार को रोक लिया। वह पहलवान बढ़-बढ़कर शाहद पर वार करता था, लेकिन शाहद के दुबले-पतले शरीर में न जाने कहाँ से इतनी शक्ति आ गई थी कि वह न केवल इसके वारों को रोक रहा था, बल्कि कभी-कभी उसे एक-दो घूंसे भी लगा रहा था।

बड़ी देर तक इन दोनों में गुत्थम-गुत्था होती रही, न वह जीत सका, न यह आखिर शाहद ने उसका छुरा छीन लिया और उसे गिराकर उसके वक्ष पर चढ़ बैठा। वह तेज़ छुरा अब उसके हाथ में था और पहलवान का वक्ष कुछ इन्चों के फासले पर। यह रंग देखकर वह स्त्री चीखने लगी—"दौड़ो, सहायता करो······"

शाहद ने कहा—"अब यदि तुम्हारे मुंह से एक आवाज़ भी निकली, तो यह छुरा इस आदमी के वक्ष के पार होगा, फिर जो कुछ होगा, होता रहेगा।"

अब यह स्त्री भी गिड़गिड़ा रही थी और पहलवान साहब भी। छुरा शाहद के हाथ में था। शाहद ने कहा—"मैं तुम्हारी जान नहीं लूंगा लेकिन एक शर्त है, मुझे यह बताओ, यह कहानी क्या है? तुम कौन हो, यह स्त्री कौन है? वह बुढ़िया कौन थी?

पहलवान का सांस फूल रहा था। उसने कहा—

"मुझे छोड़ दो, मैं बताता हूं सारी कहानी।"

शाहद ने उस स्त्री से छुरा ताने-ताने कहा—

"इस चारपाई की रस्सी खोलो और इन पहलवान साहब के हाथ-पांव बाँध दो। तब उतरूँगा मैं इनके वक्ष से। लेकिन याद रखना ज़रा भी तुमने शरारत की, और यह गए इस दुनिया से दूसरी दुनिया में।"

स्त्री ने रस्सी खोली। पहले उसने पहलवान के दोनों पांव अच्छी प्रकार बाँधे, फिर उसके दोनों हाथ खूब शक्तिपूर्वक कस दिये रस्सी में।

फिर बोली—"अब तो छोड़ दो इन्हें!"

शाहद उसके वक्ष से उतर गया। पहलवान धरती पर एक मोटी गठरी की भांति जकड़ा पड़ा था। शाहद कुरसी पर आकर बैठ गया। स्त्री उसी चारपाई के एक कोने पर आकर बैठ गई। शाहद ने पहलवान से कहा—"हाँ सुना डालो सारी कहानी। जरा भी झूंठ बोले तो यह छुरा तुम्हारा और इस स्त्री का रक्त पिए बिना नहीं रहेगा।"

अनवर ने सारी कहानी शाहद को सुना दी। अब सब कुछ शाहद की समझ में आ गया। उसने पूछा वह बुढ़िया कौन थी? अनवर ने कहा—"थी एक किराये की औरत।"

"और यह औरत? शाहद ने पूछा।

"यह भी एक वेश्या, मेरी मित्र है।"

शाहद 'हूं' कहकर उठा। रस्सी बहुत बड़ी थी—अनवर के बन्धने के पश्चात् भी बच गई थी। उसी छुरे से उसने शेष रस्सी को काटा और उस स्त्री को भी चारपाई पर लिटाकर जकड़ दिया, वह रोने लगी, शाहद ने कहा—ख़बरदार आवाज निकली तो……छुरा पेट में घोंप दूँगा।"

अनवर ने कहा—"अब तो मैंने सब कुछ बता दिया, अब तो मुझे छोड़ दो।"

शाहद ने कहा—"इतना मूर्ख मुझे न समझो, तुम यहीं बंधे पड़े रहोगे। (छुरा फेंककर) यह रहा तुम्हारा छुरा। इस संकट से या तो तुम्हें यासमीन।

मुक्ति दिलाएगी या शाकिर साहब । मैं जाता हूं । बाहर से जब वह इन्तजार करते-करते थक जायेंगे, तो स्वयं ही आयेंगे तुम्हारी दशा जानने । उन्हींके साथ सुबह-सुबह ही चले जाना । हां इतना और कहे देता हूं कि भविष्य में कभी ऐसी बात न करना, नहीं तो बुरी तरह फंस जाओगे ।"

यह कहकर शाहद चला, लेकिन फिर लौटा, उसने कहा—

"तुम लोग भयंकर बदमाश हो, कोई कमजोर पहलू नहीं छोड़ूँगा ।" यह कहकर उसने कमरा की वस्तुयें देखनी शुरू कीं । अलमारी में कलम-दवात, कागज, सब मौजूद था । उसने अनवर की ओर से एक प्रतिज्ञा पत्र लिखा कि मैं शाकिर की और यासमीन की ओर से शाहद को मारने या मार डालने पर उतारू था । लेकिन मुकाबिले में उससे हार गया । उसका प्रतिज्ञा-पत्र लिखता हूं ।

यह कथन लिखकर उसने अनवर से कहा—"दस्तखत करो ।"

अनवर ने दस्तखत किए, शाहद ने धन्यवाद किया । कमरे के दरवाजे की बाहर से कुंडी लगाई । फिर बरामदे से होता हुआ बाहर के दरवाजे तक पहुँचा जिसे भीतर से अनवर ने आते समय बंद कर लिया था । शाहद उसे खोलकर बाहर निकला । बाहर के दरवाजे की भी उसने जन्जीर चढ़ा दी और घर की ओर चल पड़ा ।

३१

बड़ी देर हो गई। अनवर वापिस नहीं आया, यासमीन की आँखें रास्ता देखते-देखते पथरा गईं। शाकिर को भी उलझन होने लगी। वह कमरे में टहल रहा था और यासमीन बैठी हुई छालियां काट रही थी, उसने शाकिर से कहा—

"अनवर नहीं आया अभी तक।"

"हां, यही मैं भी सोच रहा हूं।"

"कहीं, कुछ पट तो नहीं हो गया मामला ?"

"क्या कहूं मैं स्वयं हैरान हूं।"

"तो जाओ, देख आओ न जाकर।"

"मैं चला तो जाऊँ, लेकिन जरा ध्यान करके रुक जाता हूं।"

"ऐ भाड़ में गई तुम्हारी चेतावनी ! यहाँ तो उसके जीवन का डर लग रहा है और पड़ी है तुम्हें ध्यान की। यहां तो उसके प्राणों का प्रश्न है। और तुम हो कि अपने ध्यान का राग अलाप रहे हो। उठो, जाओ न जाने मुझे क्यों सिहरन से हो रही है इस समय।"

"जाता हूं, दस-पाँच मिनट और प्रतीक्षा कर लो।"

"मैं सिर फोड़ डालूंगी अपना यहीं पर—वाह !"

यह कहते-कहते यासमीन की आंखों में आँसू भर आए और रोने लगी। शाकिर ने कहा—

"अरे, तुम रोने लगीं, अच्छा जल्दी से आँसू पोंछो, मैं जाता हूं।"

यह कहकर शाकिर बाहर निकला। अनवर ने अपना सारा प्रोग्राम

और स्कीम पहले ही से यासमीन और शाकिर की कान्फ्रेंस में मन्जूर करा ली थी।

एक-बात बता दी थी, वह क्या करेगा, उसका कार्य-क्षेत्र कहाँ होगा। तथापि शाकिर को गन्तव्य तक पहुंचने में कष्ट नहीं हुआ।

उसने एक गाड़ी ली और घटना बिन्दु की ओर चल पड़ा।

थोड़ी देर पश्चात् वह उस मोहल्ला में पहुँच गया, इधर-उधर देखता हुआ, उस घर पर पहुंचा।जो कितनी देर से खाली था, मगर इसी आवश्यकता के लिए अनवर ने एक व्यक्ति के नाम पर किराये पर ले लिया था।

शाकिर ने देखा दरवाजे की जन्जीर बाहर से लगी हुई है। वह सोचने लगा, अनवर यहाँ आया नहीं ? यदि आया तो अपना कार्य करके चला गया। लेकिन जन्जीर में ताला क्यों नहीं है ? कहीं ऐसा तो नहीं है, वह कहीं और गया हो और अभी आता हो, क्यों न मैं भीतर जाकर बैठूं और वहीं प्रतीक्षा करूँ।

यह सोचकर वह जन्जीर खोलकर भीतर दाखिल हुआ। घर में बिल्कुल खामोशी छाई हुई थी। वह बरामदे में टहलने लगा, कमरे के अन्दर कुछ फ़रियाद की नाईं आवाज़ आ रही थी, उसके कान खड़े हुए, यह क्या बात है ? कमरा बाहर से बंद है और भीतर से बातों की आवाज आ रही है। वह भूत-प्रेतों में कुछ अधिक विश्वास नहीं करता था, लेकिन कभी-कभी वह उनके अस्तित्व को अस्वीकार नहीं करता था।

पहले तो उसने सोचा, चल दे यहाँ से। लेकिन फिर मन में आया कि यासमीन को क्या उत्तर देगा ? साहस बटोरकर वह आगे बढ़ा, कमरे के पास पहुँचा, दरवाज़े से झांकने का प्रयास किया, परन्तु सफल नहीं हुआ, आवाज़ निरन्तर आ रही थी, एक आवाज स्त्री की प्रतीत होती थी, वह रो रही थी और दूसरी आवाज पुरुष की थी और वह कुछ क्रोध कर रहा था—'अरे यह याव खोलूँ दरवाज़ा।'

साहस बटोरकर उसने दरवाज़ा खोला। उसकी आँखों ने जो दृश्य देखा, उसकी उसे कभी आशा भी नहीं थी। वह पहलवानों का पहलवान अनवर एक रस्सी में बंधा पड़ा हुआ था। उसकी आंखों से आँसू भी बह रहे थे और क्रोध की लपटें भी निकल रही थीं।

सामने चारपाई पर गुलशन जकड़ी हुई पड़ी थी। वह बच्चों की नाईं विह्वल होकर रो रही थी और अनवर को एक-एक श्वास में सौ-सौ गालियाँ दे रही थी। छुरी यदि दूर न होती तो जिसके हाथ में भी आ जाती, वह दूसरे पर आक्रमण कर बैठता।

शाकिर आगे बढ़ा। उसने अनवर और गुलशन को कैद से मुक्त किया और पूछा—

"यह क्या हुआ? यह मैं क्या देख रहा हूँ? कुछ बताओ तो?

अनवर ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह मूछों पर तेबर चढ़ाकर कमरे में टहलने लगा। अब शाकिर गुलशन की ओर आकृष्ट हुआ, उसने कहा—"खुदा की बन्दी, तू ही बता क्या गुज़री तुम पर?" शिकार करने के स्थान पर तुम कैसे शिकार हुए?"

गुलशन ने सारी कहानी शाकिर को बता दी, वह ध्यानपूर्वक सुनता रहा—सोचने लगा। यह आयोजन भी निष्फल हुआ, यह वार भी खाली गया।

उसने अनवर से कहा—"मैं यासमीन के पास जाता हूँ, तुम गुलशन को को इसके घर छोड़ आओ। वहीं बातें होंगी।"

यासमीन ने देखा शाकिर जैसे गया था, वैसे ही खाली हाथ वापिस आ रहा है, उसने अधीरता से पूछा—

"और अनवर?"

"आता है अभी तुम्हारा वह रुस्तम। इस व्यंग्य को यासमीन ने भांप लिया और बोली—

"तुम्हारे सामने रुस्तमी का कौन दावा कर सकता है ? ऐसे वीर भी दुनिया ने कम देखे होंगे, जो अपने छोटे भाई और·········"

"चुप रहो यासमीन।"

"क्रोध में है सरकार···"

"फिर वही बक-बक·········"

"यासमीन ने आराम से गलौरी मुंह में दाबकर उत्तर देने का निर्णय किया था कि अनवर पराजित सा आता दिखाई दिया। मूछों पर उस समय भी वह तेवर चढ़ा रहा था। यासमीन ने उससे पूछा—

"कहो, क्या कर आए अनवर ?"

"कुछ नहीं।"

"शिकार निकल गया हाथ से ?"

"हाँ"

"तुम्हारे हाथ से ?"

"कह तो दिया हाँ"

यह कहकर वह अपने कमरे की ओर चल पड़ा। शाकिर ने कहा—' अब यदि तुम कोई सवाल पूछ लेतीं उससे, तो शाहद का सारा प्रतिकार तुमसे लेता।"

यासमीन बोली—

"शाहद ने क्या किया अनवर के साथ ?"

"बुला लो अनवर को, पूछ लो उससे।

"ऐ तुम्हीं बता दोगे, तो क्या हो जाएगा ?"

शाकिर ने जो कुछ देखा था, उसका वृतान्त कहना आरम्भ किया। यासमीन सुनती जाती थी और चेहरे की सफेदी को छिपाने का असफल प्रयत्न किए जा रही थी। सब कुछ सुन चुकने के पश्चात् उसने कहा—

"फिर अब ?"

"अब क्या हो सकता है ? यह आखिरी वार था, जो खाली गया ।"

"भाग्य बलवान है शाहिद का ।"

"यही समझ लो ।"

"मौत भी नहीं आ जाती कमीने को ।"

"ऐसे लोग बड़े निर्लज्ज और कठोर प्राण हो जाते हैं ।"

"बस तो जाओ, दुलहिन बनाओ सुरैया को जाकर ।"

"हाँ, अब इसकी आवश्यकता शेष रह गई है ।"

"(दाँतों के नीचे ज़ुबान दबाकर) हाए, कैसा अन्धेर हो रहा है यह ।"

३२

दूसरे दिन नित्य-प्रति की भांति शाहद जहरा के पास गया। देखते ही जहरा बोली—

"कल कहाँ रह गए थे तुम ?"

"एक जलसे में चला गया, देर हो गई, नहीं आ सका।

"जलसा अब सायं की बजाय सुबह-सुबह भी होने लगे, मुझसे उड़ते क्यों हो ?"

शाहद मुस्कराने लगा। जहरा ने कहा—

"सुनते हो ?"

"सुन रहा हूं।"

"मां ने तुम्हारे लिए एक चांद सी दुलहिन ढूंढ ली है।"

"और मुझे खबर भी नहीं ?"

"दे तो रही हूँ सूचना।"

"इस प्रकार कहीं विवाह होता है ?"

"फिर किस प्रकार होता है विवाह।"

"न मैंने उसे देखा है और न उसने मुझे देखा है, न वह मुझे जाने न मैं उसे जानूं, लेकिन बात पक्की हो गई और सेहेरा बंधने लगा, कोई बच्चों का खेल है यह।"

"तो आखिर तुम चाहते क्या हो ?"

"कुछ भी नहीं।"

"शादी नहीं करोगे ?"

"अपनी रुचि से करूंगा।"

"तो कब ? जब बूढ़े हो जाओगे ?"

"तुम्हें इतनी जल्दी क्यों है ?"

"मेरी जिन्दगी तो जैसे बुरी-भली गुजरनी थी, गुजर गई। तुम्हारी जिंदगी की राह तो प्रशस्त कर दूं, यह सुख मेरे लिए कम है ?"

"अच्छा तो सुन लो, तुम भी शुभ सूचना, क्या याद करोगी।"

"हाँ कहो।"

"मैंने शादी कर ली"।..

"एं सच।"

"हां हां भई, शादी हो गई मेरी।"

"कब, किससे ?"

"कुछ दिन हुए एक स्त्री से।"

"कौन है वह स्त्री ?,'

"नाम सुनोगी तो चौंक पड़ोगी।"

"तुम्हें मेरे सिर की सौगन्ध, बताओ कौन है वह ?"

"बता दूं ?"

"हाँ हाँ, कह तो रही हूँ।"

"पहले मुंह मीठा करो, फिर बतायेंगे।"

"पहले बता दो, फिर मुंह मीठा करेंगे।"

"न भई, इसका विश्वास नहीं।"

"मैंने अपने सिर की सौगन्ध दिलाई है तुम्हें।"

"सुरैया से।"

"कौन सुरैया ?"

शाकिर साहब की छोटी बहिन।"

"चुप, पागल कहीं का, शाकिर साहब ने सुन लिया तो कुशल नहीं है तेरी।"

"कुछ भी तो नहीं कर सके मेरा, रह गए मुंह देखते हुए।"

"शाहद हंसी-मजाक फिर कर लेना, पहले बात बताओ।"

"शाहद ने गम्भीर स्वर में कहा—

"ईश्वर की सौगन्ध, मेरा विवाह सुरैया से हो गया है।"

"अरे यह कैसे, तुम्हें कहाँ मिल गई वह ?"

शाहद ने अपना और सुरैया का मिलन, फिर प्रेम-व्यापार, फिर प्रतिज्ञा आदि की सारी कहानी सुना दी। जहरा ने पूछा—

"और शाकिर साहिब ने भी मन्जूर कर लिया ?"

"उन्होंने तो कोई संशय ही नहीं छोड़ा था विरोध में।"

"फिर कैसे हुई शादी ?"

"कैसे हुई ? यह भी खूब रही, मियाँ-बीबी राजी, तो क्या करेगा काजी।"

जहरा ने बड़ी जिज्ञासा से पूछा—

"अधकटी बात में आनन्द नहीं आता, सब कुछ बताओ, आदि से अन्त तक।"

शाहद ने शादी के बाद के सब किस्से सुना दिये और यह भी बता दिया कि मनसूर इसके पक्ष में है, उसके कारण शाकिर की एक न चल सकी, इतने में बड़ी बी आ गई—जहरा और शाहद की मां—जहरा ने छूटते ही कहा—

"लो माँ, और सुनो।"

"बेटी मैं नहीं सुनती, तुम्हें तो हर समय उपहास ही सूझता रहता है।"

"सच बड़ी रुचिपूर्ण बात है, शाहद की शादी की।"

अब तो बड़ी बी की भी उत्सुकता का तूफान आवेश में आया, उन्होंने अधीरता से पूछा—

"क्या बात है बताओ न ?"

"जाओ, नहीं बताते, हम तुमसे नाराज़ हैं ।"

बड़ी बी शाहद की ओर आकृष्ट हुईं—

"हाँ बेटा, क्या सूचना है ?"

ज़हरा ने शाहद को आँख मार दी । वह भी चुपचाप बैठा रहा, बड़ी बी बिगड़ीं—

"शुरू हो गया बहन-भाई का उपहास, अरे लगा लेना ठट्ठे जितने चाहो, बात तो बताओ !"

लेकिन शाहद और ज़हरा हंसते जा रहे थे, बड़ी बी नाराज़ हो गईं, वह रूठकर जाने लगीं । ज़हरा ने उनका आँचल पकड़ लिया—

"मेरी माँ, न जाओ ।"

"(बैठकर) तो बताओ ।"

"नहीं बताते, यह कहकर वह हंसने लगीं । बड़ी बी बड़े अहं के साथ उठीं । शाहद को दया आ गई । उसने कहा—बता भी दो बहन—"

"ज़हरा की वाणी से सारी कहानी सुनकर बड़ी बी प्रसन्नता से विह्वल हुई जा रहीं थी । उनके बूढ़े चेहरे पर उस समय यौवन की लालिमा दौड़ गई थी, उन्होंने कहा—

"बहुत जला होगा शाकिर—"

"माँ, उसका नाम न लो ।"

"क्यों न लूं बेटी, आदमी इतना भी अभिमानी न हो । स्मरण है जब तुमने बातों में कहा था, शाहद की शादी सुरैया से करदो । तो क्या कहा था उसने ।"

"खूब स्मरण है, छोड़ो इन बातों को ।"

"तुम हो बड़ी उदार हृदय, हम तो नहीं हैं । हमारा तो जी जला हुआ है । हम तो डंके की चोट पर कहेंगे, बड़े बोल का सिर नीचा......बड़ा ऊंचा समझ रहे थे अपने आपको, जैसे मान-प्रतिष्ठा उन्हीं की है, शेष सब नीच हों, तुच्छ हों ।"

"माँ मैं कह रही हूँ चुप रहो।"

"मैं तो जो जी चाहेगा, कहूँगी, बुरा लगता है तो जाओ अपने कमरे में बैठो।"

"चल शाहद चलें।"

यह कहकर जहरा अपने साथ शाहद का हाथ पकड़कर उसे अपने कमरे में ले गई। बड़ी बी निरन्तर अपनी जगह पर बैठी हुई गुड़गुड़ी पीती जा रही थीं और बुड़बुड़ाती जा रही थीं, कभी दबे स्वर में, और कभी ऊँची आवाज़ में, परन्तु निपट अकेली !

३३

शाहद और जहरा कमरे में आकर बैठ गए। उस समय दोनों गंभीर थे। वह शोखी जो अभी कुछ मिनट पहले तक, जहरा और शाहद पर छाई हुई थी, अब दूर हो चुकी थी। दोनों किसी गहरे सोच में थे।

दस-पन्द्रह मिनट बीत गए, परन्तु दोनों खोए-खोए से बैठे रहे। जहरा ने मौन की जड़ता को भंग किया—

"क्या सोच रहे हो शाहद ?"

"कुछ नहीं यूँही।"

"कोई बात है अवश्य।"

"हाँ, एक बात सोच रहा हूं।"

"हम भी सुनें।"

मैं यह सोच रहा हूं कि शाकिर साहब हमें नीच और तुच्छ समझते हैं, इसीलिए तुम्हारे कहने पर भी वह सुरैया का विवाह मुझसे करने पर सहमत नहीं हुए।"

"हाँ तो।"

"यही बात कभी सुरैया के मन में आ गई तो।"

"तो क्या होगा ?"

"हमारा जीवन कड़वा हो जाएगा, हम नष्ट हो जायेंगे।"

"लेकिन यह बात उसके मन में क्यों आने लगी ?"

"यह न कहो, व्यक्ति का मन बदल सकता है।"

"लेकिन सुरैया ऐसी होती, तो तुमसे घर वालों के इतने विरोध के उपरान्त विवाह क्यों करती ?"

"यह तो तुम सच कह रही हो, लेकिन यह बात मेरे दिल में खटकती है ।"

"आखिर क्यों, वे बहुत भले हैं तो हम कौन से नीच हैं ?"

"क्या कह रही हो बहिन ? इस संसार के सामने, इस समाज के सामने, हम भलेपन का दावा कर सकते हैं ? मुँह नोंच लेगा यह समाज हमारा-तुम्हारा ।"

"हम भी इसका मुँह नोंच सकते हैं, हम भी इसे ठुकरा सकते हैं ।"

"हम स्वयं अपना मुँह नोंच सकते हैं, स्वयं अपने ठोकर लगा सकते हैं, पर समाज का मुँह इतना ऊँचा है कि हम हिमालय पर चढ़कर भी उसे नहीं पा सकते, वह इतना कठोर है कि यदि इसे हमने ठोकर लगाई, तो हमारे अपने पाँव रक्त से लथपथ हो जायेंगे ।"

"मैं खूब जानती हूँ, इस दुनिया को, इस समाज को, यही दुनिया और समाज है जिसने मुझे वेश्या बनने पर विवश किया ।"

"और माँ को ?"

"माँ की मैं नहीं कहती, अपनी कहती हूं ।"

"आखिर किस प्रकार ?"

"क्या करोगे यह किस्सा सुनकर ?"

"अवश्य सुनूंगा ।"

शाहद तुम मेरे भाई हो, इस संसार में तुम ही एक मेरे हो, तुम्हें याद होगा, वह मैं ही थी जिसने तुम्हें इस घर से बाहर रहने और यहाँ के वातावरण से दूर रहने पर विवश किया था ?

"हाँ खूब याद है ।"

"कोई वंशज वेश्या यह कर सकती है ?"

"तो क्या माँ तुम्हारी और मेरी माँ नहीं हैं ?"

"माँ से बढ़कर हैं, लेकिन माँ नहीं हैं।"

"ऐ, यह क्या कह रही हो तुम ?"

"कहानी कह रही हूँ अपनी।"

"पीस-पीसकर बातें क्यों कर रही हो, साफ़-साफ कहो न !"

"सुनो, आज तुम्हें वह रहस्य बताती हूं जिसे मैं अपने साथ मृत्यु शैय्या पर भी ले जा रही थी। लेकिन तुम्हें उदास और खिन्न नहीं देख सकती। इसीलिए वह प्रतिज्ञा भंग करती हूँ जो मैंने स्वयं के प्रति की थी।" शाहद मौन बैठा हुआ था और जहरा कह रही थी—

"आज से बीस वर्ष पहले की बात है। मैं बारह-तेरह वर्ष की अलहड़ लड़की थी और तुम तीन वर्ष के बच्चे। हमारे माता-पिता जीवित थे। वह देवी माँ की मूर्ति आज भी मेरे मन में सजीव है, वह देवसदृश भला और सुलझा हुआ पिता, आज भी उसकी तस्वीर मेरी आँखों में जीवित है। सारे शहर में हमारा घर सदाचार और सभ्य प्रसिद्ध था। पिता किसी आफ़िस में क्लर्क थे। ढाई सौ रुपया मासिक उन्हें वेतन मिलता था ? बड़े सुख और चैन से जीवन व्यतीत हो रहा था। हमारा घर स्वर्ग का प्रतिरूप था—पिता जी बीमार पड़े, ड़ेढ़ वर्ष तक बीमार रहे, नौकरी छूट गई, जेवर बिक गए, बरतन बिक गए। जहाँ तक उधार मिल सका, लिया और पिताजी के इलाज में कोई कमी नहीं आने दी। लेकिन उनके दिन पूरे हो चुके थे।

एक दिन वे मेरी विवश मां (आँखों से आँसू बहने लगे) को रोता बिलखता छोड़कर इस संसार से विदा ले गए।

यह शोक मां सहन नहीं कर सकी। वह बीमार पड़ गई। अब हमारी आय का कोई साधन नहीं था। हमारे खाते-पीते अनुज थे, मालदार और धनवान सम्बन्धी थे—सरकार और प्रभावशाली व्यक्ति पिता जी के मित्र थे, उनकी मृत्यु पर सब रोए थे लेकिन उनकी दुख से कराहती हुई पत्नी, भूख से बिलखती हुई लड़की और लड़के पर वे हँस रहे थे। हमारे

लिए सहानुभूति किसीको नहीं थी। कोई भी हमारे दुःख का साझी नहीं था।

पिताजी के एक पुराने मित्र थे—खान बहादुर साहिब। बड़े प्रभावशाली पुरुष थे। जीवन की साठ बहारें देख चुके थे। उन्होंने अपने और पिताजी के एक मित्र द्वारा मां के पास एक संदेश भेजा। माँ सुनकर बिस्मिल हो गईं, उन्हें क्रोध आया लेकिन अपनी विवशता देखकर चुप हो गईं और आखिर उन्होंने यह संदेश स्वीकार कर लिया। अस्वीकार करतीं तो भुख का दैत्य सामने खड़ा था। मुझे और तुम्हें इस दैत्य को निगलते देखकर उनका हृदय कांप रहा था, उसे मानने पर वह विवश हो गईं। खान बहादुर साहब ने १५ रु० मासिक पारितोषिक नियत कर दिया और बड़ी सजधज से मुझे दुलहिन बनाकर अपने घर ले गए।

खान बहादुर साहिब का घर एक अच्छा सुन्दर महल था। नौकर और नौकरानियों की कमी नहीं थी। ठेकेदार थे, पर्याप्त धन इकट्ठा किया हुआ था। उन्होंने मेरे ऊपर तो बहुत रुचि उन्डेली। मैं उन्हें पिताजी के जीवित होते हुए चाचा कहती थी, उनकी गोद में खेलती थी, उनकी सफेद दाढ़ी से खेली थी, उनके सुसज्जित परिधानों पर मैंने पेशाब किया। सयानी होकर उनकी कुरूप आकृति को देखकर आतंकित हो जाती थी। पिताजी से इतना भय मुझे यहीं लगता था। वे आज दूल्हा बने हुए थे और मैं उनकी दुलहिन बनाई जा रही थी और तुम्हारा यह समाज टकटकी लगाकर सब कुछ देख रहा था। इसने न मुझे संभलने दिया, न मेरा हाथ थामा और न खान बहादुर साहिब के वक्ष पर घूंसा मारकर इन्हें पीछे हटाया। मैं उनकी गोद में पहुंचती, वह इस विह्वलता से मुझ पर टूट पड़ते कि मैं अपना रोना भूल जाती और अचेत हो जाती। मेरा दुख देखकर माँ मुझसे अधिक कुढ़ती थीं। कुछ ही महीनों में इस दुःख ने उन्हें ग्रास बना लिया।

आज तुम मेरे पास आ गए। अब मैं तुम्हारी बहिन भी थी और माँ भी। मेरे स्नेह के बिन्दु केवल तुम बने हुए थे, खानबहादुर की प्रेम-भरी बातों से

मेरा जी मतलाता था, मैं उनसे घृणा करती थी, जितनी देर उनके पास मुझे रहना पड़ता था, वह समय आत्म-ग्लानि में व्यतीत होता था।

खानबहादुर साहिब डियाबिटीस के पुराने रोगी थे। कारबंकल निकला, आपरेशन हुआ और वे जीवित न रह सके।

अब मैं प्रसन्न थी कि वैधव्य के दिन सुख और चैन से व्यतीत कर दूंगी, लेकिन उनके युवक पुत्र थे, लड़कियां थीं, मेरे अतिरिक्त दो पत्नियाँ थीं। सबने षड्यन्त्र किया और घोषणा कर दी कि खानसाहिब मेरे पति नहीं थे, मेरा न सम्पत्ति में भाग है, न अन्य वस्तुओं में, जहाँ मैं चाहूं चली जाऊं।

जिस समाज के सामने मेरा विवाह हुआ था, उसी समाज ने स्वीकार कर लिया कि मैं खानबहादुर साहिब की पत्नी नहीं हूं। चार महीनों में पत्नी बनी, विधवा हुई और अपने अधिकार से वंचित करदी गई। वह समाज जो निर्धनों की कुत्साओं को कुरेद-कुरेदकर निकालता है धनवानों की बड़ी से बड़ी और जघन्य से जघन्य कुत्साएँ भी उसकी दृष्टि में नहीं समातीं।

मेरे आभूषण छीन लिए गए और मुझे कुछ कपड़ों के जोड़े देकर निकाल दिया गया। अब मैं कहाँ जाती, भाई की उंगली पकड़ी और सीधी वकील साहिब के पास पहुंची। वह अत्यन्त सहानुभूति से बर्ताव में आए। कहने लगे—जब तक मुकद्दमा न जीत लो तुम मेरी महमान हो, मैं तुम्हारे पक्ष में वकालत करूंगा और खानसाहिब के बच्चों से पाई-पाई निकलवा लूंगा।"

मैंने उन्हें धन्यवाद किया, मैं समझी यह पुरुष के रूप में देवता हैं। रात को मैं अपने कमरे में सो रही थी कि मुझे अपने वक्ष पर कोई चीज रेंगती हुई नजर आई। मैंने देखा, यह वकील महोदय का हाथ था। मैंने उनका हाथ झटक दिया, उठ बैठी और क्रोध से पूछने लगी—

"आप यहाँ क्या कर रहे थे ?"

"तुम्हारे पास आया था अपनी फीस लेने।"

"लेकिन फीस तो मेरे पास नहीं है।"

वकील साहब ने मुझे समझाया था—"इस संसार में हर चीज़ बिकती है,

हर वस्तु का एक मूल्य होता है। तुम्हारे पास फीस देने के लिए छनछनाते हुए रुपए नहीं हैं लेकिन यौवन है, मैं रुपयों के स्थान पर यौवन का सौदा कर लूंगा। मैं तुम्हें इतना मूर्ख नहीं समझता कि तुम इस सौदे से इन्कार करोगी। लेकिन यदि इन्कार हो, तो भी बल का प्रयोग नहीं करता। कमरे का दरवाजा मैं खोल देता हूँ, तुम अभी जा सकती हो।

मैं जाने के लिए झटककर उठी। परन्तु सहसा मन में आया कि जाऊं कहां ? मेरा है कौन ? कौन देगा आश्रय ? मैं फिर बैठ गई, वकील साहिब ने बड़े आग्रह के साथ मेरे गले में बाहें डाल दीं, मुझे अपनी बाहों में कस लिया। मेरे चेहरे और बालों से उनकी उंगलियां खेलने लगीं। उन्होंने कहा, तुम बड़ी समझदार हो। फिर वह मेरे यौवन से अपनी फीस लेने लगे।

एक सप्ताह तक नित्य वह अपनी फीस मुझसे लेते रहे। लेकिन मुझे उनके नौकर से मालूम हुआ कि वे खानबहादुर साहिब के दोस्त हैं और उनके लड़कों को अपना भाई समझते हैं।

एक दिन मैंने उनसे आग्रह किया कि आखिर आप मुकद्दमा क्यों नहीं चलाते ? छोटी सी फीस लेकर उन्होंने कहा—"जल्दी काहे की है ? और भई खा रही हो, पी रही हो, पहन रही हो, रह रही हो, हो जाएगा मुकद्दमा भी आरम्भ।"

एक दिन मैंने सुना, वकील साहिब की पत्नी मायके से आ रही हैं। वकील साहिब घबराए, मेरे पास आकर कहने लगे, "सुनती हो वह कल आरही है, उनका स्वभाव जरा कड़ा है, अब तुम्हारा यहां रहना ठीक नहीं। वह नौकरों की जो कोठरी है उसमें चली जाओ तुम, मैं कह दूंगा, तुम्हारे लिए एक अच्छी सी नौकरानी नियत करदी है। स्पष्टतः तुम नौकरानी और वस्तुतः मेरे मन पर शासन करती रहना, यह कहकर वह अपनी फीस की एक और किस्त लेने वाले थे, परन्तु मैंने उन्हें अवसर नहीं दिया। अब मुअक्कल से नौकरानी बन गई थी।

वकील साहब की पत्नी आईं, क्रोध उनकी नाक पर चढ़ा रहता था। एक दिन कहीं उन्होंने वकील साहब को मुझसे फीस वसूल करते देख लिया।

बस फिर क्या था प्रलय आ गई—वकील साहब की तो न जाने इन्होंने क्या दशा बनाई, परन्तु मुझे खड़े-खड़े बाहर निकाल दिया—समाज अब भी टस-से-मस नहीं हुआ। वकील साहब उसके नेता बने रहे और मैं पथ पर आश्रित होगई।

वकील साहब के पास से अपने नन्ने भाई की उंगली पकड़कर बाहर निकली—या अल्लाह, अब कहाँ जाऊँ? न पथ से परिचित, न गन्तव्य से से। लेकिन कदम निरन्तर आगे बढ़े चले जा रहे थे।

रास्ता में एक बैलगाड़ी में एक सुशिक्षित स्त्री बैठी दिखाई दी। शहर के पास एक गाँव था—उसकी जमींदारनी थी, शहर कुछ चीजें खरीदने आई थीं, उन्होंने मेरी ओर देखा, मैंने उनकी ओर देखा। समझीं कोई भिखारन है। गाड़ी रुकवाकर उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया, मैं गई, उन्होंने पूछा—

"कौन है तू? भिखारिन?"

"हाँ भिखारिन, मैंने उत्तर दिया।"

"क्यों भीख माँगती हैं तू?"

"तो पेट कैसे भरे?"

"नौकरी करेगी, हमारे बच्चे को खेल खिला दिया करना?"

"कर लूंगी नौकरी।"

"वेतन क्या लेगी?"

"जो आप देंगी—"

"दो रुपया मासिक और भोजन।"

"यही सही।"

"ईद बकरईद पर इनाम।"

"बहुत अच्छा।"

"तो आ बैठ जा गाड़ी पर—

मैं गाड़ी पर बैठ गई, उन्होंने मेरे भाई की ओर देखा, पूछा—'यह

कौन है तेरा ?" मैंने कहा—"मेरा भाई है।" उन्होंनेपूछा—"माँ-बाप मर गए तेरे ?"

मैं रोने लगी, वह पान चबाने लगीं।

जमीनदार की पत्नी बहुत अच्छी थी। लेकिन जमीनदार दानव का रूप था। उसने मुझे देखा, मुस्कराया और बाहर चला गया। मैं उसकी मुस्कराहट देखकर काँप गई। उस मुस्कराहट में शरारत नाच रही थी—

दो-तीन दिन शाँति से व्यतीत हो गए। कोई विशेष घटना नहीं हुई। एक दिन दुपहर के समय जब सब लोग सो रहे थे, जमीदार साहब आए, उन्होंने संकेत से मुझे बुलाया। मैं गई उनके पास, कहने लगे, बेगम तो सो रही है, तू चल मेरे सिर में तेल डाल, बड़े जोर का दर्द हो रहा है।"

मैं उनके साथ-साथ ऊपर गई, उन्होंने जैसे अनौपचारिकता से सब कुछ पहले से आयोजित किया हुआ था। कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया—मैं मुंह देखती रह गई उनका। कहने लगे—"अजब पगली है, मुंह क्या देख रही है मेरा, चल इधर, यह कहकर उन्होंने मुझे पलंग पर इस प्रकार डाल लिया जैसे क़साई बकरे को काटते समय पछाड़ देता है।

फिर तो यह नित्य का व्यवहार हो गया। जब देखो, उनके शुभ सिर में दर्द हो रहा है। उनके सिर का दर्द उस समय जाता था जब मेरी रग-रग में दर्द होने लगता था।

समाज की यह दशा थी, कि मैं तो किसी श्रेणी में ही नहीं थी, और जमीनदार साहब नहीं तो समाज विधवा लगने लगता था।

जमीनदार की पत्नी अब मुझसे कुछ खटकने लगी थी, मुझसे अधिक जमीनदार साहब से। जमीनदार साहब एक दिन किसी कार्य के लिए शहर गए और बेगम साहिबा ने क्या किया, ईदू से मेरा विवाह कर दिया—और मैं एक दम उसके घर भेजी गई। चट मंगनी, पट विवाह। मेरा उसका कोई

जोड़ नहीं था—वह बिल्कुल गंवार था, मैं थोड़ी-बहुत पढ़ी लिखी थी, सभ्य थी, संस्कृत थी, लेकिन वह मेरा पति था, ईश्वर की देन, और मैं उसकी पत्नी थी, एक अबला ! और समाज यह खेल देख-देखकर मुस्करा रहा था।

ईदू किसी मिल में नौकर था। सालभर में दो-चार बार सप्ताह दो सप्ताह के लिए अपने घर और खेत की खबर लेने जाता था। इस बार भी वह एक सप्ताह से अधिक नहीं रहा, शहर जाने लगा तो मुझे भी अपने साथ ले गया, वह आमल था मैं मामूल—जो कहता था, मुझे करना पड़ता था।

फिर उसने एक पड़ौसी से सौ रुपया लेकर मुझे त्याग दिया—सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और विवश किया कि मैं उससे विवाह करलूँ, मैंने इंकार किया तो वह छुरा लेकर निकल आया कि मार डालूंगा तुझे—विवश इस जानवर से विवाह करना पड़ा—समाज की आँखें खुली हुई थीं और यह जिन्दा नाच-गाना बड़ी रुचि से सुन रहा था और देख रहा था।

इस नये घर में लगभग मास ही हुआ होगा कि नये पति महोदय शराब के नशे में मस्त लड़खड़ाते हुए कोई शेर गाते हुए आए। फ़रमाने लगे, "टांगा बाहर खड़ा है, नीचे चल।" मैंने कहा—"कहाँ ले चले हो मुझे।"

कहने लगे—"चलती है कि नहीं—या घूंसा दूँ एक पीठ पर।" अब भला संशय की कहाँ अनुमति थी, उसने टाँगे पर मुझे और मेरे भाई को सवार कराया, टाँगा चल पड़ा।

हम एक गली के कोने पर पहुंचे। पति महोदय के संकेत से टाँगा रुक गया। उन्होंने टाँगा वाले को विदा दी। आगे-आगे वह और पीछे-पीछे मैं तीन-चार मकान छोड़कर एक वेश्यालय में प्रविष्ट हुए। सामने एक स्त्री बैठी थी—तकिए पै पीठ लगाए।

मैं एक कौने नें दुबककर अपने भाई के साथ बैठ गई। पति महोदय ने उस स्त्री से मेरी ओर संकेत करके कहा—

"यह माल है, बोलो क्या दोगी"

यह मेरा सौदा हो रहा था, मैं बेची जा रही थी। मेरे शरीर के रोंगटे

सुई की नाईं खड़े हो गए, मुझे चक्कर आने लगा—लेकिन संयम से बैठी रही—उस स्त्री ने कहा—"तुम बताओ क्या लोगे ?"

"मैं दो हज़ार से कौड़ी कम नहीं लूंगा—"

"तो हो चुका सौदा, अपनी राह लो।"

"तो नाराज़ हो गईं जरा में आप, तुम भी तो बतलाओ, क्या दोगी—?"

"डेढ़ हज़ार पर्याप्त है। यह स्वीकार हो तो रुपया भेंट कर दूँ।"

"अब तुमसे क्या झगड़ा करें, चलो सौ रुपया कम कर लो—"

"कह दिया—ड़ेढ़ हज़ार से कौड़ी अधिक नहीं दूंगी।"

वह स्त्री मुस्कराई। पति महोदय ने रुपये गिने। चलते समय मेरी ओर देखा। मैं समझी कुछ फरमायेंगे, कहने लगे, हमने तुम्हें तलाक दी।"

यह कहकर जरा सा रुके, बीड़ी सुलगाई और जहां से आए थे, वहां चले गए।

उनके जाते ही मैं फूट-फूटकर रोने लगी। वह स्त्री मेरे निकट आई। बड़े औदार्य से मेरे शरीर पर हाथ फेरा, कहने लगी—

"रोती क्यों हो बेटी, मैं तुम्हें बड़े आराम से रखूंगी। मेरी बेटी थी निपट तुम जैसी टी. बी. के रोग से मर गई (आंसू आ गए आँखों में) उसका दुःख मुझे काटे जा रहा है—मैं तुम्हें अपनी चहेती बेटी बनाकर रखूंगी—

दुःखी न हो पोंछ डालो, अपने आँसू।"

इन बातों से मेरी ढाढस बंधी।

उस स्त्री ने ऐसा औदार्य और स्नेह का व्यवहार किया, जिसे मैं कभी नहीं भूल सकती। उसने मेरी कहानी सुन ली, उसे सचमुच मुझसे सहानुभूति हो गई। वह सचमुच अपनी पुत्री के समान समझने लगी, मेरी हर आशा वह बड़ी रुचि से पूरा करती थी।

यह मेरा सौभाग्य था कि उसकी बेटी मर गई थी। दिल का घाव

अभी नया था। उसने मुझे बेटी के समान पाला-पोसा और सुख दिया। नहीं तो वेश्याएँ जिन लड़कियों को वे खरीदती हैं, उनपर भयंकर और दुष्ट व्यवहार आरोपित करतीं हैं।

मुझ पर कोई अत्याचार नहीं हुआ। यहाँ आकर मैं पिछले अत्याचार भी भूल गई। मुझे फूलों की सेज पर पाला गया।

मैं बेटी थी। रुचि प्यार और लाड़ भी बहुत था मेरा। अब मेरी नई माँ को मेरी शिक्षा और शिक्षण की चिन्ता हुई और दो अंग्रेजी के अध्यापक और मौलवी रखे गए। गाना सिखाने के लिए उस्ताद बनने निश्चित हुए। नृत्य वह खुद सिखाती थीं। थोड़े ही दिनों में मैं प्रसिद्ध हो गई। मेरे नाच और गाने के रसिक फिर उस उजड़े हुए वेश्यालय में आने लगे। जिस कमरे कोई झाँकता नहीं था, अब लोग एकत्र ही रहा करते थे। बहुत जल्दी ही मेरे नाच और गाने की ख्याति शहरभर में फैल गई।

अब मेरे जीवन का सबसे बड़ा और कोमल अवसर आया। माँ ने मुझे अपनी बेटी बनाया था और मुझसे वही काम लेना चाहती थी जो अपनी दिवंगत बेटी से लेना चाहती थी। मैंने अम्माँ से कहा—

"यदि तुम चाहती हो कि मैं जीवित रहूं, तुम्हारी तिजोरी सोने से भर दूं तो मेरी एक बात तुम्हें माननी पड़ेगी।

उन्होंने बड़ी उत्सुकता से पूछा—

"कौन बात ?"

मैंने कहा,—"मैं नाचूंगी, गाऊंगी, जो आय होगी यह केवल तुम्हारी होगी, मैं एक पैसा भी नहीं लूंगी। जो खिलाओगी वह खाऊंगी जो पहनाओगी, वह पहनूंगी लेकिन किसी अजनबी पुरुष से एकान्त में नहीं मिलूंगी—'न अपने घर पर न उसके घर पर।"

वे सोचने लगीं। उन्होंने स्नेहपूर्ण नजरों से मेरी ओर देखकर कहा—"बेटी तेरी यह बात मुझे स्वीकार है। मेरी एक लड़की मर गई। ईश्वर ने मुझे पली-पलाई युवा दूसरी लड़की देदी—उसका हर कहा मानूंगी मैं।"

मैंने सुख की सांस ली और अम्मां के कन्धों पर सिर रखकर रोने लगी। उन्होंने मेरा माथा चूमा, सान्त्वना दी। बड़े-बड़े ग्राहक आए अम्मां के पास, हजारों रुपयों के नोट उन्होंने बिखेर दिए अम्मां के चरणों पर, परन्तु अम्मां का उत्तर एक ही था—'गाना सुन लो, नाच देख लो, इससे आगे यदि कोई बात चाहिए तो वह रहा जीना, अपनी राह लो—जवाहरात और सोने चाँदी की बड़ी से बड़ी राशि अम्मां के कदमों को डगमगा नहीं सकी—उन्होंने स्वप्न में भी मुझसे प्रतिज्ञा-भंग नहीं कराया।

शाहद, ईश्वर की साक्षी देकर कहती हूँ, जबसे इस घर में आई हूँ, तुम्हारी बहन वैसी ही पवित्र है, जैसी अपनी दिवंगत माँ की गोद में थी। किसी पुरुष ने इसके शरीर को छुआ नहीं, बड़ी से बड़ी उत्तेजना भी उसे डावाँडोल नहीं कर सकी—स्वयं इसके दिल में बड़े-बड़े तूफान उठे लेकिन ईश्वर की कृपा है कि कभी उसके पाँव नहीं डगमगाए, वह चट्टान की भाँति अपनी जगह जमी रही—संसार कुछ कहे, समाज कुछ कहे लेकिन उसका मन शांत है, उसकी चेतना में कोई चुभन, कोई ग्लानि नहीं।

अब तुम्हें यह बताने की आवश्यकता नहीं कि जिस बुढ़िया को हम माँ कहते हैं, वह हमारी माँ नहीं, लेकिन माँ से बढ़कर है।"

शाहद की आँखों में आँसू उमड़ आए थे, जहरा ने उठकर उसे वक्ष से चिपटा लिया और कहा—"तो समाज की परवाह क्यों करता है?"

"क्या तुझे अपनी बहन पर गर्व नहीं? तू सुरैया से क्यों डरता है? क्या वह तेरी बहन को अब भी दूषित समझेगी? तुझे शाकिर से भय क्यों है? वह मेरा सबसे बड़ा शत्रु है, लेकिन मेरी पवित्रता का सबसे बड़ा गवाह वही है। वह मेरे रक्त का प्यासा है, लेकिन मेरे मन में उसकी जगह है आदर और सत्कार।"

भाई-बहन में ये बातें हो रही थीं कि बड़ी बी आईं, आते ही बरसने लगीं—"आज तो दोनों ऐसे मिले हैं, जैसे देर से बिछड़े हुए मिले हों।" यह कहती हुई वह बावरचीखाना में चली गईं।

जहरा ने शाहद से कहा—"देखो एक चेतावनी देती हूं, जब तक मां

जीवित हैं उनपर यह प्रकट न होने देना कि तुम भी इस रहस्य से परिचित हो। वह तुम्हें पुत्र वर चुकी हैं, उनका दिल टूट जाएगा, यदि उन्हें यह पता चल गया कि उनका बेटा उनका नहीं रहा ?"

"सुरैया से अभी न कहूँ ?"

उससे अवश्य इस कहानी का जो हिस्सा उपयुक्त समझो, कह दो, लेकिन रहस्य को छिपाये रखने की चेतावनी तुम दोनों के लिए है। उसे यदि अपना रहस्य बताओ, तो यह प्रतिज्ञा देकर कि वह इसकी रक्षा करेगी, अमानत में खयानत नहीं करेगी।"

शाहद जब उस कमरे में था, तो उसका दिल बोझिल था।

अब वहाँ से जाने के लिए उठा तो हल्का था। प्रसन्नभाव में इतना विह्वल था कि लगता था जैसे उड़ा जा रहा हो।

३४

शाहद और सुरैया में कई दिन तक मुलाकात नहीं हुई। शाहद नित्य कालेज जाता था परन्तु सुरैया सनोवर की देखभाल में ऐसी उलझी रही कि कई दिन तक नहीं जा सकी। आज कई दिनों के पश्चात् उसकी और शाहद की मुलाकात कालेज के कम्पाउन्ड में हुई।

शाहद ने कहा—"अब तो तुम बड़े लंबे गोते लगाने लगी हो। क्या फेल हुए विद्यार्थियों की श्रेणी में सबसे आगे बढ़ जाना चाहती हो?"

सुरैया मुस्कराई। कहने लगी—

"फ़ेल होते होंगे दूसरे, यहाँ तो आज तक सबसे प्रथम ही रही।"

"हाँ लेकिन अनुपस्थितियों का आखिर परिणाम क्या होगा?"

"क्या करूं, कुछ थीं ऐसी ही विवशतायें।"

"हमें नहीं बताओगी?"

"क्या करोगे सुनके? बता दूँगी।"

फैसला हुआ कि कालेज से वापसी पर दोनों नित्य-प्रति की भाँति रानी बाग़ के उस कुन्ज पर मिलें और बातें करें।

आज कालेज की टीम एक अन्य कालेज की टीम से मैच खेलने वाली थी। इसलिए दो घंटा पहले छुट्टी हो गई। लोग मैच की तैयारियां करने लगे। शाहद और सुरैया अपने गन्तव्य की ओर अग्रसर हुए। कालेज में दो एक विशेष मित्रों के अतिरिक्त किसीको शाहद और सुरैया का सम्बन्ध मालूम नहीं था। इसलिए प्रायः सभ्य लड़के और लड़कियां उनके आचार-व्यवहार से खटकते रहते थे।

छुट्टी के बाद सबसे पहले शाहद अपनी साइकल पर बैठकर चला और आँखों से ओझल हो गया। सुरैया अपनी श्रेणी की लड़कियों से घिरी हुई थी। वे इससे आग्रह कर रहीं थीं कि वह मैच देखने चले। लेकिन वह इन्कार किए जा रही थी। रौनक ने कहा—

"भई इन्हें ज्यादा देर छेड़ो नहीं, रूठ जायेंगी यह।"

"हाँ भई ऐसा उपहास भी क्या कि व्यक्ति का दिल रोने लगे।" दरदाना बोली।

"आखिर पहेलियाँ क्यों बुझा रही हो, रो देगी सुरैया, क्यों इसका दिल रोने लगेगा, ऐ! वाह कोई बात हुई यह ?" रौनक ने कहा।

"हाँ बड़ी बात है, तुम नहीं जानतीं हम नहीं जानती हैं।" दरदाना ने बड़े भोलेपन से कहा।

"अच्छा, हमें भी बता दो न।"

"नहीं बताते, किसीका डर है।" रौनक बुड़बुड़ाई।

"बताना पड़ेगा तुम्हें यह कहकर राहत खिलखिलाने लगी।

रौनक ने कहा—

"बात यह है.........भई हम नहीं बताते।"

"फिर बदल गई......माजीन बोली।

"हमें लज्जा आती है।"

सब सहेलियों ने एक क़हक़हा लगाया। सुरैया ने हँसते-हँसते एक चुटकी ली रौनक की।

"बहुत चंचल हो गई है तू।"

"तुमसे कम।"

"मैंने क्या किया ?"

"देख लेंगे सब अभी।"

"ऊंह लो तो दीवानी ले चलो।"

यह कहकर वह चल दी ।

रौनक ने कहा—

"हाँ, जल्दी जाओ, बड़ी देर से प्रतीक्षा कर रहे होंगे बेचारे तुम्हारी !

सुरैया ने हाथ के संकेत से कहा—

"अच्छा समझूंगी तुमसे ।"

वह तो चली गई और रौनक दरदाना इत्यादि ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगीं और फिर पंछियों की नाईं इधर-उधर उड़ गईं ।

शाहद कुंज अजलत में सुरैया की प्रतीक्षा करता रहा । वह वायु की नाईं अठखेलियां करती हुई आई । वायु उसके सुनहले बालों से खेल रही थी । शाहद ने कहा—

"बड़ी देर की जनाब आते-आते ।"

"रौनक की बातों में देर हो गई ।"

"और यहाँ जान पर बन गई इतनी देर में ।"

"तोबा ! हटो भी, बातें खूब बनाते हो तुम—"

"बातें बनाता हूं या आई बात भूल जाता हूं ?"

"हमने तो नहीं देखा कभी ।"

"देखा तो बहुत होगा, कभी, महसूस नहीं किया ।"

"अच्छा भई यही सही, तुम तो पाँव झाड़कर पीछे पड़ जाते हो और कहते यह हैं कि आई बात भी भूल जाते हैं । सच कहती हूं, ये पुरुष भी आफ़त के परकाले होते हैं—तोबा अलाही ।"

"यहाँ जो बीत रही है दिल जानता है ।"

तुमको आशुफता नसीबों की खबर से क्या काम
तुम संवारा करो बैठे हुए गैसू अपने"

"खैर तो है, क्या हुआ आपको ?"

"यह समाज हमारे रास्ते में पहाड़ बनकर खड़ा हो गया है । इससे टकराकर कहीं हम अपना सिर न फोड़ लें ।

"क्या किया समाज ने आपका ?"

"क्या न किया इसने ? यही समाज है जिसने मेरी भोली बहिन को वेश्या के रूप में समाज के सामने प्रस्तुत किया। यही समाज है जो हमें हमारे प्रेम सहित निगल लेना चाहता है।"

"क्या बात हुई, जरा कहिए न ?"

"मैं एक बड़ा भय तुम्हारे गिरद मंडराते हुए देख रहा हूँ। अब तुम जल्दी से जल्दी वह घर छोड़ दो, जहां रह रही हो। मनसूर लाख तुम्हारा आत्मीय सही लेकिन.........?"

"आखिर ये कैसी बातें कर रहे हो तुम ?"

"जब मुझ पर दिन-दहाड़े बाहर हमला हो सकता है, तो तुम उनकी अपनी हो इसी घर में रहती हो। वहाँ तुम्हारे प्राणों को ख़तरा है।"

"किसने हमला किया तुम पर, कौन था वह, बताओ मुझे।"

"शाहद ने सारी कहानी सुरैया को अपनी और अनवर और गुलशन की सुनाई—वह सुन रही थी और ऐसा लग रहा था मानो आवेश में उसका रक्त जम रहा है। शाहद ने कहा—

"इस दशा में तुम्हारा वहाँ रहना खतरे से खाली नहीं।"

"तुम मेरी चिंता न करो शाहद। मैं अपनी रक्षा करना जानती हूँ, इन बुजदिलों का यह साहस नहीं हो सकता कि मुझ पर हाथ उठायें। मनसूर से सबका खून खुश्क हो जाता है, लेकिन तुम्हारे साथ जो कुछ हुआ, मैं क्षमा नहीं कर सकती। अभी जाकर वह तूफान मचाती हूँ कि सबके सब ठीक हो जायेंगे।"

"तुम वहाँ रहना नहीं छोड़ोगी ?"

"क्यों छोड़ दूँ ? मेरा घर है।"

"मैं तड़पता रहूँगा यूँही ?"

"देखो अपनी बातें, यह दूसरा प्रश्न बना दिया। जो प्रतिज्ञा हम कर चुके हैं, उस पर दृढ़ रहें—

जब तक एम. ए. में पास न हो जायें और अपने पांवों पर न खड़े हो जायें हम एक दूसरे के साथ नहीं रह सकते। यह मेरी शर्त थी जिसे तुम स्वीकार कर चुके हो। पुरुष प्रतिज्ञा से नहीं डोला करते।"

"अभी तो कई महीने हैं।"

"तुम पुरुष होकर धैर्य छोड़ देते हो, यह बुरी बात है, शाहद।"

"इस घटना की बात अपने घर में नहीं करना।"

"क्यों न करूं ?"

मेरा उद्देश्य तो यह था कि तुम सचेत हो जाओ, घर में एक नया प्रपंच खड़ा करने से क्या लाभ ?"

खूब कही, मैं तो अब ऐसी खबर लूंगी कि भैया महोदय याद रखेंगे।"

"नहीं भई, कहा मानो।"

"नहीं मानते, कुछ बलात् थोड़े ही मनवा लोगे ?"

शाहद ने कोई उत्तर नहीं दिया। जेब से सिगरेट निकाली और सुलगाने लगा।

उससे सुरैया ने कहा—

"हां यह बताओ ?"

"क्या पूछती हो ?"

"वह तुम समाज की और अपनी बहिन की क्या बात कर रहे थे ?"

'वह भी एक लम्बी कहानी है।"

"मैं तो सुनूंगी।"

"कोई कहानी सुनाने वाला थोड़ा हूँ तुम्हारा ?"

"नहीं, तो बनना पड़ेगा तुम्हें।"

"नहीं बनते।"

"मैं तो बनाकर रहूंगी।" यह कहकर सुरैया ने किताबों का बस्ता हरियाली पर रखा। उकड़ू बैठकर दोनों हाथों के घेरे में अपनी दोनों टांगें

दबाई, फिर झुककर उसने अपनी ठोड़ी अपनी जंघाओं पर टिकाई और कहने लगी—

"हां भई चलो।"

सुरैया की यह लज्जा देखकर शाहद अधीर होगया, उसने अपनी आंखें उसके चेहरे पर गाड़ दीं। वह कुछ सेकंड तक मौन रही। फिर झेंपकर उसने अपनी मुद्रा बदल दी और कहने लगी—

"ऐ, वाह क्या एक्ट (अभिनय) कर रहे हो यहाँ ?"

शाहद चौंका। यह वह ऐक्ट नहीं था जो फिल्मों में दिखाया जाता है या स्टेज पर जिसका अभिनय होता है, यह वह ऐक्ट था……

"बस-बस सुन चुकी, जान लिया, बड़ा अच्छा ऐक्ट था यह, अब वह बात सुनाओ।"

शाहद सम्भल बैठा, उसने कहा—

"सुरैया मैं तुम्हें वह रहस्य बता रहा हूँ जो आज ही मेरे कानों तक पहुंचा है और जबसे मैंने सुना है, मेरा रक्त उबल रहा है। मेरा जी चाहता है, खुदा मुझे इतनी शक्ति दे कि मैं इस समाज को इस प्रकार कुचल दूँ, नष्ट कर दूं, जिस प्रकार यह निर्धनों और निवश असहाय व्यक्तियों के दिल कुचलता है, नष्ट करता है।"

तोबा। अल्ला, भाषण हो रहा है और वास्तव में बात क्या है, इसका कहीं दूर तक पता नहीं।"

अब शाहद गम्भीर होकर बैठ गया और जो कुछ उसने जहरा से सुना था, उसका एक-एक शब्द दोहरा दिया, सुरैया बुत बनी यह बात सुनती रही, शाहद की कहानी समाप्त हुई तो उसने कहा—

"ओह ! वास्तव में हमारा समाज कितना बेदर्द है।"

"सिर्फ बेदर्द ही नहीं, कातिल, खूनी, हलाकू।"

"हाँ सच तो !"

"यह समाज इस योग्य है कि इसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए जायें और हवा में उड़ा दिए जायें। यह निरापराधियों को अपराधी और दोषी बनाता है,

पवित्र आत्माओं को अपनी पवित्रता बेचने पर विवश करता है, भले लोगों को कुत्सा के मार्ग पर अग्रसर करता है।"

"बेशक ! निपट सच ! मैं तो स्वयं शत्रु हूं इस समाज का आरम्भ से ही।"

शाहद ने फिर सिगरेट सुलगाया। सुरैया बोली—

"पहले मैं जहरा का इसलिए आदर करती थी कि वह तुम्हारी बहन है लेकिन मेरे सामने अब वह महान् है। इसे कहते हैं चरित्र और यह है चरित्र।"

"सच कह रही हो सुरैया ?"

"बिलकुल सच, झूठ क्यों बोलूंगी ? क्या हर वह स्त्री मान और सत्कार की पात्र नहीं, जिसे समाज ने ठुकरा दिया है, जिसे समाज ने मंदिर की पूजा से वेश्या के कोठे पर फेंक दिया। जो नाचती हो, गाती हो, लोगों का मन प्रसन्न करती हो, उन्हें अपनी लालसा का भाजन बनाती हो, लेकिन जिसका आँचल देवी की नाईं पाप और कुत्सा से अछूता हो, जहरा स्त्री नहीं सजीव चरित्र है वह।"

शाहद निरन्तर सिगरेट के कश लगा रहा था। सुरैया ने कहा—

"कहते हैं, पानी में रहकर कपड़ों को भीगने से नहीं बचाया जा सकता, लेकिन जहरा ने साबित कर दिया है, वह समुद्र की लहरों में रहकर भी अपना आंचल सूखा रख सकती है, जी चाहता है उस स्त्री के चरणों पर श्रद्धा से विनत हो जाऊं।"

शाहद का चेहरा चमक उठा। उसने कहा—

"सुरैया तुम्हें उससे मिलते हुए संकोच नहीं होगा ?"

"कदापि नहीं।"

"तो इन्टरव्यू का आयोजन करूं ?"

"आयोजन की क्या आवश्यकता है, ले चलो मुझे वहां।"

"नहीं सुरैया वहां नहीं। मैं कल उन्हें अपने घर पर बुलाऊंगा, वहीं थोड़ी देर के लिए तुम भी आ जाओ, मेरा घर भी देख लेना, वही घर जो

तुम्हारी पूजा का मन्दिर है लेकिन जहां अभी तक तुम्हारे चरण नहीं गए।"

"अवश्य आऊंगी ! अच्छा किस समय ?"

"जिस समय तुम्हारा मन चाहे।"

"कालेज जाने से पहले ?"

"हां समय ठीक रहेगा।"

सुरैया और शाहद प्रसन्न और उल्लसित उठे और अपने-अपने घर की ओर प्रस्थान कर गए।

३५

सुरैया घर वापस आई। आते ही जाकर कमरे में पुस्तकें रखीं और सीधी चली मनसूर के कमरे की ओर। वह अधिक समय मनसूर के कमरे में सनोबर और उसके बच्चों के साथ व्यतीत करती थी। सनोबर और उसके और मनसूर के साथ छूतों का सा व्यवहार हो रहा था। घर में कोई व्यक्ति ज्वर अथवा और किसी भीषण रोग का ग्रास बन जाए तो, उसके बरतन पृथक् कर दिए जाते हैं उसके साथ कोई भोजन नहीं करता। इसी प्रकार इन तीनों के बरतन अलग थे। कोई इन से न सीधे मुँह बात करता था, न उनके साथ भोजन करता था। स्वाभाविक रूप में इन तीनों मे अधिक प्रेम और आत्मीयता स्थापित हो गई थी। ये एक दूसरे को सहानुभूति संबल और रहस्य आदान-प्रदान करते थे।

सुरैया ने जैसे ही मनसूर के कमरे में कदम रखना चाहा, उसने सुना—कोई चुपके-चुपके बातें कर रहा है। वह समझी सनोबर और मनसूर में कोई रहस्य की बात हो रही है। उलटे पाँव वापिस चली। दरवाजा चौपट खुला था, फिर कुछ सोचकर लौटी, वह कमरे के भीतर नहीं गई, दरवाज़े की ओट में से झाँकने लगी, सब कुछ स्पष्ट नजर आ रहा था।

बच्चा चारपाई पर लेटा हुआ टकर-टकर छत की ओर देख रहा था। सनोबर एक आत्मविस्मृति और विभोर मुद्रा में उसकी ओर झुकी हुई थी। कभी उसे वह प्यार करने लगती, कभी बातें करने लगती, कभी उठाती थी उसे, वक्ष से चिपटा लेती थी, फिर लिटा देती थी चारपाई पर। उसने स्नेह पूर्ण नजरों से देखा—बिल्कुल अपने पिता पर आकृति गई है। देखो न वह

बड़ी-बड़ी आँखें, वही गोरा-गोरा रंग, वही शरारत—अभी से सीख ली शरारत इसने। मुस्करा रहा है चालाक कहीं का। क्यों रे तू भी बड़ा होकर अपने पिता की तरह किसी वेश्या से विवाह करेगा—न बुरी बात—दुनिया हँसेगी तुझ पर, माँ-बाप घर से निकाल देंगे तुझे। घर से बाईकाट कर देंगे बेटा—(गोद में उठाकर, सीने से लगाकर) मैं क्यों निकालने लगी अपने लाड़ले को, इसका पिता भी ऐसा नहीं है, ऐसा होता तो मेरी बांह पकड़कर क्यों ले आता मुझे भरे इकट्ठे से अपने कमरा में—वह बड़ा अच्छा है, और तू—(हँसकर) शरारती !

सनोबर इस प्रकार बातें किए जा रही थी अपने फूल से। वह माँ की बातें सुनता-सुनता सो गया, शायद उसकी समझ में नहीं आ रही थी इसकी बातें, विवाह, माँ···बाप···घर···वेश्या···यह सब वे बातें थीं जिनसे अभी तक वह अपरिचित था, अज्ञान था।

बच्चे को सोता देखकर वह उसी चारपाई पर पाँव लटकाकर बैठ गई। वह सामने दीवार की ओर देख रही थी, यहाँ सनोबर की उस जैसी ऊंची मूर्ति पड़ी हुई थी। उस मूर्ति पर उसने नजर जमा दी। उसकी आँखों से इस समय चाह, प्रेम और मातृत्व का समुद्र उबल रहा था। ऐसे जान पड़ता था, उसकी ये बड़ी सी आँखें एक बड़ा सा मुँह बन जायेंगी और उस मूर्ति को फ्रेम सहित निगल जायेंगी—

कभी उसके चेहरे पर तस्वीर को देखते-देखते लज्जा और झेंप दौड़ जाती—शायद इसे वह दिन याद आ रहा होगा, सुरैया सोचती जब पहले-पहल भय्या ने इसे अपनाया था, कभी इसके चेहरे पर ग्लानि की छाया छा जाती—शायद वह सोच रही होगी कि उस प्रेम की प्रति-गति क्या होगी ? यह ऊँट किस करवट बैठेगा ? यह नाव किस प्रकार पार लगेगी—कभी उसका चेहरा प्रसन्नता से आलोकित हो उठता, शायद वह सोच रही होगी, उसने इस दुनिया की सबसे बड़ी सम्पत्ति—मनसूर पाने में पाली है—इससे बढ़कर प्रसन्न होने का अधिकार किसे है ?"

बड़े ध्यान से सुरैया सनोबर के उतार-चढ़ाव को देख रही थी। इस समय सनोबर के चेहरे पर उसका नारी हृदय स्पन्दित करता, सूर्य की नाईं जगमगाता, तारों की नाईं झिलमिलाता दिखाई दे रहा था—उसका दिल वक्ष से बाहर निकल आया था, ऐसा आभास हो रहा था, हृदय ने अपनी भाव भंगिमा सनोबर के मुख पर बिखेर दी है वह इस समय बाँदी नहीं मनसूर की प्रेयसी नहीं, नारी की आभा से आलोकित थी, मात्र नारी जो अस्तित्व की सबसे बड़ी सत्ता है विभूति है—जो प्रकृति की सबसे बड़ी कृति है, जो मानवता का सबसे बड़ा—कोहनूर से भी बड़ा हीरा है।

सुरैया का जी चाह रहा था कि वह सहसा कमरे में घुसी चली जाए और सनोबर की गोद में सिर रखदे, और उससे कहे—यह आभा, यह आलोक, यह सौन्दर्य जो इस समय तेरे चेहरे पर झलक रहा है, मुझे दान दे दे, सब नहीं थोड़ा सा, अच्छा थोड़ी देर के लिए सही।

सुरैया सोच रही थी—नारी के दो ही रूप हैं, माँ और पत्नी—शेष जो कुछ है, दिखावा है, प्रपञ्च है। इस छोकरी ने जिसे घरभर नीच और अपवित्र समझता है, जिसे देखकर घर के लोग रक्तिम हो जाते हैं जिसका नाम सुन कर उस जैसी दूसरी बाँदियाँ कानों पर हाथ धर लेती हैं—एक ही छलाँग में मन्जिलें तै कर लीं—यह माँ भी बन गई, पत्नी भी। इसका विवाद नहीं, पहले क्या बनी—लेकिन यह सच है कि इसने सबको अपने पीछे छोड़ दिया, सब इसका मुँह देखते रह गए। सबने बढ़-बढ़कर इसके रास्ते पर पत्थर बिछाए इस पर जन्जीरें फैंकी, लेकिन कोई बाधा इसके मग में बाधा न बन सकी—यह झाड़-झंखाड़, फूल और काँटे, दरिया, समुद्र, पहाड़, टीले, सबको पार करती हुई, सबकी जीना से बाहिर हो गई—विचित्र नारी है यह !

सुरैया सोच रही थी, दृष्टि सनोबर पर थामे हुए थी और वह निरन्तर मनसूर की मूर्ति पर आँखें जमाए हुई थी। सहसा सुरैया चौंक पड़ी। उसने सुना—

"पकड़ लिया चोर को।"

मुड़कर जो देखती है तो मनसूर सामने खड़ा मुस्करा रहा था।

यह सब कुछ दरवाजे के पास ही हुआ। चोर का नाम सुनकर और मनसूर की आवाज़ पहचानकर सनोबर घबराई हुई जल्दी से बाहर निकल आई—चोर भी मुस्करा रहा था और उसे पकड़ने वाला सिपाही भी। इन दोनों को मुस्कराता देखकर सनोबर भी मुस्कराने लगी।

३६

सुरैया मनसूर के साथ कमरे में दाखिल हुई। दोनों एक सोफे पर पास-पास बैठ गए।

"हाँ भई क्या हाल-चाल है, कई दिनों से तुमसे बातें नहीं हुई।"

"कुछ सुनाइये, आप इधर-उधर की।"

"शाहद से मुलाकात हुई ?"

"(कंठ झुकाकर) जी हां !"

"कुशल ?"

"उनको मारने की योजनाएँ बनाई जा रही हैं।"

"ऐं—मारने की ? क्या हुआ ?"

सुरैया ने अनवर और शाहद की मुठभेड़, यासमीन का षड़यन्त्र और गुलशन के प्रयत्न की सारी कहानी सुना दी।

मनसूर ने कहा—"मैं नहीं जानता था कि भाईजान ऐसी हरकतें भी कर सकते हैं। अब समय आ गया है कि हम निर्णय करलें कि इन्हें कोई अधिकार नहीं है कि हमारे भाग के शासक बने रहें और हमें पराजित करने की योजनायें हमारी ही सम्पति से बनाते रहें।"

"ठीक है भैया।"

"मैं अभी जाता हूं इनके पास, तुम भी चलो।"

"चलिए।"

दोनों भाई-बहिन साथ-साथ नीचे पहुंचे।

शाकिर अभी-अभी बाहर से आया था। बैठा हुआ हुक्का पी रहा था। अम्मीजान भी पास ही कुरसी पर बैठी थीं।

ये दोनों निवार की कुर्सियों पर बैठ गए। शाकिर ने नजर ऊंची की, देखा और फिर हुक्का पीने लगा। अम्मीजान ने इन दोनों को देखकर नफरत से मुँह फेर लिया। कुछ देर तक दोनों मौन बैठे रहे। फिर मनसूर ने कहा—

"मैं कुछ आवश्यक बातें करने आया हूँ।"

"मुझे फुरसत नहीं है।"

"लेकिन ये बातें तो आपको सुननी ही पड़ेंगी।"

"मैं नहीं सुनता, जाओ अपना काम करो।"

"अपने काम ही के विषय में आया हूँ यहाँ।"

"क्या काम है आपका ? कहिए।"

"मेरा और सुरैया का भाग पृथक् कर दीजिये। मकान, सम्पत्ति, वस्तुयें इत्यादि जो कुछ भी हैं, सब विभाजित कीजिये। आप अपना और अम्मीजान का उपयुक्त भाग ले लीजिए। मेरा और सुरैया का भाग दे दीजिए।"

"बड़ा आया कहीं का नीति पर चलने वाला। घर में हरामखोरी हो रही है। विवाह तो किया वह बदमाश ने और चला है नीति पर व्यख्यान देने।"

"हरामखोरी का अभियोग गलत है। निस्सन्देह आरम्भ में मेरे और सनोबर के सम्बन्ध आप लोगों के विचार में अश्लील और अनधिकृत थे परन्तु वह उस समय भी मुझे अपना पति मानती थी और मैं उसे अपनी पत्नी मानता था, फिर बाद में इसने विवाह के लिए आग्रह किया और मैंने विवाह भी कर लिया।"

"अरे चल हट, तू क्या और तेरा विवाह क्या ?"

"खैर इस विवाद को छोड़िये।"

"क्यों छोड़ें इस विवाद को ? तू हमारा बाबा है जो हमारे मन में होगा, कहेंगे ।"

"अच्छा है, कहिए जो आपका जी चाहे। लेकिन मैं और सुरैया अपने दिवंगत पिता की सम्पति में तो भागी हैं, इसीकी मांग है इस समय। नहीं तो मुफ़्त में बात बढ़ जाएगी।"

"लो और सुनो बात बढ़ जाएगी। अधिकार का रक्षक आया है—(सुरैया की ओर संकेत कर) कुलटा को साथ लेकर आया है धमकाने से क्या कर लेगा तू।"

"मुकद्दमा चला दूँगा।"

"यह चाव भी है ?"

"चाव तो नहीं लेकिन जब सीधी उंगलियों से घी नहीं निकलेगा, तो इन्हें टेढ़ा करना ही पड़ेगा।"

"जो तेरा जी चाहता है, तू कर रहा है। जो तेरी बहन ने चाहा वह पति बनाकर ले आई अपनी रुचि का। पतित! नीच! इसी घर में रहकर हमारे हृदय पर कोदूँ दल रहे हो तुम दोनों। अब बात केवल इतनी रही है कि बी सुरैया ठमकती हुई जाएं और थरकती हुई शाहद को अपने संग ले आएं। सो जिस दिन इनका मन करेगा, यह भी कर लेंगी। तो फिर आखिर सम्पत्ति बांटने की क्या आवश्यकता आ पड़ी ?"

"इसका भी कारण है ?"

"मैं भी तो सुनूं ?"

"अब भाईजान ऐसी बातों पर उतर आये हैं कि हम दोनों का इनके साथ निर्वाह नहीं हो सकता।"

"आखिर क्यों ?"

"उन्होंने यासमीन के भाई अनवर जैसे बदमाश से यह लाचल देकर कि सुरैया को इसके साथ विवाहित कर देगें इस पर सहमत किया कि वह शाहद को मार डाले या उसे कम से कम छुरा दिखाकर सम्बन्ध-विच्छेद

पर हस्ताक्षर ले ले। इन कुकृत्यों को मैं सहन कर सकता हूं ? सुरैया क्षमा कर सकती है ?"

शाकिर की ओर देखकर—

"सुन रहे हो शाकिर क्या कह रहा है यह ?"

"सुन रहा हूँ, बकता है ।"

"मेरे पास प्रमाण है ।"

"क्या प्रमाण है ?"

"वह कथन जिस पर अनवर के हस्ताक्षर हैं, जिसमें इन सब चालों का, जो मैंने कहीं, कन्फैशन है। यदि आवश्यकता पड़ी तो इसे न्यायालय में प्रस्तुत करूंगा ।"

यह बात अनवर ने शाकिर को नहीं बताई थी। वह कूटनीति से इसे गोल कर गया था।

मनसूर से यह भेद सुनकर शाकिर का चेहरा उतर गया। उसके मुंह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं ।

अब अम्मीजान का क्रोध भी धीमा हुआ। दशा यहाँ तक शोचनीय हो गई, इसका उन्हें संशय भी नहीं था। मनसूर ने कहा—

"भाईजान, मैं एक महीने की अवधि देता हूँ। आपको इस समय हमारा पूरा-पूरा भाग बांट देना चाहिए। समस्त सम्पत्ति मकान और अन्य वस्तुओं को अलग-अलग कर दें। अपने और अम्मीजान की सम्पत्ति पर आप निस्सन्देह शासक रहें हमें कोई आपत्ति नहीं होगी। यदि आपने एक महीने की अवधि में हमारे भाग का अधिकार हमें न दिया तो मैं अपनी और सुरैया की ओर से अदालत का दरवाजा खटखटाने पर विवश हूँगा। अपने भाग के साथ-साथ हिसाब का भी दावा करूंगा और पिताजी की मृत्यु से लेकर अब तक का हिसाब सब आपको देना पड़ेगा। तथापि यदि आपने स्वयं हमारे भाग अलग कर दिए, तो हम हिसाब की मांग त्याग देंगे।"

"ले लेना अपना भाग, कौन इसे दबाए रखना चाहता है भई।"

"धन्यवाद आपका।"

अम्मीजान फिर बोलीं—"ले लो तुम लोग अपने हिस्से। लेकिन एक बात कहे देती हूं, सुन लो कान खोल कर।"

"कहिए" मनसूर ने कहा—

"चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाए, मैं शाहद को इस घर में नहीं घुसने दूंगी। सिर फोड़कर मर जाऊंगी। बी सुरैया उसके साथ विलास करें, आनन्द से रहें, जहां मन चाहे उसके साथ जाकर, लेकिन इस घर में वह नहीं आ सकता।"

"अम्मीजान, यह अत्याचार है आपका।" मनसूर ने कहा।

"अत्याचार सही, तूने वेश्या अपना ली, मैं चुप हो गई। उसने शाहद से आँखें लड़ाईं और उससे विवाह तक रच बैठी, मैं कुछ नहीं बोली। कम्बख्तो, तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। माँ के लिए भी कोई सम्मान नहीं है तुम्हारे हृदय में। मैं उसकी आकृति भी नहीं देखूँगी। वह नीच यदि मेरे सामने आ गया तो अपने बूढ़े हाथों से उसका और सुरैया का गला घोंट दूंगी, फिर स्वयं भी विष खा लूंगी।"

यह कहकर अम्मीजान बिलख-बिलख कर रोने लगीं। मनसूर की आँखें डबडबा आईं, सुरैया की आंखों में भी मोतियों के बिन्दु टपकने लगे।

मनसूर इस समस्या पर निभाव के लिए कोई नया फ़ार्मूला पेश करने वाला था कि सुरैया खड़ी हो गई, उसने कहा—

"मां मैं तुम्हें रोता नहीं देख सकती। तुम्हारे सुख के लिए मैं अपना जीवन भी न्यौछावर कर दूंगी। तुमने अपना नाम ले कर मुझे निषेध किया होता तो मैं शाहद को ठोकर मार देती, भैया मन्सूर का गला घोंट देती, सनोबर को विष पिला देती और इस भोले बच्चे को उठाकर फेंक देती। तुम तो समाज, रीति, वंश और मर्यादा को बीच में लाने लगीं। मैं उन्हें अंगीकार नहीं कर सकती, उनके आगे अपना मस्तक नहीं झुका सकती, अपनी मां के लिए मैं संसार की हर वस्तु, यहां तक कि अपन प्राण भी न्यौछावर कर सकती हूं।

तुम यदि शाहद की आकृति नहीं देखना चाहतीं, तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ मैं भी आज से उसकी आकृति नहीं देखूँगी, मैं उससे नफ़रत करने लगूँगी और फिर भी उसका मोह मेरे मन से नहीं निकला तो एक छुरी लेकर दिल में घोंप लूँगी। तुम्हारी बूढ़ी लेकिन प्यारी आंखों में आँसू नहीं देख सकती, इन आंसुओं को रोकने के लिए मैं अपना खून बहा दूँगी।

तुम मुझसे नाराज़ हो। मुझे कोई चीज़ अच्छी नहीं लगती। मेरा जी चाहता है फिर से तुम्हारी गोद में बैठकर तुम्हारी बातें मानने से इन्कार करूँ, तुम प्यार करो, मैं रूठ जाऊँ, मैं तुम्हारे गले में बाहें डाल दूँ, तुम मुझे कहानी सुनाओ, मैं सुनते-सुनते सो जाऊँ, लेकिन अब तुम मेरी मां नहीं रहीं, बदल गई हो, मुझे देखकर तुम नफ़रत से मुँह फेर लेती हो। मेरा जी चाहता है तुम्हारे सिर में तेल डालूँ, कंघी करूँ, जैसे करती रहती थी, लेकिन तुम्हें देखकर मेरा साहस नहीं होता मैं सहम जाती हूँ। वह माँ जो मेरे ऊपर प्यार उंडेलती थी, वह मुझसे विमुख हो गई, मेरी शत्रु बन गई। इस जीने से मुझे मृत्यु अच्छी लगती है। वह तुमसे अच्छी है तुम रूठीं तो मुझसे दूर हो गईं, अब मैं तुम्हें नहीं पा सकती, लेकिन उसे हर समय बुला सकती हूँ। वही मेरे मन को शान्ति देगी।" यह कहते-कहते सुरैया असहाय रोने लगी।

अम्मीजान की आँखों से भी गंगा-जमुना की बौछार हो रही थी। वह उठीं और सुरैया को पकड़कर अपने वक्ष से लगा लिया। वह भी रो रही थीं और सुरैया भी। दोनों एक-दूसरे से चिमटी हुई थीं। मनसूर बहुत संयमित था लेकिन उसकी आँखों में भी आंसू थे, शाकिर के मुँह में हुक्के की नली थी। उसने यह दृश्य देखा और उठकर बाहर चला गया।

अम्मीजान अपने साथ सुरैया को अपने कमरे में ले गईं। इसे खूब प्यार किया, कहने लगीं—

"मेरा चांद।"

यह कहते ही उनके बूढ़े और नीरस होंट थरथराने लगे और आँखों से आँसुओं के बिन्दु टपटप कर गिरने लगे। सुरैया भी रोने लगी।

अम्मीजान ने आँसू पोंछते हुए कहा—

"बेटी मैं कुछ नहीं कहती। तू ने जो कुछ किया, अच्छा किया लेकिन अपने मन को क्या करूँ, सोचती हूँ मेरा दामाद है वह तो खून खौलने लगता है?"

"क्यों अम्मी?"

"हमारा उसका नाता क्या? वह वेश्या के वंश से है और तू प्रतिष्ठित वंश से है।"

"अम्मी, यह बात नहीं है।" यह कहकर उसने वह सारी कहानी जो शाहद से सुनी थी, उनके सामने दुहरा दी। वह सुनती जाती थी और उसके मुख का आभा और आलोक द्विगुणित हो रहा था—

वह बहुत प्रसन्न हुईं, कहने लगीं—

"मुझे कोई आपत्ति नहीं है अब।"

"और माँ मनसूर भैया।"

"उसका नाम न लेना मेरे सामने।"

"(गले में बाहें डालकर) मेरी अच्छी माँ।"

"उसने मेरा दिल बहुत दुखाया है, जबान तो देखो, कैसी पटर-पटर चलती है।"

"प्रसन्न हो जाओ मेरी माँ।"

इतने में मनसूर उधर से गुजरा। उसने मेल-मिलाप का यह रंग जो देखा तो खड़ा हो गया और सुरैया को देख-देखकर मुस्कराने लगा। अम्मीजान गरदन झुकाए बैठीं थीं। सुरैया ने संकेत से बुलाया। वह आते ही लिपट गया माँ से।"

"चलो हटो, बहुत ज्यादा चंचलता न दिखाओ माँ के सामने।"

यह कहकर उन्होंने गरदन उठाई तो मनसूर आँखों में आँसू भरे खड़ा था। उनकी आँखों में आँसू भर आए। यहाँ यह हो रहा था। सुरैया ने जाने क्या सोचा, बिजली की सी त्वरा के साथ उठी, धम-धम करती ऊपर गई और बच्चे को लेकर अम्मीजान की गोद में डाल दिया। बिल्कुल ही मनसूर का प्रतिरूप

था। वह इनकी गोद में आते ही मुस्कराने और किलकारियाँ मार लगाने उन्होंने गोद में लेकर उसका मस्तक चूमा और सुरैया के हाथ में दे दिया। कहने लगीं---पहले पेशाब करा लाओ, मेरे नमाज़ के कपड़े खराब कर देगा यह।

सुबह हुई। जैसे निश्चित था सुरैया शाहद के मकान पर पहुँच गई शाहद ने बढ़कर उसका स्वागत किया, कहने लगा---

"आप आए, 'ज़हे किस्मत' (हमारा सौभाग्य)

वह आएँ घर में हमारे खुदा की कुदरत है।
कभी हम उनको कभी हम अपने घर को देखते हैं।।"

सुरैया मुस्कराई और एक कुर्सी पर बैठ गई। जहरा अभी तक नहीं आई थी। सुरैया ने पूछा---

"आई नहीं वह अभी तक ?"

"आजायेंगी अब वह भी, मुझे तुम्हारे आने से जो प्रसन्नता हो रही है। वह उनके आने से थोड़े ही होगी।"

"बुरी बात है यह न कहो।'

"बुरी बात नहीं सच्ची बात निपट सत्य।"

"बहुत सी बातें ऐसी होती हैं जो सच होती हैं, लेकिन उन्हें मुँह से नहीं कहते।"

"वे कोई और लोग होते होंगे।"

"यदि वे सुन लें तो---?"

"तो क्या होगा ?"

ये बातें हो रही थीं कि जहरा आती हुई दिखाई दी। उसके कमरे में आते ही दोनों खड़े हो गये---बड़े प्यार से उसने सुरैया के सिर पर हाथ फेरा और कहने लगीं---

"बैठ जाओ बेटी।"

"जी हां बैठती हूँ, आप बैठिए।"

सब अपनी-अपनी कुरसियों पर बैठ गए। जहरा ने कहा---

"तुमसे मिलने को दिल तड़प रहा था। साहस नहीं होता था। मिलने की कोई सम्भावना नहीं दिखाई देती थी। धन्य है भगवान, मेरी आकाँक्षा पूर्ण हुई।"

"यह न कहिए, मैं स्वयं आपसे मिलने के लिए आतुर थी। मुझे गर्व है कि मैं आपसे मिल रही हूँ, आप जैसे नारियां तो शताब्दियों में जन्म लेती हैं।"

"ओ हो, हमारी सुरैया बेग़म बनाने लगीं हमें।"

"मैं बनाती नहीं; आपको क्या बनाऊँगी। शाहद से जो आपके जीवन का वृतान्त मिला, उसने सब नेत्र खोल दिए। अल्लाह, अल्लाह, दुनिया में ऐसी विभूतियां भी होती हैं।"

जहरा की आँखों में आँसू भर आए। उसने कहा—

"सुरैया तुम्हारी बातें बड़ी मीठी हैं, मैंने तुम्हारी जैसी कल्पना की थी, तुम उससे बढ़कर निकलीं। मेरी तो शायद किस पंक्ति में गणना है, शाहद को अवश्य बधाई देने को जी चाहता है, कि ऐसा मूल्यवान मोती मिल गया।"

कुछ देर तक इन तीनों में इधर-उधर की बातें होती रहीं। फिर जहरा ने कहा—

"मुझे दुःख जो कुछ है वह इसका कि तुमने शाहद को पाकर, माँ जैसी निधि को खो दिया।"

"हाँ यह तो मैं कहना ही भूल गई।" सुरैया ने कहा—

"कोई नई बात है ?" शाहद ने पूछा।

"माँ मुझसे प्रसन्न हो गईं। उन्होंने मेरी भूल क्षमा कर दी, अब उन्हें इस सम्बन्ध पर कोई आपत्ति नहीं है।"

जहरा ने प्रसन्नता से विह्वल होकर पूछा—

"सच ! कैसे ?"

"सुरैया ने सारी कहानी शब्दों में कह डाली। बड़े ध्यान और रुचि से शाहद और जहरा सुनते रहे।"

शाहद ने कहा—

"फिर फिर क्या बात है, विजय तुम्हारी।"

"यह न कहो शाहद।" सुरैया बोली।

"क्यों अब क्या भय है ?"

"तुम भाईजान के कटु-स्वभाव से परिचित नहीं, वह अभी तक कटु हैं और मैं समझती हूं, वह प्रसन्न नहीं होंगे। उनका यह स्वभाव है कि झाड़ का कांटा बनकर पीछे पड़े रहते हैं। मुझे भय है कि वह निष्क्रिय नहीं बैठेंगे, और जो कुछ वह कर सकेंगे, वह अवश्य करेंगे। शायद वह पराजय मान भी लेते लेकिन यह जहर की गाँठ यासमीन उन्हें इस प्रकार नचाती रहती है, जैसे मदारी बन्दर को नचाता है और उसे कुछ वैमनस्य हो गया है हम लोगों से।"

ज़हरा ने भी सुरैया का अनुमोदन किया। उसने कहा—"सुरैया की बात ठीक है, शाकिर साहब के स्वभाव से मैं भी खूब परिचित हूं। उनसे डरना चाहिए, वह जो कुछ भी करलें कम है। ज़हरा और सुरैया की ये बातें सुनकर शाहद का वह चेहरा जो प्रसन्नता से खिलखिला उठा था सहसा म्लान पड़ गया। उसकी यह परिस्थिति सुरैया ने भाँप ली। उसने कहा—

"लेकिन अम्मीजान अब भाईजान के विष का इलाज बन जायेंगी। उनके प्रसन्न होने से एक बहुत बड़ी मुसीबत टल गई। भाईजान अब भी हमें हानि करेंगे, परन्तु अम्मीजान सहायता करेंगी। हमारी रक्षा करेंगी उनसे।"

"मां का भी हृदय क्या है ?" ज़हरा बोली।

"निस्सन्देह, दुनिया का हर प्रेम अपने भीतर स्वार्थ का कोई पहलू रखता है, लेकिन मां का प्रेम निपट और मात्र प्रेम है, बिल्कुल विशुद्ध।"

"विशुद्ध पर शाहद हंस पड़ा।"

सुरैया ने कहा—

"अम्मीजान ने सदा मेरा हर कहा माना है, मेरा हर आग्रह पूर्ण किया है, उसका तिरस्कार नहीं किया। बस जिन्दगी में यह पहली और आखरी बार एक आग्रह था जिसमें उन्होंने मेरा साथ नहीं दिया। लेकिन अब जबसे

प्रसन्न हुई हैं, फिरसे वह माँ बन गई हैं, जो पहले थीं।"

शाहद ने कहा—

"मनसूर से इन्हें प्रसन्न कर दो तो जानें।"

"वह भी हो चुका।"

"सच ?"

"कह जो रही हूँ मैं।"

"प्रसन्न हो गईं वह मनसूर से ?"

"भला मेरा आग्रह न वह स्वीकार करतीं ? केवल प्रसन्न नहीं हुईं, गले से भी लगाया, बच्चे को गोद में लिए-लिए फिरीं।"

"वाह भई कमाल हो गया वास्तव में। और सनोबर ?"

"अभी उसकी आकृति देखने को तैयार नहीं।"

"उस बेचारी का क्या दोष है ?"

"यही तो मैं भी कहती हूं। लेकिन उनके दिल पर यह बात जम गई है कि उस कुलटा ने मेरे लड़के पर, मेरे भोले भाले लड़के पर अपने प्रेम-पाश डाले और उसे बाँध लिया।"

शाहद और जहरा दोनों हँसने लगे। सुरैया ने कहा—

"सनोबर से भी उन्हें प्रसन्न कर दूंगी, लेकिन अभी नहीं। हम दोनों उनके हृदय के टुकड़े थे, हमें मातृत्व के आवेश में उन्होंने क्षमा कर दिया। सनोबर को अब तक वह लौंडी समझ रही हैं। अभी सहसा उसे पुत्रवधू मानते हुए वह सकुचाती हैं, झिझकती हैं; और यह बात भी है कि पुराने विचार आहिस्ता-आहिस्ता निकलते हैं।

"हाँ ठीक है।"

"लेकिन मैं उन्हें ले आऊंगी राह पर, देख लेना।"

"हां भई सच है।

राह पर उनको ले आए हैं बातों में
और खिलखिलेंगे दो-चार मुलाकातों में।"

यह कहकर शाहद ने एक कहकहा लगाया। जहरा बिगड़ी, बड़े निर्लज्ज हो तुम। और भी किसी पर नहीं, इनपर शेर-बाजी करने लगे। नालायक कहीं के ?"

शाहद ने कहा—"सीधा-साधा सा बिल्कुल मेरी तरह तो यह शेर है। इसमें बुरी बात क्या है। सुरैया के कहने के अनुसार वह सही राह पर आजायेंगी और एक दिन सनोबर का दोष भी क्षमा कर देंगी। मां जो ठहरीं। याद रखो माँ उसी बच्चे से अधिक स्नेह करती है जो ज्यादा नालायक हो, जो बच्चा जितना अधिक चतुर हो, शरारती हो उतना ही अधिक माँ के दुलार और लाड़ का पात्र होगा।"

जहरा बोली—

"अगर तुम माँ होते, तो मां का अभिनय बड़ी कुशलता से करते।"

शाहद तो मौन रहा। सुरैया हंस पड़ी जोर से।

३७

अम्मीजान ने सुरैया को वक्ष से लगा लिया। मनसूर से प्रसन्न हो गईं। लेकिन शाकिर ने उनको क्षमा नहीं किया। वह विवश था। इसलिए मौन था। यह दोनों को गलत समझा हुआ था। दोनों के जीवन की दशा बदलना चाहता था! वह खूब समझता था कि यदि मनसूर को यूंही आजाद छोड़ दिया गया और सनोबर के साथ उसका विवाह स्वीकार कर लिया गया, यदि सुरैया के मामले में चिन्ता नहीं की गयी और इसे शाहद के स्नेह-पाश में जकड़े जाने दिया, उसका तो केवल एक परिणाम होगा, सम्पत्ति और हर वस्तु के हिस्से अलग हो जायेंगे। उसका परिणाम यह होगा, उसका अतुल हाथ बंध जाएगा, उसकी प्रतिष्ठा को हानि होगी, उसकी आय कम हो जायेगी। इसीलिए वह निरन्तर चाहता था कि सनोबर और शाहद को मध्य से हटा दे। मनसूर और सुरैया को समाजिक पाश में फिर से जकड़ दे, लेकिन कैसे? यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था। मनसूर के अल्टीमेटम ने उसे और चिन्तित कर दिया था। वह जानता था कि मनसूर जो कहता है, वही करता है। उसने एक महीने का अल्टी-मेटम दिया है, वह एक महीना प्रतीक्षा करेगा, दो महीने प्रतीक्षा करेगा, तीन महीने सही, लेकिन अपनी और सुरैया की सम्पत्ति वह पृथक् करवा कर रहेगा। अम्मीजान यदि मेरे साथ रहतीं, तो शायद कुछ षड्यन्त्र भी रचते। लेकिन बदमाशों ने उनपर भी अधिकार कर लिया। अब अम्मीजान उनके आधिपत्य में हैं। अब तो अपनी मनमानी करके ही सांस लेंगे। आखिर वह चिन्तन और मनन के पश्चात् इस

निर्णय पर पहुँचा कि कौसर और अख़तर को बुलाए और उन्हें अपना परामर्शदाता बनाए।

शाकिर की सोतेली फूफी थीं रौशंख़ बेगम। कौसर उनकी लड़की और अख़तर उनका लड़का था। शाकिर के पिता और रौशंख़ बेगम में कभी नहीं बनी फिर भी उनकी यह देर से आकाँक्षा थी कि कौसर मनसूर की दुलहिन बने और अख़तर सुरैया से परिणय करले। वह आगरा में रहती थीं। शाकिर ने स्वयं वहाँ जाना उपयुक्त नहीं समझा। अपने रहस्य के साझी सच्चे नौकर शकूर को वहाँ भेजा। और वह शाकिर का पत्र लेकर रौशंख़ बेगम के पास पहुँचा।

पत्र अख़तर के हाथ पड़ा। वह सीधा पत्र लेकर मां के पास गया और एक ही साँस में पढ़ गया, पत्र में सनोवर और शाहद की घटना बड़े नमक-मिर्च लगाकर शाकिर ने लिखा था—

"मेरी देर से यही आकाँक्षा थी कि सुरैया आपकी पुत्र-वधु बने और मनसूर आपका दामाद। दोनों अयोग्य निकले। अम्मीजान के नासमझ स्नेह ने उन्हें और बिगाड़ दिया। सुरैया की अभी तक विदा नहीं हुई है। सनोबर हर समय दूध की मक्खी की नाईं बाहर निकाल दी जा सकती है। मेरी भांति आपका भी यह विचार है तो देर न कीजिए। खाना वहाँ खाइये, पानी यहाँ पीजिये, लेकिन यह सोच लीजिए आपको और कौसर को और अख़तर को बड़े ध्यान से यहाँ रहना होगा। कदापि किसी पर यह प्रकट न हो कि आप मेरे निमन्त्रण पर आई हैं। कदापि सुरैया और सनोबर को न टोकिए बल्कि उन्हें बधाई दीजिए कि उन्होंने जो किया उन जैसे साहसी युवक और युवतियों को यही करना चाहिए था। अब आपका काम समाप्त हो जाएगा। कौसर और अख़तर का काम शुरू होगा। कौसर जिस प्रकार भी हो मनसूर को मोहित करे और उसे अपना बना ले। अख़तर किसी प्रकार भी सुरैया से सम्बन्ध बढ़ाए और उसके हृदय पर अधिकार करले। दोनों पढ़े-लिखे हैं, योग्य हैं, सुन्दर हैं।

मुझे आशा है अवश्य सफल होंगे और सनोबर और शाहृद को पृथक कर देंगे। फिर मनसूर आपका हो जाएगा, सुरैया आपकी हो जाएगी, आपके दिवंगत भाई की प्रतिष्ठा नष्ट होने से बच जायेगी, क्या आप भाई की सम्पत्ति को गैरों के हाथों में जाने से बचाने के लिये अपने मनसूर और सुरैया को एक बदमाश से बचाने के लिए कुछ नहीं करेंगी?

मैंने ये सब कुछ इसलिए लिख दिया ताकि आप यह न कहें कि आपको सूचित नहीं किया। मैंने आपको सूचित कर दिया। आगे आप जानें या आपका काम।"

रौशंख बेगम ने बड़े ध्यान से पत्र सुना। कौसर भी वहीं बैठी थी। सहसा उनकी बातें गंभीर कान्फ्रेंस में परिणित हो गई।

इस गोष्ठी का हर एक सदस्य विचारों के आदान-प्रदान में भाग ले रहा था। आखिर निर्णय हुआ कि शीघ्र बिस्तर बाँध लिया जाए।

रौशंख बेगम रोती हुई दाखिल हुई। इस घर के दरो-दीवार पर—मृत भाई का चित्र उन्हें हर ओर छाया हुआ प्रतीत हुआ। भाई के चित्र को देखकर वह सहसा रोने लगीं। घर के और लोग भी सौजन्यवश रोने लगे। सुरैया से वह बड़े स्नेह से मिलीं, जैसे कौसर उनकी सौतेली लड़की है और सुरैया उनकी वास्तविक पुत्री। इसी प्रकार वह मनसूर की उपस्थिति में अख़तर की परवाह नहीं करती थी।

शाकिर से खिची-खिची रहती थीं जो इनके मनसूर और सुरैया की प्रसन्नता एक आँख से भी नहीं देख सका।

चलो कर ली मनसूर ने शादी सनोबर से, हो क्या गया फिर ? इतना झगड़ा करने की आवश्यकता क्या थी। सुरैया भी पढ़ी-लिखी है—उसने भी एक व्यक्ति को बना लिया अपना जीवन संगी। किसीके साथ भाग तो नहीं गई ? उसे भी प्रेम करने का अधिकार है—यह उसकी मानसिक आवश्यकता है—इसमें अनुचित और गलत क्या था ?

वह सनोबर से भी खुलकर मिलती थीं। बेटी-बेटी कहती उनकी वाणी सूख जाती थी। जब देखो उसके पास बैठी बच्चे को खिला रही हैं, शाहृद के

देखने की और बुला लेने की भी उन्हें बेहद उत्सुकता थी।

वह शाकिर को सुनाकर पुनः पुनः कह चुकी थीं, भलापन वंश से नहीं, भलाई से होता है। हज़रत नूर अस्लाम का बेटा तो पैगम्बर-ज़ादा था और हज़रत 'असहाब कैफ के कुत्ते क्या से क्या बन गए ?"

अपने इस व्यवहार से कुछ ही दिनों में रौशंख बेगम ने वह ख्याति प्राप्त करली कि अम्मीजान तक उनसे स्पर्धा करने लगीं। सुरैया का अधिक समय उन्हींके साथ व्यतीत होता था। मनसूर उनका आदर किसी प्रकार भी माँ से कम नहीं करता था। सनोबर तो उन्हें देख-देखकर प्रसन्न हुआ करती। आहिस्ता-आहिस्ता वह इन विपथगाओं के रहस्य की साक्षी बन गईं। मनसूर और सुरैया अपने प्राण उडेलते थे अपनी फूफीजान पर। अम्मीजान को उनसे विशेष स्नेह था। पति के जीवन में तो उन्होंने रौशंख बेगम से कभी बात-चीत नहीं की। शुरू-शुरू में तो वह अपने प्रति संकुचित रहीं लेकिन जब उन्होंने देखा कि इस समय रौशंख बेगम निपट बदल गई हैं, भाई की मृत्यु ने उनके हृदय को उज्ज्वल और निर्मल बना दिया है, उनके परिवार पर वह न्यौछावर हो रही हैं, तो उनका मन भी अम्लान हो गया—अब वह भी उन्मुक्त हृदय से उन्हें मिलती थीं, बड़ी ऊष्मा और आत्मीयता से।

कौसर और सुरैया, अख़तर और मनसूर, चारों लगभग एक ही आयु के थे। बड़ा सौजन्य और मित्रता थी, उनमें आपस में। रात-रातभर कौसर और सुरैया में बातें हुआ करतीं दिन-दिनभर। मनसूर और अख़तर में गहरी आत्मीयता रहती थी—एक आत्मा और दो शरीर बन गए थे।

मनसूर को अख़तर के बिना सैर और खाली समय में आनन्द नहीं आता था, सुरैया कौसर के बिना भोजन नहीं करती थी।

एक दिन बातों- बातों में अख़तर ने मनसूर से कहा—

"यार तुम सनोबर की किस चीज पर रीझ गए ?"

"यौवन पर।"

"तो क्या वही युवती है सारी दुनियाँ में ?"

"मेरी दृष्टि में वही है।"

"न रंग न सूरत, कुरूप कहीं की।"

"अखतर एक मेक-अप वह होता है जो स्टेज और फिल्म के अभिनेता-अभिनेत्रियाँ करती हैं और एक मेक-अप होता है प्रकृति का, और वह यौवन है—यौवन उत्तम मेक-अप है, बुढ़ापा इस मेक-अप का उतार है—बुढ़ापे में सुन्दर और कुरूप एक जैसे हो जाते हैं।"

"भला है यह आपका दृष्टिकोण।"

"मेरा तो दृष्टिकोण यही है। सनोबर का यौवन मेरे सामने था। मैं पागल हो गया। श्यामल शरीर पर जब सफेद पराग से दाँत चमकते हैं तो ऐसा आभास होता है कि चाँद बादल का आंचल हटाकर सामने आ गया है। उसकी छोटी-छोटी लेकिन मदभरी आँखों में मुझे समस्त ब्रह्मांड दिखलाई देता है। उसके मोटे-मोटे होंठ, कवियों की कल्पना में काव्यात्मक नहीं हैं, लेकिन मेरे लिए वे सेब हैं, सेब से भी अधिक मीठे। उसके चेहरे के अंग, जिनकी अलग-अलग समीक्षा करो, तो काव्य की भाषा में उनकी कोई भाषा नहीं मिलेगी, लेकिन जब वे एक साथ दृष्टि के सामने आते हैं तो जम जाते हैं दृष्टि में।

उसके चेहरे पर जब मेरी दृष्टि जाती है तो मैं कह नहीं सकता मेरी क्या दशा होती है—वहाँ मुझे प्रातः और सायं-काल का आभास होता है।

वह सौंदर्य दूसरों को न दिखाई दे, तो यह मेरा दोष कैसे है ? मेरे दिल पर उसका चरम सौंदर्य चित्रित है—दूसरे उसे चुड़ैल समझते हैं, समझें, मुझे क्या परवाह ?"

"हेयर-हेयर। खूब प्रशंसा की उसकी तुमने, तुमने व्याख्या ही कर दी। शाबाश। भाई हमें तो बहुत प्रभावित कर दिया।"

"(झुककर) धन्यवाद करता हूं, इस उत्साह और आत्मीयता पर।"

दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े। बात आई गई होगी।

शाहद ने अभी तक इस घर में पाँव नहीं रखा था लेकिन सुरैया कभी कभी उसके घर जाने लगी थी। कौसर से वह बड़ी सभ्यता और शिष्टता से मिला करता था।

एक दिन शाहद के घर से वापिस आते हुए कौसर ने कहा—

"सुरैया, एक बात पूछूं ?"

"आज्ञा की आवश्यकता है तुम्हें ?"

"मैं यह पूछती हूँ कि शाहद में कौनसी ऐसी बात है कि तुम दिल हाथ से दे बैठीं। मेरे भैया तो लाख बार अच्छे हैं, रूप में, आकार में, ऊँचाई में, बात-चीत में। उन महोदय को तो बात करनी भी नहीं आती और मेरे भैया तो बुलबुल की नाईं चहकते हैं। दर्जनों लड़कियाँ जान देती हैं उनपर। लेकिन वह किसी पर थूकते भी नहीं।"

सुरैया ने कोई उत्तर नहीं दिया। कौसर की बात निरन्तर चल रही थी।

"अल्लाह की सौगन्ध, बड़ा जी चाहता था कि आजीवन साथ रहते, अम्मां की कितनी आकांक्षा थी कि तुम्हें पुत्र-वधु बनाकर लायें। लेकिन तुमने सारा खेल बिगाड़ दिया। पगली कहीं की !"

सुरैया निरुत्तर मौन थी। कौसर ने उपयुक्त क्षण को पाकर कहा—

"शोक भैया को भी है इसका। वह मुंह से तो कुछ नहीं कहते। लेकिन मैं उनकी बहन हूं। खूब देख रही हूँ कैसे खोए-खोए से रहते हैं वह !"

सुरैया ने कहा—

"बहन तुम बहुत कुछ कह गईं। कुछ मेरी भी सुनोगी ?"

"ऐ—तो क्या कान बंद किए बैठी हूँ—कहती क्यों नहीं हो ? यहाँ है कौन ? या मैं या तुम।"

"तुम्हारे मन में मैंने शाहद का वरण गलत किया। मेरी दृष्टि अख्तर पर पड़नी चाहिये थी—क्यों यही न ?"

"हाँ, हाँ कहे जाओ।"

"लेकिन तुमने यह न सोचा कि प्यार एक ऐसी वस्तु है दुनियां में जो अकारण भी हो सकती है, उसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। तुम अख्तर की प्रशंसा करती हो, कहती हो बहुत सी लड़कियां उसपर मरती हैं।"

"कुछ असत्य थोड़े ही कहती हूं !"

"मैंने कब कहा, असत्य कहती हो ? "हाँ लड़कियाँ सुन्दर भी तो होंगी—क्यों ?"

"निस्सन्देह ।"

"लेकिन अख़तर ने उन्हें ठुकरा दिया—उनका सौन्दर्य कुछ भी नहीं कर सका ?"

"बिल्कुल नहीं ।"

"क्यों ?"

"दिल ही तो है ।"

"यही तो मैं कह रही हूं, वास्तव में यही बात है, हो गया मुझे प्रेम शाहद से । और ऐसा हुआ कि अब संसार में उस जैसा सुन्दर, सुशील, और आकर्षक कोई भी नहीं । यहां तक कि अख़तर जैसा कोई सुन्दर और मनोहर भी नहीं ।"

"पागल हो तुम तो ।"

"यही सही ।"

"ऊं—मुझे क्या । मैंने तो एक बात कही थी ।" अब घर निकट आगया था । बात-चीत बंद हो गई और दोनों बहिनें चुपचाप घर में प्रविष्ट हुईं ।

एक मास से अधिक समय बीत गया । इस समय में कोई विशेष बात धटित नहीं हुई—सिवाय इसके कि फ़ूफीजान की प्रतिष्ठा और ख्याति बहुत बढ़ चुकी थी ।

एक दिन सुरैया नित्य की भाँति कौसर से मिल-जुलकर बातें कर रही थी कि भोजन के लिए वस्त्र बिछ गया । सबने साथ मिलकर खाना खाया । खाना खाकर सब लोग अपने-अपने कमरे में लेटने चले गए । घर के सब लोग नींद से अत्यन्त रसिक थे ।

सुरैया अपने कमरे में आई । उसने अपना बिस्तर झाड़ा तो तकिए के नीचे एक सुगन्धित और सुन्दर-सा लिफ़ाफ़ा दिखाई दिया । पता देखा तो उसी का नाम, लिखाई पहचानने की कोशिश की, लेकिन कुछ भी पता नहीं चला ।

उसने लिफ़ाफ़ा खोला, पत्र निकाला और पढ़ना शुरू किया—

"सुरैया !

आज पहली बार मैं दिल के हाथों विवश होकर तुम्हें सम्बोधित करने का साहस कर रहा हूं।

मैंने एक से एक सुन्दर स्त्री और बड़ी आधुनिक और आचारशील स्त्रियाँ जिन पर देखने वाले शलभों की नाईं फ़िदा होते हैं, देखी हैं। लोगों के दिलों पर जिन-जिन स्त्रियों के सौन्दर्य का राज्य था, जिन्हें देखकर दिल मचलने लगता था, वे मेरी नजरों के सामने से गुजरीं, मैंने उन्हें भी देखा। जिन्हें अपने यौवन पर गर्व था, उन्होंने अपने यौवन को मेरे चरणों पर लाकर रख दिया, अपने आपको मुझे सौंप दिया, अपने सौन्दर्य को मेरे प्रति समर्पित कर दिया, लेकिन मेरा दिल किंचित् भी डिगा नहीं।

मैंने तुम्हें देखा और ऐसे लगा, मुझे मेरे दिल ने पछाड़ दिया है। मैं विवश हो गया, जो मस्तक पहले किसी स्त्री के सामने नहीं झुका था, उसे तुमने झुका दिया। सराहना करता हूं तुम्हारी, जिसने मेरे दिल पर साम्राज्य स्थापित कर लिया।"

तीर-पर-तीर चलाओ तुम्हें डर किसका है।
सीना किसका है मेरी जान जिगर किसका है॥

मैं अब तुमसे पूछता हूँ कि इस घायल, दिल का क्या करूँ? बताओ तुम मुझे, मैं इसका उपहार लेकर आया हूँ।

'गर कबूल उफतद है अजोशरफ'

यदि तुम चाहो तो इसे ठुकरा भी सकती हो। ठुकरा दो। तुम्हारी ठोकरों से यह टूट जायेगा, नष्ट हो जायेगा। इसका भाग्य सुधर जायेगा, मर जायेगा, लेकिन वह मृत्यु जिस पर हजारों जीवन न्यौछावर किए जा सकते हैं।

और अधिक क्या लिखूं? तुमसे दो बातें करना चाहता हूं। यदि मुझे जीवित देखना चाहती हो, तो स्वीकार करो। किसी तरह भी, कहीं भी केवल दस मिनट के लिए मेरे दिल की गाथा मेरे मुंह से सुन लो— बस।

यही आरजू है यही मुद्दआ है।

केवल तुम्हारा

सुरैया ने यह पत्र पढ़ा और क्रोध से अधीर हो गई। वह कमरे में टहलने लगी। उसे अख़तर पर ग्लानि हो रही थी, उसका जी चाह रहा था, उसे गोली मार दे।

उसके मन में आया, मनसूर को इसका पता दे। वह छिपकर अपने कमरे से निकली और बड़ी त्वरा के साथ ऊपर पहुँच गई। मनसूर वहां नहीं था। वह आए पाँव वापिस आई। रास्ते में कौसर का कमरा बिल्कुल-अलग था। निकट पहुँची तो उसने सुना कि मनसूर और कौसर की बातें करने की ध्वनि आ रही है। वह चौंकी, ठिठकी, और दरवाज़े की ओट में खड़ी होकर सुनने लगी।

"मनसूर तुम इतने क्रूर हृदय क्यों हो ?"

"क्या खूब ! क्रूरता तो तुम सिखा रही हो।"

"मैं ?"

"हां तुम।"

"वह कैसे ?"

"तुम्हारा आशय यही तो हुआ कि मैं सनोबर को छोड़ दूं और तुम्हारा हो रहूं। यह क्रूरता नहीं है कि मैं उस निरापराध को छोड़ दूं, जिसे अपना चुका हूं।"

"उस नीच लौंडी का क्या ? मेरी उसकी क्या तुलना है ?"

"यह मेरे दिल से पूछो।"

"तुम उसे मुझसे अच्छा समझते हो ?"

"सारी दुनियां से अच्छा समझता हूं उसे।"

"मुझे ठुकराते हो ?"

"यदि यह ठुकराना है तो निस्सन्देह ठुकराता हूं तुम्हें।"

"यह मेरे प्रेम का प्रतिदान है ?"

"बल से प्रेम का मैं पक्षपाती नहीं।"

"इतना खुश्क उत्तर दोगे, ऐसी टेढ़ी-टेढ़ी बातें करोगे ? यूं मेरा दिल अपने पलकों के नीचे रोंदोगे ? इस प्रकार मेरी अभिलाषाओं और आकांक्षाओं

का खून करोगे ? (रोने लगती है) मेरी ओर देखो, मैं तुम्हें चाहती हूं। सम्पूर्ण अस्तित्व के कोने-कोने से चाहती हूं।"

"धन्यवाद, परन्तु मैं सनोबर को समस्त हृदय से चाहता हूँ।"

"मैं अपमान नहीं सहन कर सकती अपना।"

"तो गालियां दे लो मुझे।"

"इससे मुझे शान्ति नहीं मिलेगी।"

"तो जूती उतार लो और मारो मुझे।"

"यह मैं नहीं करने की।"

"फिर क्या करोगी ? आखिर मोक्ष भी होगी तुमसे मुझे ?"

"मैं तुम्हें अपमानित करूंगी, तुम्हारी निन्दा करूंगी, तुम्हें कहीं का भी नहीं छोड़ूंगी।"

"यह किस प्रकार ?"

"तुम मेरे कमरे में क्यों आये ? मैं युवती हूँ, तुम युवक हो। सारे घर में सन्नाटा छाया हुआ है। तुम दोपहर के समय एक युवती के कमरे में घुस आए, क्या मैं भी सनोबर हूं, वह रही दो कौड़ी की नीच छोकरी ? मुझे अपनी प्रतिष्ठा और मान की आवश्यकता है। मैं ऐसे भी निर्लज्ज हथकण्डे जानती हूँ— देखो, अब भी मान जाओ, नहीं तो चीखती हूँ मैं।"

"लेकिन तुमने बुलाया था मुझे एक बात करने के लिए।"

"ऐ हैं बड़े बात सुनने वाले। मैं तुमसे एकांत में बात क्यों करने लगी, तुम मेरे होते कौन हो ? मुझे बात करनी होती तो तुम्हारे कमरे में आ जाती, तुम मेरे कमरे में कैसे आगए —बड़े भोले बने फिरते हैं बेचारे ?"

"तुम इतनी चतुर हो ?"

"मैं चतुर-वतुर कुछ नहीं जानती, सीधे से मानते हो तो खैर, नहीं तो पुकारती हूं मैं सारे घर को।"

मनसूर की साँस फूलने लगी। उसकी समझ में नहीं आता था, क्या प्रत्युत्तर दे ?

इतने में तपाक से दरवाजा खोलकर सुरैया कमरे में प्रविष्ट हुई। उसे देखकर कौसर ज़रा झिझकी, लेकिन सहसा ही रोने लगी, कहने लगी—"सुरैया ! देखो अपने भैया की करतूत, मुझ पर डोरे डाल रहे थे। अभी तुम न आ गई होतीं तो उन्होंने मुझे कहीं का न रखा था।"

मनसूर संज्ञाहीन खड़ा था और कौसर रोती जा रही थी।

सुरैया कड़की—

"बन्द करो कौसर यह प्रपंच। सब जानती हूँ मैं। मेरा भाई तुम जैसी छोकरियों पर नज़र नहीं डालता। तुमने पाश फेंका अपना, लेकिन वह निकल गया बचकर।"

"तुम भी इनका पक्ष लेने लगीं, सुरैया तुम तो स्त्री हो, तुम तो मेरा साथ दो।"

यूंही साथ दूँ ? तुम मेरे भाई को पथभ्रष्ठ करने की चेष्टा करो और साथ दूँ मैं तुम्हारा ?"

कौसर फिर रोने लगी। सुरैया ने कहा—"सब कुछ सुन रही थी। तुम्हारी एक-एक बात मैंने दरवाजे की ओट में खड़ी होकर सुनी है। तुम्हारी विवशताएं देखी हैं मैंने और मानमानौती भी। तुम्हारे प्रेम का अभिनय भी देखा है। तुम स्वाँग खूब रचती हो और दलाली की कला से भी खूब परिचित हो। मेरे कमरे में कोई नहीं जा सकता, मेरे तकिए के नीचे अखतर का प्रेमपत्र भी तुम ही रख सकती थीं। अब मैं समझी तुम लोगों के आने का उद्देश्य क्या था ? तुम मेरे भैया को फंसाना चाहती थीं और तुम्हारा भैया मुझे अपने पाश में आकृष्ट करना चाहता था। लेकिन तुम्हारा चुनाव गलत था—न मेरा भैया कच्ची गोलियाँ खेलता है कि तुम्हारे पाश में जकड़ा जाए और न मैं इतनी नन्हीं हूँ कि तुम्हारे भैया मुझे मेरे पथ से भ्रष्ट कर दें।

कौसर बिल्कुल मौन थी और सुरैया कहे जा रही थी—"खूब याद आया उस दिन जब हम शाहद के घर से बाहर आ रहे थे, किस आनन्द से शाहद की निन्दा की जा रही थी और अखतर का गुणगान किया जा रहा था...यह

थी चाल ।"

मनसूर ने कहा—

"हाँ मुझे भी याद आया। यह अख़तर मेरे सामने जब देखो कौसर की प्रशस्ति गाया करता था। आकाश पृथ्वी के रूपक बाँधा करता था, और सनोबर की जान-बूझकर निन्दा किया करता था। सच कहती हो तुम सुरैया, इन दोनों के आने का उद्देश्य यही था कि हम दोनों पर डोरे डालें।"

सुरैया ने कहा—

"और क्या ? खूब समझ गई मैं इन दोनों को, मैं इस समय यदि यहाँ न होती तो भैया तुम तो इतने हतचेत् हो गए थे कि यह तो चीख-चीखकर घेर को इकट्ठा कर लेती। तुम्हारे बनाए कुछ न बनता और मुफ्त में तुम्हारी भर्त्सना होती।"

सुरैया फिर कौसर से सम्बोधित हुई—

"तुम भाई-बहन ने वह कुकृत्य किया है जिसे कभी क्षमा नहीं किया जा सकता। तुम्हारे साथ ऐसा बर्ताव होना चाहिए कि दूसरों को शिक्षा मिले, मेरा जी चाहता है तुम दोनों के आवरण पलट दूँ और बता दूँ घर भर को कि देखो, इनका वास्तविक रूप यह है। लेकिन मैं क्षमा करती हूँ। शर्त यह है कि तुम भाई-बहन, अपनी माँ के साथ यह घर चौबीस घंटे के अन्दर-अन्दर छोड़ दो, नहीं तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा। यह कहकर सुरैया मनसूर के साथ बाहर निकल गई और कौसर वहीं बैठी रही।

दूसरे दिन फूफीजान का बोरिया-बिस्तर बाँधा गया। अम्मीजान ने, शाकिर ने, सबने रोका, मगर वह फैसला कर चुकी थीं। उन्होंने अपना बंधा हुआ सामान न खोलना था न खोला। बहुत आग्रह हुआ तो कहने लगीं कि मुकद्दमे के विषय में शीघ्र जाना है, नहीं तो लाखों की हानि होगी।

फूफी को विदा करने के लिए सुरैया और मनसूर भी आए। सबसे उन्होंने रो-रोकर विदा ली। सुरैया को भी गले से लगाया और मनसूर को भी, लेकिन उनकी आँखें कह रही थीं—विवश हैं हम, नहीं तो तुम दोनों को कच्चा चबा जाते।

फूफीजान को चलते समय मनसूर ने और सुरैया ने सलाम किया। उन्होंने गरदन की भंगिमा से अशीर्वाद दिया परन्तु शाकिर को गले से लगाकर रोने लगीं। आज उनका दिल शाकिर के स्नेह से विह्वल था। सुरैया और कौसर में, और मनसूर और अख़तर में भी विदा हुई लेकिन इस विदा में घृणा की अग्नि भड़क रही थी। इसे देखने वाले नहीं महसूस कर रहे थे। केवल गले मिलने वाले और हाथ मिलाने वाले अनुभव कर रहे थे।

फूफीजान चली गईं। घर सूना हो गया। वह चहल-पहल नहीं रही जो उनके कारण थी। शाकिर उनके जाने से बहुत उदास हुआ और सोच रहा था कि यह अन्तिम प्रयास भी असफल रहा।

३८

सायं की नमाज पढ़कर अम्मीजान अपनी चारपाई पर सोने के लिए लेट चुकी थीं कि शाकिर पहुँचा। उसे देखते ही उन्होंने लेटे-लेटे तकिया दोहरा कर सिर ऊँचा कर लिया और कहा—"कोई काम है ?"

"बहुत आवश्यक काम है आपसे।"

"कहो क्या है ? ऐ हाँ यह तुम्हारी फूफीजान तो खूब गईं। कहाँ तो इस प्रकार रह रही थीं जैसे मरकर निकलेंगी यहाँ से, कहाँ एक दम बिस्तर उठाया—यह जा-वो-जा—विचित्र ढंग हैं इनका।"

"अम्मीजान, फूफीजान पर धिक्कार है। अच्छा हो गया चली गईं। मैं एक और मामले में परामर्श लेने आया हूँ आपका……"

"कह तो रही हूं, कहो क्या बात है ?"

"आप भी प्रायः बहुत बड़ी ग़लती कर जाती हैं।"

"क्या किया मैंने लड़के, यह लो, कोई नहीं मिला तो मैं सही। कोई तो चाहिए लड़ने के लिए।"

"आपने सुरैया और मनसूर दोनों को क्षमा कर दिया।"

"हां कर दिया।"

"अब वे और ख़राब होंगे। मनसूर ने वह किया जो आज तक किसी भद्र पुरुष ने नहीं किया था। सुरैया ने वह किया जिस की कल्पना से रोंगटे खड़े होते हैं। और आपने उनकी चिकनी-चुपड़ी बातों में आकर लगा लिया उन्हें हृदय से।"

" तो क्या फांसी दे देती उन्हें ?"

"यह मैं कब कहता हूं ?"

"आशय तो यही है तुम्हारा ?"

"मेरा मतलब केवल यही था कि मेरे साथ यदि आप भी इनसे क्रुद्ध रहतीं तो वे ठीक रास्ते पर आ जाते। मियाँ मनसूर तो सनोबर के यौवन पर रीझे हैं। यह नहीं पता आज चढ़ी हुई है कल सूख जावेगी। यही दशा सुरैया की है। वह भी जब देखती कि सारा घर छोड़ रहा है उसे तो ठीक रास्ते पर आ जाती। परन्तु अम्मीजी आपने तो सारा खेल बिगाड़ दिया।"

"मैंने भैया खेल-वेल कुछ नहीं बिगाड़ा। सन्तान अयोग्य हो भी तो, माँ उसे नहीं छोड़ सकती।"

"चाहे वह कुटुम्ब की मर्यादा कलंकित करदे।"

"ऐ चलो भई—बड़े आए कुल-मर्यादा वाले, तुम जहरा से विवाह कर रहे ते, तब यह मर्यादा कहाँ चली गई थी ? तुमने यासमीन को रानी बना दिया, तब यह मान-मर्यादा कहाँ गई थी ? मेरे सामने बढ़-बढ़कर बातें न बनाओ।"

"अम्मीजान आप तो उलटी मुझ पर पलट पड़ीं। आपका मन भी विचित्र है ! क्षण में कुछ, और क्षण में कुछ।"

"मेरे कुंवर भाषण न दो बेटा, नहीं तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा और सुनो।"

"आपके सुशील स्वभाव का पहला परिणाम तो यह होगा कि हर चीज के टुकड़े हो जायेंगे। जो इमारत हमारे बाप-दादों ने अपना खून- पानी एक करके बनाई थी, उसे खंडहर बना देंगे मनसूर और सुरैया।"

"हमें क्या, वे जानें उनका काम—जो हिस्सा उनका निकलता है, उन्हें दे दो। जब उनका अधिकार है ही, तो देना ही पड़ेगा। प्रसन्नता से नहीं दोगे तो वह अदालत कचहरी में जाकर ले लेंगे।

"आप इसपर भी सहमत होगईं।"

"कैसी बातें करते हो शाकिर, मेरे सहमत होने से क्या होता है, तुम किसीके अधिकारों को दबाए बैठे रहोगे तो वह कब तक मौन साधे रहेंगे ?

"अम्मीजी, आप तो एक ही दिन में परिणित हो गईं, क्या हो गया है आपको ?"

"मुझे कुछ नहीं हुआ है। तुम्हें हुआ है जो भाई-बहिन को माँ की सम्पत्ति से पृथक् करना चाहते हो। बुद्धि का इलाज करो, इलाज।"

"अच्छा अब सो जायें आप, मैं जाता हूँ।"

"जाओ।"

शाकिर कमरे से बाहर निकला और अम्मीजान ने तकिया ठीक किया। आँखें बंद कीं और लेट गईं करवट बदलकर।"

३६

इन षडयन्त्रकारी घटनाओं के प्रारम्भ में रज़िया अपने सुसराल में थी। लेकिन घर वालों के व्यवहार में दिन प्रति दिन अजनबीपन की वृद्धि हो रही थी। जहरा के होते हुए शाकिर किसी न किसी सीमा तक घर से सम्बन्धित था, लेकिन यासमीन ने इस प्रकार उसे अपने पाश में बाँध लिया था कि वह आरफ़ और रज़िया दोनों को मृतप्राय समझने लगा था।

वह अपने मायके से बिन बुलाये सुसराल आ गई थी। फिर उसका मन अधीर हुआ, बिन बुलाये वह सुसराल से मायके चली गई।

वहाँ उसका बड़ा स्वागत होता था। सभी उसका आदर करते थे। शाकिर के कुकृत्य अब सब जान गए थे। रज़िया का धैर्य सब देख रहे थे। स्वभावतः उस घर के सभी प्राणियों को उससे सहानुभूति हो गई थी, बड़ी गहरी सहानुभूति। सब इसे देख-देखकर कुढ़ते थे, देख रहे थे, उसके यौवन की आभा और आलोक सूखकर निःस्तेज हो गया था। वह सूख कर काँटा हो गई थी। कैशोर्य के निखार की जगह बुढ़ापे ने लेली थी। वह हर विषय पर बात करती थी, लेकिन अपने विषय में न कुछ कहती थी, न सुनती थी। लोग जानते थे कि इस चर्चा से उसका दिल दुखेगा। वह स्वयं कन्नी काट जाते थे।

वह अपने कमरे में लेटी हुई थी। बीता हुआ युग उसकी कल्पना की आँखों के सामने चलचित्र की भाँति फिर से गुजर रहा था।

उसके सामने शाकिर की तस्वीर आई। प्रेम करने वाला पति, प्राण देने वाला प्रेमी। यह तस्वीर शीघ्र ही आँखों के सामने से हट गई। फिर मनसूर''''''उससे खुले रूप में प्रेम और प्यार का इकरार करता दिखाई

दिया। यह तस्वीर भी आग के शोले की तरह जल्दी-जल्दी उभरी और वातावरण की पैनी तहों में खो गई। अब हाशिम की तस्वीर आई। यह तस्वीर उसकी आँखों के सामने आकर जम गई। पिछली बातें एक-एक करके उसे याद आने लगीं। वह बचपन में दोनों का साथ खेलना, खेलते-खेलते लड़ना, उसका रूठ जाना और हाशिम का मनाना, हाशिम का उसके साथ शरारतें करना, उसका हाशिम को गुदगुदाना, धौल-धप्पा, शरारत, गम्भीरता, दोस्ती, दुश्मनी, मेल, रंजिश, कुछ क्षणों में ही इतनी भिन्न-भिन्न बातें हो जाना······ और फिर इनके बाद दोनों का इस प्रकार सब कुछ भूल जाना, जैसे कुछ हुआ ही नहीं था।

फिर अब्बाजान का शाकिर को पसंद करना, बिना मेरी राय लिए ही उसके साथ शादी कर देना······मेरा अकेले-अकेले में रोना, बिलखना, हाशिम को याद करना, परन्तु सबके सामने खामोश हो जाना······काज़ी जी का आना और निकाह पढ़ना······शाकिर के घर जाना और उसकी मुहब्बतों में ग़म की कटुता का कम हो जाना, अपने प्रेम की अपेक्षा पति की वफ़ादारी के विचार को सन्मुख रखना, अपने ऊपर जबरदस्ती उसके प्रेम के विचार को लादना, और सचमुच उससे मुहब्बत करने लगना, दुनिया की हर वस्तु को उसकी अपेक्षा बेकार समझना······

फिर शाकिर का जहरा पर आशिक होना, और मुझे बिलकुल भूल जाना, फरामोश कर देना, फिर हाशिम का आना, पूरी सुन्दरता, बाँकपन और मन-मोह लेने वाले ढंग से उसका कमंद फेंकना और मेरा बचकर निकल जाना··· यह दृढ़ निश्चय कर लेना कि मैं शाकिर की हो चुकी, और अब मेरा उसके सिवाए और कोई नहीं हो सकता। इस निश्चय से दिल की लगन का युद्ध, मलयुद्ध, टकराव, खेंचातानी······परन्तु मेरा इन सबको जीत लेना और हाशिम को साफ़ जवाब दे देना।

फिर उसका ऊबकर दार्जिलिंग चले जाना, मेरा शाकिर के यहाँ जाना, वहाँ पहले से भी अधिक अपमान का बरताव, और फिर अपने घर लौट आना।

यह सब बातें बड़ी तेजी के साथ उसके मस्तिष्क पर उभर रही थीं और चल रही थीं। एकाएक उसकी आँखों से आँसू चलने लगे। उसने तकिये से मुँह ढाँप लिया और फूट-फूट कर रोने लगी। तकिया तर हो गया परन्तु उसके आँसू न सूखे। उसके आँसुओं का सागर तो उस समय ज्वार भाटा के हिचकोले खा रहा था। तूफान आ रहा था। उसका बहाव रोके नहीं रुकता था। आँखों के सागर की शोरीली, तेज, बलवान और आकाश से टकराने वाली लहरों को पलकों की कमजोर फसील कैसे रोकती ? पानी आता था और पलकों की खिड़कियों से रास्ता बनाता हुआ झरने की तरह गिरने लगता था।

इतने में मुन्शीजी ने आवाज दी। यही अब हाशिम के मैनेजर और कुल-मुख्तार थे। घर के बड़े-बूढ़े माने जाते थे। कई पीढ़ियों से इसी घर की सेवा कर रहे थे। उनसे घर भर में कोई पर्दा नहीं करता था। यह घर में खुले तौर पर आ-जा सकते थे।

रजिया हड़बड़ाकर उठ बैठी। उसने जल्दी से आँसू पोंछे, बाल ठीक किए, सिर पर दुपट्टा रखा और कहा—

"आ जाइये।"

आ गये वह। रजिया ने पूछा—

"कब आए आप दार्जिलिंग से ?"

"अभी आया हूँ बिटिया, और सीधा तेरे पास चला आ रहा हूं।"

"हाशिम अच्छे हैं ?"

मुन्शी जी रोने लगे। रजिया घबरा गई। उसने कहा—

"अरे आप रो क्यों रहे हैं ? क्या हुआ ? ईश्वर के लिए कुछ बताइये तो ?"

"क्या बताऊँ बेटा ?" वह फिर रोने लगे।

"वह जीवित तो हैं ?"

"मेरे आने तक तो श्वास आ रहे थे।"

"बीमार हैं वह ?"

"बीमार नहीं। (आवाज भर्रा गई) कबर के मुँह पर······न जाने कहाँ

से उन्हें एक छोकरी कमला मिल गई। कहते थे खरीदा था उसे! किसी आदमी रामू से। हज़ार जान से फ़िदा है उन पर। न सोती है, न खाती है। उन्हें शराब पिलाया करती है। पाँव दबाया करती है और जब वह ज़ोर से दिल पकड़कर बेहाल होने लगते हैं, तो उन्हें देखकर रोने लगती है। दिल के दौरे तो अब प्रायः पड़ते हैं।"

"कौन है यह कमला ?"

"बड़ी अच्छी लड़की है, बिटिया।"

"लेकिन है कौन ?"

"स्वयं ही बता रही थी कि किसी अच्छे घर की लड़की थी। रामू उसे भगा लाया और पेशा करवाने लगा। वहाँ कहीं यह पहुंच गए। उसने देखा, यह वैसा ग्राहक नहीं है, जैसे रोज़ आया करते हैं। रुपया पानी की तरह बहाता है। रात-रातभर रहता है, परन्तु न उसकी आँखों में वासना का शैतान नाचता है, न उसके मुख से शैतान की वासना बोलती है। शराब पीता है, नशे के लिए नहीं, किसीकी याद में खो जाने के लिए, किसीको भूल जाने के लिए, मौत को दावत देने के लिए। उसे ऐसे अनोखे आदमी से दिलचस्पी पैदा हुई। उसने कहा, 'मुझे इस दुनिया से निकालो। मैं तुम्हारे चरणों में रहना चाहती हूं।' उन्होंने एक कहकहा लगाया, 'पगली कहीं की। उस दिल में रहना चाहती है, जो मेरा नहीं है। उस घरमें बसना चाहती है जिसके दरवाजे बन्द हो चुके और किसीके खोले नहीं खुलते। उस आदमी की बनना चाहती है, जो स्वयं अपना ही नहीं है, तुझे रुपया चाहिए, तू रुपया ले। जितना जी चाहे माँग, मिल जाएगा लेकिन इससे आगे यदि तू बढ़ेगी तो पछताएगी।" उसने कहा—"मुझे रुपया नहीं चाहिए। तुम्हारी मुहब्बत भी नहीं चाहिए तुम्हारा जिसको जी चाहे, पूजो, किन्तु मेरे इरादे पर तो ताला न लगाओ। मैं तुम्हारी दासी बनकर, या बहुत मेरी इज्जत करो, तो तुम्हारी बहन बनकर तुम्हारे पास रहना चाहती हूं। इससे अधिक मैं कुछ नहीं चाहती।"

रामू से बात-चीत हुई। सौदा हो गया। आ गई कमला उनके पास। मैं

तो बिटिया उस लड़की के जिगर को कहता हूँ। और कोई हो तो उनसे नफरत करने लगे। बड़े-बड़े बाल, बड़ी लम्बी दाढ़ी। जब से दार्जिलिंग गए है, हजामत नहीं बनवाई। बड़े-बड़े नाखून, मुंह से हर समय शराब की भभक, हर समय शराब के नशे में धुत्त······

···परन्तु वह उनकी इस प्रकार सेवा करती है, कि लैला ने मजनूं की सेवा क्या की होगी। मैं तो यह तमाशा देखकर दंग रह गया बिटिया !"

"बहुत अबतर हो गई है हालत ?"

"अबतर ? अरे, अब उनमें रहा क्या है ? दीवाने तो वह हैं ही। कमरे में दो चित्र लटक रहे हैं एक उनका अपना, एक तुम्हारा···जब देखो, तब चित्रों से बातें कर रहे हैं। न मालूम क्या ऊल-जलूल बका करते है ? घंटों गुजर जाते हैं कमरे में अकेले बैठे हुए। कमला को लजाजत नहीं है कि उनकी बातों में आए। बेचारी पहरों खाना लिए दरवाजे से खड़ी रहती है। जब बातें करते-करते जी भर जाता है, तब कमला को उपस्थिति की आज्ञा मिलती है। बड़ी सख्त ताकीद हैं। न हमारी बातें सुनो, न हमारी बातों के समय हमसे कोई बात करो। कमला तो बड़ी एहतियात रखती है ऐसे अवसर पर। दूर ही दूर रहती है। मैंने कई बार सुनने की कोशिश की, कि आखिर देखूं, तो, क्या बातें करते हैं। परन्तु कमरा होता है अन्दर से बन्द। वह बातें करते हैं चुपके-चुपके। बस सनसनाहट-सी महसूस होती है और बस···"

"मैं क्या पूछ रही थी और आप क्या कह रहे हैं ?"

"क्या पूछा था तुमने बिटिया ?"

"सेहत कैसी है ?"

"मेरे सामने सिवलसर्जन आया था। कह रहा था। कि यह अब बचने के नहीं। जब तक चल रहे हैं, चल रहे हैं। कोई बड़ा सदमा पहुँचा है इन्हें। मैंने लाख टोह लगाई, मगर उनसे भला पूछ सकता है कोई उनका भेद ?"

रज़िया के मुख पर उस समय जो भावों की दशा थी उसे शब्दों द्वारा नहीं कहा जा सकता। मुन्शीजी थोड़ी सी देर रुके। फिर कहने लगे—

"हाँ बेटी, तुम्हें बहुत पूछ रहे थे वह !"

"क्या पूछ रहे थे ?"

"पूछ रहे थे कि खुश है रज़िया ?"

"आपने क्या जवाब दिया ?"

"बिटिया मैं क्यों झूठ कहता ? जो देखता हूँ, वही सुना दिया उन्हें ?"

"क्या सुनाया आपने ?"

"वही शाकिर मियां की हरकतें।"

"क्या बोले वह ?'

"बोलते क्या ? दिवाने तो हैं ही ?"

"आखिर कुछ तो ?"

"शाकिर की ज्यादतियाँ सुनाकर जब मैंने कहा कि रज़िया बिटिया बहुत निढाल रहती हैं। डाक्टरों ने क्षय रोग बताया है। तो आव देखा न ताव। कहने लगे, "चुप बे बूढ़े खूसर !" और यह कहकर एक तमाँचा मार दिया मेरे कल्ले पर ! यह हालत है उनकी। उनके बाप ने कभी 'आप' के सिवाए 'तुम' में बात न कीं। उन्होंने चाँटा जड़ दिया। परन्तु मैं भी बुरा क्यों......वह अपने होश में कब हैं ?।'

"उन्हें यहां क्यों नहीं ले आते ?"

"एक बार ? दस बार कह चुका हूं।"

"क्या कहते हैं वह ?"

"कहते हैं, तुम दार्जिलिंग को कह रहे हो, मैं तो टमबकटो जाने वाला हूँ, जहाँ तुम भी नहीं पहुंच सकते। जब देखो, तब आ-आकर परेशान करते हो तुम......यह हैं उनकी बातें। मैं जाता हूँ खैर-खबर के लिए, दवा इलाज के लिए, वह समझते हैं मैं परेशान करता हूं। यह टमबकटो न जाने कौनसा शहर है, कहाँ है ? बिटिया, एक बात कहूँ ? सुनोगी इस बूढ़े की ?"

"जरूर, क्या है वह बात ?"

"तुम चलो मेरे साथ दार्जिलिंग। तुम जोर दोगी तो अवश्य मान जायेंगे वह ?"

"यह कैसे जाना आपने ?"

"तुम्हारी बात वह हमेशा से मानते आए हैं। इसे कभी रद्द नहीं करेंगे।"

"ऐसा होता तो जाते क्यों ?"

यहाँ मुन्शीजी भी कायल हो गये। उन्होंने गर्दन झुका ली और फ़र्श के बेल-बूटे देखने लगे। फिर उठे और चले गए।

सुबह कोई दस बजे के लगभग मुन्शीजी फिर घबराए-त्रबराए आए कहने लगे।

"कमला का तार आया है, हालत बहुत नाजुक है। दिल नहीं मानता, चला जाऊं ?"

"फौरन जाइये।"

"और जो वह खफ़ा हुए तो ?"

"मेरा नाम ले दीजिएगा। कहिएगा, मैंने भेजा है। यह भी कह दीजिएगा कि मैंने बुलाया है।"

"तो एक खत दे दो न बेटी।"

"खत नहीं। वह आपको झूठा नहीं समझते। आप मेरी ओर से जबानी कह दीजिएगा यह सब कुछ !"

"अच्छा बिटिया, यही सही।"

मुन्शीजी पहली ट्रेन से दार्जिलिंग रवाना हो गए।

वहाँ पहुँचकर उन्होंने अजीब हाल देखा। कमला की रोते-रोते आँखें सूख गई थीं। हाशिम मृत्यु-शय्या पर एड़ियाँ रगड़ रहा था। थोड़े-थोड़े समय में उसे दिल के दौरे पड़ते थे और हर दौरे पर यह भय होता था कि अब वह नहीं बचेगा।

मुन्शीजी उसके पास पहुंचे। उसकी यह हालत देखी और रोने लगे। हाशिम पर बेहोशी-सी तारी थी। नर्स पास खड़ी थी। उसने इंजेक्शन दिया। हाशिम ने आँखें खोलीं। मुन्शीजी को देखा।

"फिर आ गए आप ?"

"हाँ, रज़िया ने भेजा है मुझे। बुलाया है तुम्हें बेटा।"

हाशिम संभलकर बैठ गया। नर्स ने फिर लिटाने की कोशिश की। उसने नर्स का हाथ झटक दिया।

"हां, हाँ क्या कहा रज़िया ने ?"

"कहा है चले आओ। यहाँ रहो, मैं तुम्हारी देख-भाल करूंगी।

"मैं जान रहा हूं, मैं अब घड़ी भर का मेहमान हूँ। यह इन्जेक्शन अब मुझे जीवन-प्रदान नहीं कर सकते। मरीज़ अपनी हालत डाक्टर से अच्छी तरह जानता है। डाक्टर यदि कहते हैं कि मैं अच्छा हो जाऊँगा तो फीस के लालच में कहते हैं यह बातें।

"यह न कहो, बेटा।"

यह कहकर मुन्शीजी फिर रोने लगे।

हाशिम ने डाँटा—

"आप रो-रोकर समय नष्ट कर रहे हैं। अभी थोड़ी देर के बाद खूब जी भरकर रो लीजिएगा।"

मुन्शीजी चुप हो गए। कमला पट्टी से लगी चुप-चाप खड़ी थी। सुन्दर कटोरियों की तरह उसकी आँखें आँसुओं के पानी से भरी थीं।

हाशिम ने कहा—

"आपने मेरी हालत रज़िया से कह दी थी ?"

"हां।"

"और मैंने जो मना किया था।"

"मार लो बेटा जूते। न रहा गया मुझसे। वह पूछती गईं, मैं कहता गया।"

"क्या पूछ रही थी ?"

"कुरेद-कुरेद कर तुम्हारी बातें।"

"रोती नहीं थी ?"

"वह रोएगी क्या ? पहले सिर से पाँव तक आंसू बन गई है। जाने क्या आज़ार है उसे······उसका बचना······"

"फिर वही बुरे अलफ़ाज ?"

"बेटा, जो डाक्टर कहते हैं, वही मैं कह देता हूँ।"

"डाक्टर बकते हैं। उसे अभी जीवित रहना है। जिन्दगी का सुख उठाना है ?"

"अब क्या उठाएगी वह सुख ! दुख झेलते-झेलते उसकी जान पर बन गई और इस दशा को पहुंच गई। देखें (ठन्डी सांस लेकर) खुदा की क्या मर्जी है ?"

"आखिर उसे दुख क्या है ? तकलीफ क्या है ? चिन्ता क्या है ?"

"यही तो वह नहीं खुलतीं। वह घुली जा रही हैं।"

"तुम उसे क्यों न ले आए यहाँ ?"

"कहा तो था मैंने।"

"फिर······?"

"उन्होंने कहा, तुम हाशिम को यहाँ ले आओ। मैं उनकी सेवा करूंगी !"

"सच कह रहे हो ?"

"बेटा, मैं झूठ क्यों बोलने लगा ?"

हाशिम पर फिर दिल का दौरा पड़ा। नर्स ने उसे लिटा दिया। हाशिम ने आँखें खोलीं। मुन्शीजी से लेटे-लेटे कहा—

"आ गया वह समय, जिसकी मैं प्रतीक्षा कर रहा था। मेरी वसीयत सुन लो और शीघ्रता से मेरे हस्ताक्षर ले लो।"

मुन्शीजी फिर रोने लगे। हाशिम ने कहा —

"रोने का समय फिर भी मिल सकेगा, परन्तु मेरे हस्ताक्षर तुम फिर नहीं करवा सकोगे।"

हाशिम बोलता गया, मुन्शीजी लिखते गये।

"मेरा मृत शरीर यहाँ दफ़न न किया जाए। अपने शहर ले जाया जाए, वहाँ इसकी तदफ़ीन हो। मेरा नकद रुपया और जायदाद रज़िया और कमला में बराबर बाँट दिया जाए। मुन्शीजी को जिन्दगी भर दो सौ रुपया प्रतिमास वज़ीफ़ा मिलता रहे।"

मुन्शीजी ने रोते हुए कागज हाशिम की ओर बढ़ाया। उसने कांपते हुए हाथों से उसपर हस्ताक्षर किए। डाक्टर को नर्स ने पहले से ही बुला लिया। वह अपने दो सिसटरों समेत आ मौजूद हुआ था। वसीयत नामा पर उन्हीं लोगों ने गवाह के रूपमें हस्ताक्षर किए। मुन्शीजी को कलम वापस करते-करते हाशिम ने जल्दी से एक बेकली के साथ छाती पर हाथ रखा। गर्दन झुक गई।

फिर गई। मनका ढल गया।

डाक्टर ने फैसला कर दिया, मृत्यु हो गई। कमला बेहोश हो गई। मुन्शीजी पछाड़ें खाने लगे। नर्स ने धीरे से चादर उठाई और इस बेकरार मूर्ति को ढाँप दिया, जो अभी कुछ सैकण्ड पहले ही दिल के हाथों तड़प रहा था। कमरे पर विचित्र-सी सोगवारी छाई थी। डाक्टर गर्दन झुकाए और उसके असिस्टेंट हाथों में हैंड-बेग लिए चुपचाप खड़े थे।

लाश बर्फ में रखदी गई और मुन्शीजी रोते, सीना पीटते, कमला के साथ हाशिम की लाश लेकर पहली ट्रेन से रवाना हो गए। कमला अब होश में आगई थी और बड़े जब्त का सबूत दे रही थी। वह अपने को सम्भाले हुए थी और मुन्शीजी को भी सम्भाल रही थी।

मुन्शीजी ने चलते समय तार दे दिया था। स्टेशन पर एक बड़ी भीड़ दोस्तों, अजीजों, सम्बन्धियों की इस जवानांमर्ग के स्वागत के लिए मौजूद थी। दोस्त, दुश्मन, अपने, पराए, सभी रो रहे थे। पहले से ही टीस पड़ी हुई थी। घर में शव आया तो प्रलय आ गई। कोई ऐसा न था, जो रो न रहा हो। जिसकी आँखों से आँसू जारी न हों। रजिया कमला को सम्भाले हुए थी, लेकिन उस पर बार-बार बेहोशी के दौरे पड़ रहे थे।

यह समाचार शाकिर के घर भी पहुंचा। अम्मीजान कुछ बीमार थीं; न जा सकीं। मनसूर और सुरैया जाने के लिए तयार हो गए। चलते हुए मनसूर ने शाकिर से कहा—

"चलिए, आप भी चलिए!"

"मुझे फुरसत नहीं है।"

"बुरी बात है।"

"तुम तो जा रहे हो। बस काफी है यह।"

"आपका जाना मेरे जाने से अधिक जरूरी है।"

"मैं नहीं जाऊंगा।"

मनसूर खामोश हो गया। फिर उसने सुरैया को साथ लिया और रज़िया के घर पहुंचा। घर में प्रलय छाई हुई थी। हाशिम की मौसी और रज़िया की माँ रोते-रोते दीवानी हो गई थीं। उन्हें हाशिम से बहुत मुहब्बत थी। उन्हीं की देख-रेख में वह पला और बढ़ा था। मनसूर जब पहुँचा तो हाशिम का शव अन्तिम दर्शन के लिए अन्दर जनानखाने में पहुँचा दिया गया था। वह मर्दाना में ठहर गया। सुरैया अन्दर चली गई।

हाशिम का शव चारपाई पर रखा हुआ था। ऐसे लगता था जैसे अभी-अभी सोया है। घर के सम्बन्धी बारी-बारी से आते, उसका मुख देखते और आँसू पोंछते हट जाते।

अब रज़िया की बारी थी। उसने शव को देखा और कहने लगी—

"हाशिम, तुम बड़े चालाक हो। मैं तुम्हारी एक नहीं चलने दूंगी। तुमने सदैव मुझसे बढ़ जाने की कोशिश की। आज भी तुमने यही खेल खेला है। तुम बढ़े जा रहे हो, लेकिन मैं तुम्हारा दामन पकड़ लूंगी। साथ-साथ चलेंगे हम तुम!······जीवन की मंजिलें हम तुम साथ-साथ तय न कर सके, लेकिन मौत का सफ़र साथ-साथ शुरू करेंगे। जिन्दगी का क़याम आरजी था, मौत का क़याम दायमी होगा।"

वह कुछ और कहना चाहती थी कि उसकी मां आगे बढ़ी। उसने उसका हाथ पकड़ा, झंझोड़ा और कहने लगी—

"रज़िया!"

रज़िया ने माँ का हाथ झटक दिया। आगे बढ़ी। हाशिम के माथे को चूमा। उसके तलवों से आँखें मलने लगी। आँखें मलते-मलते वह त्योराकर गिरी और गर्दन डाल दी। वह जिन्दगी में हाशिम के सिर का ताज न बन

सकी। मरने के पश्चात् उसके पाँव की धूल बन गई।

सब लोग टूट पड़े उसपर। हाथों-हाथ वह अपने कमरे में पहुँचाई गई। तुरन्त ही डाक्टरों को टेलीफोन किया गया। कोई आधी दर्जन के करीब शहर के बड़े-बड़े डाक्टर कील-काँटे से ले तुरन्त आ मौजूद हुए। सबने नब्ज़ देखी। सबने दिल की आवाज़ सुननी चाही। सबने उसे मौत के पंजे से छुड़ा लेना चाहा। परन्तु अब वह इस तकल्लुफात से आज़ाद हो चुकी थी। उसकी आत्मा इस दुनियावी पिंजरे से उड़ चुकी थी। वह दुनियाँ से, दुनियाँ की बन्दिशों से, समाज से और समाज की पाबंदियों से मुक्त हो चुकी थी। अब उसपर किसीका वश नहीं चल सकता था। अब वह किसीके काबू में नहीं आ सकती थी।

रज़िया की मृत्यु एक ऐसी घटना थी, जिसपर विश्वास करने के लिए कोई भी तैयार नहीं था। परन्तु सबको मानना ही पड़ा। वास्तविकता छुपाए से नहीं छुपती, कोई माने या न माने। रज़िया की मौत भी ऐसी ही एक घटना थी, शक-संशय से दूर। मानने या न मानने से क्या अन्तर पड़ता है।

घर में कुहराम मचा हुआ था। तुरन्त ही यह समाचार घर से बाहर पहुँचा। मनसूर चकित-सा हो गया। सुरैया रोती हुई आई और मनसूर से लिपटकर रोने लगी।

कहने लगी, "भाईजान को अब तो बुला लाओ, खुदा के लिए!"

हाशिम की अर्थी रखी थी। अब रज़िया की बारी थी। वह आज दूसरी बार दुलहिन बनाई जा रही थी। आज उसे एक बार फिर इस घर से विदा किया जा रहा था।

पहले वह इस प्रकार यहां से गई थी कि जब चाहे, वापस आ सकती थी, आज इस प्रकार विदा की जा रही थी कि अब फिर कभी इस दहलीज़ पर पग नहीं रखेगी।

मनसूर गिरता-पड़ता घर पहुँचा। अम्मीजान मुस्सल्ले पर बैठी दुआ माँग रही थीं, और शाकिर अचकन पहनकर यासमीन के यहां जा रहा था। शाकिर

ने इस घबराई हुई हालत में उसे देखा, तो कहा—

"क्या बात है ?"

"भाभीजान का देहान्त हो गया !"

अम्मी ने दुआ छोड़ दी, दौड़ी आईं ।

"तेरे मुंह में खाक ! क्या बक रहा है ?"

"अम्मीजान, भाभी गुज़र गईं।"

शाकिर सिर पकड़कर बैठ गया। जिस पक्षी को उसने पिंजरे में कैद कर रखा था, वह आज इतने ज़ोर से फड़फड़ाया कि तीलियां टूट गईं और वह उड़ गया।

शाकिर का घर भी मातमकदा बन गया। सनोवर ने बाल नोंच डाले। शाकिर ने गरेबान फाड़ डाला। अम्मीजान की आंखों से आँसुओं की नदी बह निकली। घर के नौकर-चाकर धाड़ें मार-मारकर रोने लगे। ऐसा भी हो सकता है कि रज़िया मर जाए। इसका किसीको वहम गुमान तक न था, किन्तु यह वहम-गुमान एक वास्तविता बन गया—अटल, और घटित हो चुकी घटना !

अम्मीजान, मनसूर, शाकिर जब रज़िया के यहां पहुंचे, तो उसकी अर्थी भी तैयार हो चुकी थी। एक चारपाई पर हाशिम मृत्यु की नींद सो रहा था, दूसरी चारपाई पर काफ़ूर और ऊद में बसी हुई रज़िया लेटी थी। ऐसी मीठी नींद सो रही थी कि घर के यह हंगामे इसमें ज़रा सा भी खलल नहीं डालते थे।

अब रज़िया का अंतिम दर्शन शुरू हुआ। सबसे अन्त में शाकिर की बारी आई। वह आगे बढ़ा, किन्तु उसके दिल ने उसे डांटा, "खबरदार ! तू अपवित्र है। तेरी अपवित्र आँखें रज़िया के पवित्र मुख पर नहीं पड़ सकतीं। इस पवित्रता-पूर्ण शरीर को नहीं देख सकतीं। इस पवित्रता के निकट जाने का तुझे साहस भी नहीं होना चाहिए। वह रुक गया। उसके पग वहीं जम गए। उसकी आंखों से आंसू बहने लगे।

सुरैया आई । उसने कहा—"भाईजान, चलिए । दीदार कर लीजिए ।"

शाकिर ने कहा—"नहीं सुरैया, मुझमें इतनी ताव नहीं है । मैं रज़िया का मुख नहीं देखूंगा । लोगों से कहो, जनाज़ा उठाएँ ।"

सुरैया रोती हुई चली गई । एक प्रलय के से शोर के साथ हाशिम और रज़िया के जनाज़े एक साथ उठे । ये दोनों ज़िन्दगी भर तो एक दूसरे के निकट न पहुँच सके, परन्तु अब कंधे से कंधा मिलाकर अन्तिम मंज़िल पर से गुज़र रहे थे ।

४०

आज रज़िया का 'तीसरा' था। घर भर शामिल था। इसमें शाकिर भी मौजूद था। सब लोगों के चेहरों पर दुख और रंज के भाव छाए हुए थे।

एकाएक इस सोग-सभा में बहुत ऊंचे कहकहों की आवाज़ आने लगी। सबने आश्चर्य से एक ओर देखा, कि एक पागल मन की अदा के साथ शाकिर हंस रहा है। मनसूर ने बढ़कर उसे रोका।

"भाईजान, यह क्या ?"

"हाशिम की मूर्खता पर हँस रहा हूं।"

"यह आप क्या कह रहे हैं ?"

"हाँ, भई, देखो न, अगवा करके ले गया रज़िया को !"

यह कहकर उसने फिर एक गगन-चुम्बी कहकहा लगाया और उठकर नाचने लगा। कहने लगा—

"खूब जलाऊंगा उन दोनों को ! वह दोनों आकाश की साथ-साथ सैर कर रहे हैं। चुहलें हो रही होंगी। रज़िया और उनपर यह साबित कर दूंगा कि मुझे कोई गम नहीं हैं। मैं खुश हूं। नाच रहा हूं। गा रहा हूँ। मौज उड़ा रहा हूं। ही-ही······हा-हा······ही-ही······!"

उसके कहकहे सुन-सुनकर और उसकी उसकी यह दशा देख-देखकर मनसूर ने कहा—

"अप ने कोसँभालिए, भाईजान !"

"सम्भालूं ? तो क्या मैं नाच की धुन में गिरा पड़ रहा हूँ ? नहीं, तुम झूठे हो ! मैं नहीं गिर सकता ! शराबी गिरते हैं। मैंने कभी शराब नहीं

पी। सुना है, हाशिम था शराब का रसिया। वह देखो, धमाका हुआ। हाशिम आकाश से गिरा पड़ा आ रहा है! देखना, खबर लेना, बेचारे का कहीं सिर ही न फट जाए! वह देखो, पीछे-पीछे राजया भी चली आ रही है। किस शान से आ रही है! मुझे जलाने आ रही है! मेरा मुंह चिढ़ा रही है! मुझसे कह रही है, कर लो मेरा कुछ। अब तो तुम कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। मैं शाकिर हूँ, मैं बिगाड़ के दिखा दूँगा इन दोनों को!"

यह कहकर शाकिर दीवानों की तरह मनसूर की ओर बढ़ा और उसे हाशिम समझकर उसका गला पकड़ लिया।

लोग दौड़ पड़े। मनसूर और शाकिर को अलग किया। सबने एक जबान होकर फैसला कर दिया।

"पागल हो गया है शाकिर!"

बड़ी मुश्किलों से उसपर काबू पाया गया। घर लाए उसे और जंजीरों से जकड़ दिया। वह अब गालियाँ बक रहा था। मारने को दौड़ता था। खाना फेंक देता था। पेशाब को शर्बत कहकर, गिलास में उंडेल कर पीने लगता था। जंजीर से खेलते हुए अपना सिर लहुलहान कर लेता, फिर भी हंसता रहता। जंजीर खड़काता, बच्चों को इकट्ठा कर लेता, कहता, "बाजा सुनो भई बाजा।" यह कहकर फिर जंजीर को परखने लगता।

मनसूर ने बड़ी तनदही से शाकिर का इलाज किया, परन्तु,

—मर्ज बढ़ता गया, ज्यूं-ज्यूं दवा की!"

कोई दवा ठीक नहीं बैठी। डाक्टरों की राय थी कि इसे पागलखाने में भेज दिया जाए, लेकिन अम्मीजान पागलखाने का नाम सुनकर कानों पर उंगलियाँ रख लेती थीं। "जितना रुपया खर्च हो, यहीं इलाज करो। पागल-खाने तो मैं इसे जाने नहीं दूंगी। वहाँ चार चोट की मार पड़ती है पागलों को। मैंने तो शाकिर को कभी फूल की छड़ी भी नहीं छुवाई।" यह कहकर वह रोने लगतीं और मनसूर चुप हो जाता।

जहरा को शाहद के माध्यम से उस घर के समाचार प्रति-पल मिल रहे थे। शुरू-शुरू में उसने शाकिर के पागलपन का हाल सुना, तो समझा कि

थोड़े समय प्रभाव है। इतना बड़ा सदमा न सह सके, ठीक हो जायेंगे दो चार दिन में। परन्तु जब यह समाचार मिलने लगे कि उनका पागलपन बढ़ता जाता है तो उसे चिन्ता ने आ घेरा। अब यह हर समय गुमसुम रहती। न किसीसे बात करती, न गाती, न नाचती। उसने यह सब काम जैसे छोड़-से दिए। बड़ी बी भी बात मानती थीं। वह जहरा के लिए रुपया इकट्ठा करना चाहती थीं, और अब उनके पास रुपये की कमी नहीं थी। शाहद जब उसे शाकिर का समाचार सुनाता, वह बेहाल होकर रोने लगती।

एक दिन उसने आंखों में आंसू भरकर शाहद से कहा—

"मेरा एक काम कर दोगे।"

"जो कहो!"

"या तो शाकिर को यहाँ पहुंचा दो या मुझे उसके पास ले चलो। उसकी देख-भाल केवल मैं कर सकती हूँ। यदि यह न हुआ, तो या तो मैं पागल हो जाऊंगी, या देख लेना, किसी दिन बैठे-बैठे जान दे दूंगी।"

शाहद ने बड़ी स्नेहपूर्ण दृष्टि से उसे देखकर कहा—

"क्यों, चाहती हो उन्हें?"

"बातों का समय नहीं, यह काम का है।"

शाहद घर गया। उसने सुरैया से आज की बातें कीं। सुरैयाने बड़ी सहानुभूति व्यक्त की और कहा—

"ठहरो, मैं माँ से कहती हूँ।"

अम्मीजान को सुरैया ने शीशे में उतार रखा था। कुछ इस प्रकार फरमाइश की कि वह टाल न सकीं। उन्होंने जहरा को आने की आज्ञा दे दी।

पहले-पहल, इस घर में, एक पागल की देख-भाल के लिये जहरा दाखिल हुई। उसने शाकिर को देखा। शाकिर ने उसे देखा। उसने गर्दन झुका ली।

जहरा उसके पास गई। उससे बातें करने लगी। उसने कहा—

"जहरा, तुम यहाँ कहाँ?"

"आ गई तुम्हें देखने!"

"क्या मैं कोई तमाशा हूं ?"

"नहीं, मित्र।"

"नहीं, सच्चा प्रेमी।"

"अच्छा, यही सही।"

"अच्छा नहीं, इकरार करो।"

"इकरार करती हूँ।"

"तुम मुझसे शादी करोगी ?"

"कर लूंगी।

"कब ?"

"जब तुम अच्छे हो जाओगे।"

"तो क्या मैं बीमार हूँ ? हश ! पगली कहीं की !"

यह कहकर वह दीनाना वार हंसने लगा।

शाकिर का पागलपन यौवन पर था। वह किसी को खातिर में नहीं लाता था। माँ की नकलें उतारता—देखो इस बुड्ढी खूसट को ! कयामत के बोरिए समेट रही है। मरती भी नहीं !" सुरैया को गालियां दिया करता था। शाहद की सूरत देखते ही बन्दर की तरह चार-पाँच पग चलने लगता और फूं-फूं करके लपकता। मनसूर को देखकर वह और पागल हो जाता और कहता, "मार डालूंगा इस हरामखोर को ! यह चोट्टा है, बदमाश है, कमीना है।"

परन्तु जहरा को देखकर उसके पागलपन का जोश कुछ कम हो जाता था। वह आदमियों की सी बातें करने लगता था। कम-से-कम उसके जोश में कमी हो जाती थी।

डाक्टरों की राय यह हुई कि शाकिर को इस घर के अतिरिक्त किसी और घर में रखा जाए। यहाँ के सब लोगों से वह भड़कता है। उन्हें देख-देखकर उसके पागलपन का जोश और बढ़ता है। इन लोगों से हटकर यदि वह दूर रहे तो धीरे-धीरे उसके पागलपन में बहुत कमी आजायेगी।

बात माकूल थी। सबने मान ली। जहरा शाकिर को अपने घर ले

आई। यहाँ पहले की अपेक्षा उसकी सेहत अच्छी थी। पागलपन के दौरे पड़ते रहते थे। दीवानगी की हरकतें करता था, परन्तु बहुत कम। जहरा, जो एक काल तक उसके जीवन पर राज कर चुकी थी, एक बार फिर उसके दिल दिमाग पर छाई हुई थी। उसके नर्मी और प्यार के बरताव ने इस पागल को भी ठीक कर लिया था।

अब भी शाकिर के सामने अम्मीजान, सुरैया, रज़िया, शाहद, मनसूर का नाम लेना—'दीवाना रा हुए बस अस्त' की कहावत के समान था। उनमें से किसीका नाम वह सुन ले, बस फिर न जंजीरें उसे रोक सकेंगी, न दवाएँ। फिर वह काबू में नहीं रहता था—परन्तु जहरा उसे बस में किए हुए थी। उन लोगों की चर्चा भी उसके सामने नहीं होने देती थी। यदि कभी कोई बात निकल पड़ती तो शाकिर से अधिक शाहद तक को वह गालियाँ देने लग पड़ती। जहरा की यह वफ़ादारी और हाँ में हाँ मिलाने का विचार करके उसका पागलपन फिर कम हो जाता। फिर वह जहरा से मीठी-मीठी बातें करने लगता। जहरा उसकी रग पहचान गई थी और एक होश्यार डाक्टर की तरह उसका इलाज कर रही थी।

शाकिर की देख-रेख में जहरा ने जैसे अपने को सती कर दिया था। उसका वह बालाखाना, जो कभी स्वर्ग समान था, अब वहाँ उल्लू बोल रहे थे। उसने अपनी दुकान उठा दी थी! अब वहां कोई झांकता भी नहीं था। पूरी व्यस्तता, पूरे ध्यान और पूरी जान के साथ वह शाकिर को सम्भाल रही थी। उसके पागलपन को मीठे बोल से बहला रही थी।

जहरा की यह इच्छा थी कि आरिफ को भी अपने पास बुला ले, परन्तु उसके ननिहाल वालों ने यह फैसला किया था, कि वह आरिफ़ को कदापि शाकिर या उसके सम्बधियों के हवाले नहीं करेंगे। कमला अब उसकी अध्यापिका था। उसने बड़ी आसानी से रजिया का स्थान ले लिया। इस साधना के साथ वह आरिफ़ की सेवा करती थी कि जैसे कोई बड़ा पुजारी मंदिर में किसी मूर्ति को पूजता हो। वह आरिफ़ में रजिया की झलक देखती थी और रजिया का विचार आते ही न जाने क्यों उसे हाशिम का विचार आ जाता

था। वह ठुमककर उठती थी और आरिफ़ को कलेजे से लगा लेती थी।

मुन्शीजी ने वसीयत के मुताबिक हाशिम की आधी जायदाद का क़बाला आरिफ़ (अब रज़िया का एक अकेला वारिस वही था) के नाम और आधा कमला के नाम करवाया। कमला को मालूम हुआ तो वह बहुत बिगड़ी। उसने कहा—

"आरिफ़ मेरा बेटा है। वह कबाला भी इसीके नाम रजिस्टर करवाओ।"

और जब तक उस भाग्यवती ने सारी जायदाद आरिफ़ के नाम मुन्तकिल न करवा दी, खाना तक नहीं खाया गया उससे।

रज़िया की माँ अपनी सन्तान से भी अधिक कमला को चाहती थी। फिर वह आरिफ़ पर जिस प्रकार सदके कुर्बान हुई जा रही थी, उसने और ज्यादा उसके दिल में पैदा कर लिया था। कमला इस समय तक चुप-चुप उदास रहती थी, जब तक कि वह स्कूल में रहता था। वहाँ से वह लौटा, कि वह फूल की तरह खिल उठी। अब उससे अधिक खुश सारे घर में कोई नहीं था।

इस चाव-प्यार से वह आरिफ़ का नाश्ता तैयार करती, उसे नहलाती उसके कपड़े बदलवाती, उसका बिस्तर ठीक करती, उसे अपने सामने बिठाकर पढ़ाती कि लोग यह तमाशा देखकर दंग रह जाते। "ऐसी स्त्री काहे को देखी होगी किसीने दुनियाँ में।" वह कहते।

४१

मनसूर की सनोबर के साथ, और सुरैया की शाहद के साथ, अम्मीजान की सरपरस्ती में बड़े सुख और चैन से बीत रही थी। उनके जीवन के बाग में फूल-ही-फूल थे, कलियाँ-ही कलियाँ थीं। मुस्कान थी, हंसी थी, कहकहे थे। शाकिर का पागलपन इस सदाबहार उपवन में काँटे की नाईं खटक रहा था।

कुछ भी हो, शाकिर सुरैया और मनसूर का भाई था। प्रायः उसकी पागलों की-सी हरकतें देख-देखकर उनके दिल कुढ़ते थे। खुशी का चांद परेशानी के बादलों में थोड़ी देर के लिए छिप जाता था। उसके इलाज पर रुपया पानी की तरह खर्च हुआ, किन्तु अब तक उसकी दशा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था।

यह दोनों बहन-भाई अब ज़हरा की शराफत और पवित्रता के और अधिक कायल हो गए थे। किस बेग़र्ज़ी, किस बेलोसी और किस प्राण न्याछावर कर देने वाले भाव से वह अपना तन-मन-धन शाकिर पर कुर्बान किए जा रही थी। वह शाकिर की वासना के सामने सिर न झुका सकी। उसके सोने चाँदी के बंधनों में न बंध सकी। वह उसकी वासनापूर्ण माँगों पर सदैव गुस्से होती रही। वह कभी भी उसकी न बन सकी, परन्तु उसके पागलपन ने ज़हरा की मुहब्बत के खोए हुए तारों को जगा दिया। वह अंगड़ाई लेकर उठी और उसने दुनियां पर लात मार दी और उसीकी हो रही।

एक दिन रात के खाने के बाद बातें छिड़ गईं। भाई-बहन के इस जोड़े में सनोबर भी अपने बच्चे को लिए हुए उपस्थित थी, और शाहद भी बैठा

था। मनसूर ने सुरैया से एक ठंडी साँस लेकर कहा—

"आश्चर्य होता है।"

"किस बात का ?"

"प्रेम भी अपना ठिकाना कहाँ-कहां बना लेता है !"

"हाँ है तो सच। देखिए न, भाईजान के प्रेम में 'उस स्त्री ने' संसार का हर सुख छोड़ दिया, जिसने उसे ठुकरा दिया था।"

"यह कैसे पैदा हो जाता है ? मन के किस कोने में पनाह लेता है ? कैसे अपने पाँव जमाता है और कैसे इसका पालन होता है ? इसके सम्बन्ध में कोई दार्शनिक, कोई मनोविज्ञान का पंडित कुछ नहीं बता सकता। बताता भी है तो अटकलपच्चू।"

"यह वह भेद है, जिसकी अमानत कुदरत के पास है। यदि यह खुल जाए तो यह ब्रह्मांड उथल-पुथल हो जाए।"

"हमारा समाज भी तो एक भेद है।"

"(मुस्करा कर) हाँ, लेकिन खुला हुआ भेद।"

"खूब बात कही सुरैया तुमने। वास्तव में हमारा समाज खुला हुआ राज है। इसका स्वभाव भिन्न-भिन्न आदतें रखता है, परन्तु बेनकाब है।"

"और क्या ? देख लीजिए, यही समाज था जो आपका और मेरा दुश्मन था। हमारे प्राणों का गाहक था। रक्त का प्यासा था। लेकिन हम डट गए इसके मुकाबले में। कोई परवाह न की इसकी हमने। और अब वही समाज है, जो हमारा कदरदान है। हमारे विद्रोह को सराहता है। हमारी सरकशी पर पूजा के फूल चढ़ाता है।"

"सच कहते हो, जो हमारी छाँव से भड़कते थे, अब वही हमारी छाँव तले रहने के इच्छुक हैं।"

सब लोग हंसने लगे।

मनसूर ने कहा—

"मैं गलत नहीं कहता। वही सनोबर को लौंडी का ताना देने वाली बीवियाँ अब इसे शादी-ब्याह में बुलाती हैं। इसका सम्मान करती हैं। इसे

अपने साथ खाना खिलाती हैं। बार-बार इसकी खैरियत, इसका मिजाज पूछती हैं। सनोबर आज स्वयं बड़े मजे ले लेकर नवाब रिफ़अत दुल्हन के यहां के भोज की चर्चा कर रही थी। याद है, यह वही रिफ़अत दुल्हन हैं जिन्होंने अम्मीजान को संदेशा भेजा था कि यदि सनोबर इसके घर पड़ी रही, तो हुक्का पानी बंद तुम्हारा !"

सुरैया बोली —

"यही हाल लोगों का शाहद के साथ है। क्या कुछ न किया गया, (संकेत करके) इनके सम्बन्ध में। लेकिन जब यह बन गए इस घरके सदस्य और समझ लिया लोगों ने कि जो होना था, वह हो गया। अब वही हैं जो हर स्थान पर बुलाए जाते हैं और हाथों हाथ लिए जाते हैं।"

"अभी क्या है, यदि जीवित रहा तो सुरैया, तुझे दिखा दूँगा, कि किसी शरीफ़जादी से अफ़ज़ाल (सनोबर का लड़का) का ब्याह करके। यही लोग जो आज मेल-मिलाप के बावजूद अपने खानदानी शजरे लेकर उनकी तलावत बड़े जोर शोर से करते हैं, अपने आप इशारों में कहेंगे कि बना दो अफ़ज़ाल को हमारा दामाद !"

कुछ देर मनसूर चुप बैठा रहा। फिर उसने कहा—

"समाज के इन ठेकेदारों को रुपया चाहिए। यदि अफ़ज़ाल कहीं अभाग्य से ग़रीब होता तो वास्तव में उसका जीवन कठिन था। लेकिन यदि वह अमीर है, दौलतमन्द है, तो उसका हर दुर्गुण गुण बन जाएगा। समाज की चीख-पुकार, उसकी घृणा, उसका बेगानापन, सब खत्म हो जायेंगे।"

वह फिर खामोश हो गया। कुछ देर के बाद उसने कहा—

"यह सनोबर जो आज तक बहुत-सी नजरों में लौंडी है। हर अपमान की भागी है और किसी सम्मान की पात्र नहीं, यह यदि किसी प्रकार मर्द बन जाए और विद्या प्राप्त कर ले। आई.सी.एस. की प्रतियोगिता में बैठे और सफल हो जाए, और फिर इसी नगर में डिप्टी कमिशनर बनकर आ जाए, तो हमारे खानदान की पूजा करने वाले समाज की लड़कियाँ धकेल-धकेल कर इसके पास भेजी जायेंगी।"

सुरैया हंसने लगी।

सनोबर ने कहा—

"हमें यह बातें अच्छी नहीं लगतीं। मैं क्यों मर्द बन जाऊँ ? तुम न बन जाओ स्त्री !"

मनसूर ने जोर का एक क़हक़हा लगाया।

सुरैया ने कहा—

"हाँ, भैया, कहते तो ठीक हो। खूब याद आया मुझे। कल ही की तो बात है। डिप्टी साहब की पत्नी आई थीं यहाँ। बड़ी देर तक रहीं। अफ़ज़ाल पर तो सदके कुर्बान हुई जा रही थीं। बार-बार इसकी बलाएं लेती थीं। उनके साथ उनकी लड़की भी थी। बिल्कुल नन्ही-मुन्नी, मालूम होता था, चीनी की गुड़िया। कहने लगीं, इसका और अफ़ज़ाल का संगम कितना अच्छा लगता है। वह तो अम्मीजान ने बात काट दी, वरना मेरा ख्याल है, कि यदि हम में से कोई जोर देता, तो इस दूध पीते ज़माने में भी उसका ब्याह वह अफ़ज़ाल से करने पर तैयार हो जातीं।

मनसूर फिर हँसने लगा। आज वह मौज में था। जब उसकी तबीयत रंग पर होती थी तो हर बात पर हंसने लगता था।

कुछ देर तक उनपर चुप्पी छाई रही, फिर मनसूर ने कहा—

"भाभी की याद प्रायः आती है। उनकी मृत्यु मेरे मन पर एक ऐसा निशान है, जो घाव बनता चला जा रहा है। मुझे बड़ी शर्म आती है कि मेरे कारण से उन्हें काफी शारीरिक और मानसिक कष्ट पहुंचा।"

"हाँ, भैया, तुमने उन्हें बहुत तंग किया। वह तुम्हें बिल्कुल नहीं चाहती थीं। उन्हें तो हाशिम से प्रेम था। वह उनके मरने से पहले की बातें मैं नहीं भूल सकती। याद करती हूँ तो रौंगटे खड़े हो जाते हैं। वह उनका हाशिम के माथे को चूमना, वह उनका उसके तलवों से आँखें मलना और आँखें मलते-मलते प्राण दे देना……मेरे जीवन क़ी सबसे बड़ी दुखपूर्ण घटना है।"

"और सुरैया, मेरे जीवन की भी। मैं यदि यह जानता, तो कभी उनका दिल न दुखाता। इस चरित्र की स्त्रियाँ, जिसका नमूना भाभी थीं, आकाश की

दृष्टि से कम गुज़री होंगी ।"

"और कमला ?"

"कमला और ज़हरा सब में चरित्र है । लेकिन वह भाभी सी बात कहाँ ? कुछ सहल है इस प्रकार जीवन बिता देना, जिस प्रकार वह बिता गईं ? मेरे दिल में जो अम्मीजान का सम्मान है, वह किसी स्त्री का नहीं है, लेकिन सुरैया, मेरा विचार है कि यदि अम्माँ भी भाभी के स्थान पर होतीं, तो उनके क़दम डगमगा जाते । वह स्त्री थीं ? नहीं, चट्टान पहाड़ थीं । आँधियाँ चलीं, तूफान उमड़े, पति की बेपरवाई, बेगानापन, बेरुख़ी के बादल छाए, लेकिन पहाड़ अपने स्थान पर स्थिर था । चट्टान वहीं की वहीं मौजूद थी । अल्लाह अकबर !

अन्त समय तक उन्होंने यह राज़ ज़ाहिर नहीं होने दिया कि उनके दिलमें भाईजान के अतिरिक्त कोई और बसा हुआ है । हद होगई ज़ब्त की !"

"और कैसा ज़ब्त, कि दिल में ज्वालामुखी फटा पड़ रहा है परन्तु क्या मजाल कि धुआं तक भी बाहर आ जाए । छाती प्रेम का खज़ाना बनी हुई है, परन्तु क्या मजाल कि पग डगमगा जाएं । प्रेमी को शत्रु और शत्रु को प्रेमी बना लेना और उफ़ न करना उन्हीं का काम था । यह केवल वही कर सकती थीं ।

निराश स्त्री को बहुत शीघ्र बरग़लाया जा सकता है, लेकिन जैसे-जैसे उनकी निराशा बढ़ती गई, उनके हौसले और सबर का सूरज और ऊँचा होता गया । सुरैया, लोग कहते हैं, हम बाग़ी हैं । हमने समाज के कानून के विरुद्ध, उसकी परम्पराओं के विरुद्ध, उसके बनाए हुए रस्मोरिवाज के विरुद्ध, उसके दस्तूर और असूल के विरुद्ध विद्रोह किया । विरोध के बड़े-बड़े तूफानों में भी हमारे पाँव नहीं डगमगाए । हमने समाज को पराजय दी । उसे हार मान लेनी पड़ी और हम जीत गए ।"

मनसूर की आवाज भर्रा गयी थी । वह जरा की जरा चुप हो गया । फिर उसने कहा—

"लेकिन हमारा विद्रोह कुछ नहीं था । वास्तविक विद्रोही रज़िया थीं,

रजिया !"

"यह क्या कहने लगे भय्या ? उन्होंने बेचारी ने कौनसा विद्रोह किया ? वह तो घुट-घुट के जीवित रहीं और घुट-घुट के मर गईं । उनमें विद्रोह करने का हौसला ही नहीं था । हौसला होता, तो आ जातीं वह भी हमारी कतार में । भाईजान से विद्रोह करतीं और खुले बंधनों हाशिम की हो रहतीं । कुछ भी कहता समाज ! लोग घरों से डंडे लेकर निकल आते, लेकिन पूरे हौसले के साथ वह सबका मुकाबला करतीं । आखिर हमने क्या-क्या नहीं किया ? सफल हुए कि नहीं ? जरूर वह भी सफल होतीं, और और आज हम उनकी यौवना-मृत्यु का, उनकी विवशता का सोग न मना रहे होते, बल्कि अपनी तरह उन्हें भी खुश, प्रसन्न और निश्चिन्त और बेपरवाह पाते । लेकिन वह हौसला हार गईं और अपनी जान खो बैठीं ।"

"मैं तुमसे कदाचित् सहमत नहीं हूं । जो विद्रोह वह कर गईं, वह कोई नहीं कर सकता । विद्रोहियों की कतार में प्रथम नाम उनका है ।"

"हमारी समझ में नहीं आता, भैया ।"

"समझने की कोशिश करो । सरकार के विरुद्ध विद्रोह किया जा सकता है । समाज के विरुद्ध विद्रोह किया जा सकता है । संसार के हर नजाम के विरुद्ध विद्रोह किया जा सकता है, लेकिन......दिल के विरुद्ध बग़ावत नहीं की जा सकती । बेशक, हमने समाज के विरुद्ध बग़ावत की । लेकिन कब ? जब दिल के आगे हम हथियार डाल चुके थे । हम ऐसे विजेता हैं, जो पहले पराजय खा चुके थे । परन्तु उन्होंने दिल के सामने हथियार नहीं डाले । उन्होंने बग़ावत की—दिल के विरुद्ध, बहते हुए आँसुओं के विरुद्ध, चीखती हुई आहों के विरुद्ध, उमडते हुए भावों के विरुद्ध । दिल ने उनपर आक्रमण किया और वह बिफरी हुई शेरनी की न्याईं लड़ती रहीं । आँसुओं ने उन्हें नीचा दिखाना चाहा, परन्तु एक आँसू भी उन्होंने अपनी आँखों से नहीं टपकने दिया । आहें मचलीं, किन्तु उन्होंने अपने सोने के बंदीघर में उन्हें निर्दयता के साथ मार डाला । जज़बात की सेना बढ़ी । वह निहत्थी थीं, कमजोर थीं, बीमार भी थीं । चरके खाती रहीं, घायल होती रहीं—परन्तु इस सेना के

सामने भी उन्होंने हथियार नहीं डाले और अंत में उसको भी कुचल डाला। उन्होंने रौंद दिया, पामाल कर दिया!"

सुरैया साँस रोके हुए, शाहद चकित, सनोबर गुमसुम।

मनसूर ने कहा—

"मुझे गर्व था अपने विद्रोह पर। लज्जित अब भी नहीं हूँ, परन्तु रज़िया की मृत्यु ने वह गर्व मुझसे छीन लिया। मैंने तो हर अवसर पर पराजय पाई। दिल के सामने सर झुकाए, भावों के सामने हाथ जोड़े हुए, इतनी बार पराजय पाकर यदि मैंने एक समाज से बग़ावत की और जीत गया, तो क्या जीता? जीत वह होती है, जिसके आगे-पीछे कोई हार न हो। और यह जीत केवल उस मरने वाली पर समाप्त हो गई।"

अब सुरैया की आँखें आँसू भरी थीं।

मनसूर कहे जा रहा था—

"मेरा जी चाहता है, रज़िया का एक बड़ा सा मक़बरा (समाधि) बनवाऊँ। चाहे मेरा सारा धन इसके बनवाने में लग जाए और फिर इसके मुख्य-द्वार पर संगमरमर पत्थर का एक बड़ा कुतबा लगवाऊँ जिस पर लिखा हो,

"उस विद्रोही की कब्र
जिसने दिल से विद्रोह किया
और
उसके टुकड़े टुकड़े कर दिए।"

जीवन में आज पहली बार मनसूर रो रहा था, फूट-फूटकर बच्चों की भाँति।

